यह जानने के लिए कि मैं आज क्या मानता हूं, मेरे सारे पिछले लेखों को देखने की जरूरत नहीं, क्योंकि मेरी आज की मान्यता ही सही है। मैं यह कहना चाहता हूं कि हिन्दू धर्म में जाति आज जिस शक्ल में मौजूद है, वह एक ऐसी बेहूदा चीज है, जिसका वक्त गुजर गया है। सच्चे धर्म की बढ़ती में इससे रुकावट ही होगी और अगर हिन्दू धर्म और हिन्दुस्तान को जीना है और दिन-दिन तरक्की करनी है, तो जात-पांत मिटनी ही चाहिए। ऐसा करने का उपाय यह है कि सब हिन्दुओं को अपना भंगी आप बन जाना चाहिए और पीढ़ी दर पीढ़ी से भंगी कहलाने वालों को अपना भाई समझना चाहिए। मैंने भंगी इसलिए लिखा है कि जीने की सबसे नीची सीढ़ी पर वही खड़ा है।

अप्रैल, १९४५ ई०। —मो० क० गांधी

पृष्ठभूमि

राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी जी ने देश के सामने जो विधायक कार्यक्रम प्रस्तुत किया है, उसमें अछूतोद्धार का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अछूतों के उद्धार कार्य को हम सबसे अधिक महत्वपूर्ण इसलिये कहते हैं कि खादी-प्रचार, मादक-द्रव्य-निषेध तथा हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य के प्रश्न भी न्यूनाधिक रूप में इसी कार्य-क्रम से सम्बद्ध हैं। खादी का यदि यथेष्ट प्रचार हो, तो उससे हमारे दरिद्र हरिजनों की आर्थिक दुरवस्था में विशेष सुधार हो सकता है। मादक-द्रव्य सेवन करने की दूषित प्रवृत्ति भी उन्हीं लोगों में अधिक पाई जाती है। हिन्दू और मुसलमानों के बीच सद्भावना की सम्भावना भी हरिजनों के प्रति सवर्ण हिन्दुओं के परिवर्तित दृष्टिकोण पर अवलम्बित है। जिन दिनों गांधी जी अछूतोद्धार के लिये देश-व्यापी दौरा कर रहे थे, उन दिनों मुसलमानों की ओर से उनसे कई स्थानों पर यह प्रश्न किया गया था कि महात्मा जी आप तो देश भर के सर्वमान्य राष्ट्र नेता हैं, फिर आपने केवल हिन्दू समाज से सम्बन्ध रखने वाला एकांगी कार्यक्रम अपने हाथों में क्यों लिया ? इस प्रश्न के उत्तर में महात्मा जी कहा करते थे कि सवर्ण हिन्दुओं के हृदय से छुआछूत के भाव निकाल कर मैं हिन्दू-मुस्लिम एकता की बुनियाद ही डाल रहा हूं। मालूम नहीं प्रश्न-कर्त्ता मुसलमानों को इस उत्तर से संतोष हुआ या नहीं। पर बात बिलकुल सच है। ऊंच-नीच का भेद-भाव यदि हिन्दू समाज से निकल जाय, तो इसमें संदेह नहीं कि मुसलमान हिन्दुओं के बिलकुल नजदीक आ जायेंगे, क्योंकि अधिकांश हिंदुओं की दृष्टि में मुसलमान भी अछूतों से अधिक आदरणीय नहीं माने जाते। अतएव यह एक स्वयं सिद्ध बात सी मालूम होती है कि अछूतोद्धार की बदौलत कम से

कम दो लक्ष्य एक साथ सिद्ध होते हैं–हिन्दू समाज का परिष्कार तथा संगठन और हिन्दू-मुसलमान एकता। यही दो बातें हमारी राष्ट्रीयता के प्रमुख आधार हैं।

इसी कारण महात्मा गांधी जी ने अछूतोद्धार के कार्य को इतना महत्व दिया और अपने जीवन के अंतिम क्षण तक वे इसी में लगे रहे। हिन्दू समाज के दलित वर्ग को पृथक मताधिकार देकर भारतीय राष्ट्रीयता का मूलोच्छेद करने का जो विचार ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों ने किया था, वह हमारे राजनैतिक इतिहास में एक मर्मान्तक दुर्घटना थी। यदि यह चाल सफल हो जाती तो भारतीय राष्ट्रीयता में भयंकर घुन लग जाता। हमारे नेताओं का किया कराया सारा काम नष्ट हो जाता। देश का यह भयंकर और निराशाजनक भविष्य महात्मा जी ने अपनी मर्मबेधी सुदूरदर्शिनी आंखों से देखा था और वह दर्दनाक दृश्य उनके हृदय-पटल पर सदा-सर्वदा के लिये अंकित हो गया। उन्होंने अपनी त्यागशील अन्तरात्मा की सारी शक्तियों को समेट कर अन्तर्मुखी किया और मन ही मन यह संकल्प किया कि भारत को इस अकाल मृत्यु के पाशविक पाश से बचाने के लिये यदि मैं ही क्या, मेरे जैसे सैकड़ों गांधी भी अपने प्राणों की बलि चढ़ा दें, तो भी कोई हर्ज नहीं। उनकी आत्मा अपने देश के इस भयावह भविष्य को देख कर अधीर हो उठी। उन्होंने सोचा कि यदि ऐसे कठिन प्रसंग पर मुझसे मरणासन्न भारतीय राष्ट्रीयता की सेवा न बन पड़ी, तो इसका तिरस्कारपूर्वक त्याग कर देना ही उचित है। ऐसे सामर्थ्यहीन जीवन से मृत्यु श्रेयस्कर है। हरिजनों के विभक्त होने का यह अनिष्टकारी परिणाम गांधी जी अपनी कल्पना की आंखों से भी न देख सके। संभव है, देश के कुछ और लोगों को भी यह कल्पना असह्य प्रतीत हुई होगी। परन्तु आमरण उपवास के द्वारा जननी जन्मभूमि के चरणों पर प्राणों की श्रद्धांजलि चढ़ाने की प्रवृत्ति किसी महान आत्मा में ही जाग्रत हो सकती थी, सो हुई। गांधीजी ने गोल-मेज कान्फ्रेंस के प्रसंग पर ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को इस बात की सूचना दे दी थी कि यदि दलित वर्ग को पृथक मताधिकार के द्वारा हिन्दू समाज से पृथक करने का प्रयत्न किया जायगा, तो इसका विरोध मैं अकेला ही प्राणों की बाजी लगा कर करूंगा। निरर्थक और सारहीन शब्दों के बोलने वाले राजनीतिज्ञों ने महात्मा जी की इस भीष्म प्रतिज्ञा को केवल गीदड़ भबकी ही समझा। किन्तु बाद में उन्हें मालूम हुआ कि आध्यात्मवादी भारत का हृदय-सम्राट अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने में प्राणों का मोह नहीं करता और कर्त्तव्य की वेदी पर अपने जीवन की आहुति सहर्ष दे सकता है। गांधी जी का आमरण उपवास करने का अमर संकल्प अपना काम कर गया और ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की कूटनीति विफल हो गई। त्याग की ड्योढ़ी पर स्वार्थपरता सिर धुन-धुन कर मर गई।

इसके बाद जो कुछ हुआ, वह इतिहास का विषय है। उसे सारा सभ्य संसार जानता है। अतएव उसे यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी एक बात ऐसी है, जिसे हम बार-बार कह कर भी नहीं अघाते और वह

यह है कि गांधी जी के सेवामय जीवन में अछूतोद्धार की यह सेवा सर्वथा अप्रतिम और अद्वितीय है। आमरण अनशन की उनकी धारणा से परिस्थितियों में पर्याप्त अन्तर पड़ गया। उन्होंने यह पूर्णरूपेण अनुभव कर लिया था कि भारत के भावी राष्ट्रीय जीवन का सारा दारोमदार अछूतोद्धार पर ही है। इसी कारण वे और सब कार्यों से अपना हाथ बहुत कुछ खींच कर सर्वथा हरिजन सेवा ही में लग गये। जेल से बाहर निकल कर कुछ स्वस्थ हो जाने के बाद उन्होंने हरिजनोद्धार के लिये अपना देशव्यापी दौरा शुरू किया। अछूतोद्धार के संबंध में उनके सभी विचार पुराने थे, परन्तु अपने आत्म-बल की प्रेरणा से उन्होंने उनमें नया जोश डाल दिया। लोग नये उत्साह से उनकी बातें सुनने लगे। देश भर में अछूतोद्धार का कार्यक्रम सर्वोपरि हो गया। सत्याग्रह आन्दोलन की प्रखरता मन्द पड़ गई। क्यों न पड़ती, जब उसका सूत्रधार ही इस क्षेत्र में न रहा। महात्मा जी ने कदाचित् सोचा होगा कि यदि हिन्दू समाज अकाल-मृत्यु से बच गया और इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीयता की बुनियाद सुरक्षित रह गई, तो आवश्यकता पड़ने पर भविष्य में सैकड़ों सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किये जा सकते हैं। पर यदि राष्ट्रीय चेतना का जनक हिन्दू-समाज ही विभक्त होकर बल-हीन हो गया, तो फिर आशा के लिये स्थान ही कहां रह जायगा। गांधी जी की इस विचार-सारिणी में हमें औचित्य और बुद्धिमत्ता के सिवाय कोई दूसरी बात नजर नहीं आती।

इसमें संदेह नहीं कि भारतीय राष्ट्र के निर्माण में अछूतोद्धार एक महत्वपूर्ण समस्या है। यह आज की नहीं, बहुत पुरानी है। महात्मा जी ने हरिजनोद्धार का जो विधायक कार्यक्रम दृढ़ता से अपनाया, वह हिन्दू सभ्यता का प्राचीन कार्यक्रम है। यही कार्य तो हिन्दुओं के पतन-युग में वैष्णव-आचार्यों ने भी किया था। गांधी जी वैष्णव सम्प्रदाय में पैदा हुये थे। उन्होंने भी वही पथ अपनाया जिस पर उनके पूर्वकालीन आचार्य चले थे। उन्होंने देश को राजनैतिक चेतना देने के साथ-साथ उसके बौद्धिक और सांस्कृतिक स्तर को भी अक्षुण्ण बनाये रखने का भरसक प्रयत्न किया और इसके लिये उन्होंने प्राणों की बाजी तक लगा दी। जितना भी कार्यक्रम उन्होंने देश के समक्ष रखा, उसमें हरिजनोद्धार ही प्रमुख था। साबरमती में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना करके उन्होंने इसका सफलतम प्रयोग किया और फिर हरिजन-सेवक संघ की स्थापना की। अपने यंग-इंडिया, नवजीवन तथा हरिजन-सेवक आदि पत्रों में भी इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिये समय-समय पर अनेक मान्य एवं अनुकरणीय निर्देश दिये।

हमने हरिजनों के सम्बन्ध में महात्मा जी के अनेक लेखों, भाषणों एवं वक्तव्यों का संकलन प्रस्तुत ग्रंथ में किया है। परन्तु जहां तक हमने देखा है उन्होंने जगह-जगह यही कहा और लिखा है कि हिन्दू धर्म में अस्पृता के लिए

कोई स्थान नहीं है; पर सवर्ण हिन्दुओं की ओर से अनेक आचार्यों द्वारा हरिजनों के उद्धार के लिये समय-समय पर जो प्रयत्न हुये, उनकी चर्चा हमें उनके प्रवचनों में कहीं भी नहीं मिली। इसी कारण उनके इन प्रवचनों से अशिक्षित जनता के हृदय में यह धारणा हो जाती है कि अछूतोद्धार की योजना बिलकुल नई है और महात्मा जी ही उसके प्रवर्त्तक हैं। यदि जन-साधारण को यह बात अच्छी तरह समझा दी जाय कि अछूतोद्धार हिन्दू सभ्यता का परम्परागत कार्यक्रम है और इस काम को हिन्दुओं के प्रायः बड़े-बड़े आचार्यों ने अपने हाथों में लिया था, तो उद्‌भ्रान्त सनातनी पंडितों का विरोध बहुत कुछ ठंडा पड़ जायगा। लेकिन प्रस्तुत विषय को इस तरह से प्रस्तुत करने में दलित शब्द की सार्थकता नहीं रह जाती।

हमारे इस कथन का यह आशय कदापि नहीं कि आजकल हरिजनों के प्रति सवर्ण हिन्दुओं का व्यवहार निन्द्य नहीं है। अवश्य है, परन्तु छूतछात, ऊंच-नीच का भेद-भाव तो इस समय सारे जन-समाज में व्यापा है। स्वयं सवर्ण हिन्दू ही आपस में एक-दूसरे को नीच समझते हैं। स्वयं शूद्रों में भी यह मानसिक व्याधि समा गई है। महार चमार के लिये अछूत है और चमार महार के लिये। जिन्हें हम अन्त्यज कहते हैं उनमें सैकड़ों फिर्के हैं और वे भी एक दूसरे को तिरस्कार की भावना से देखते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि ऊंच-नीच का भेद-भाव इस समय सारे हिन्दू समाज में ही व्याप्त है। अस्पृश्यता इस भेद-भावना की जननी है। ऐसी अवस्था में यह कैसे कहा जा सकता है कि सवर्ण हिन्दू इतरहीन-जातियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यदि वे आपस में समानता का व्यवहार करते, ऊंच-नीच की भेद-बुद्धि न रखते और सम्मिलित रूप से केवल अन्त्यजों को ही घृणा की दृष्टि से देखते, तो अलबत्ता ऐसा कहने की गुंजाइश थी, जैसा कि महात्मा जी ने सदा कहा और लिखा है। यदि अन्त्यजों की शिक्षा–दीक्षा का विशेष प्रबन्ध किया जाय और वे साफ-सुथरे रह कर सभ्यता का जीवन व्यतीत करें, तो कम से कम वे अस्पृश्य तो हरगिज न रह जायेंगे। गो मांस खाना, पेशे के रूप में दूसरों का मल-मूत्र उठाना, मुर्दों के मैले परित्यक्त कपड़े उठा कर घर में ले जाना, दूसरों की जूठन खाना, इत्यादि कर्म निश्चय ही निन्द्य और घृणास्पद हैं। ऐसे कर्मों का करने वाला यदि अस्पृश्य माना जाय, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? फिर भी इस युग का कोई भी विचारणीय व्यक्ति अस्पृश्यता का समर्थक नहीं हो सकता। महात्मा जी ने अपने कार्यक्रम में सवर्ण हिन्दुओं को प्रताड़ना देने के साथ-साथ हरिजनों को भी अपने अन्दर समाई हुई बुराइयों को दूर करने की समय-समय पर प्रेरणा की है। यही हरिजन आंदोलन की पृष्ठ-भूमि है। इसके प्रकाश में ही पाठक सारे ग्रंथ को पढ़ें।

जो हो, इसमें तो कुछ संदेह ही नहीं कि इस देश के राष्ट्रीय जीवन में हरिजन-सुधार तथा अस्पृश्यता-निवारण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है और इसे अपने हाथ में लेकर महात्मा जी ने अपनी महत्ता के अनुरूप काम किया था। आज जब

कि देश के शासन की बागडोर राष्ट्रीय सरकार के हाथ में है, तब गांधी जी के सर्वोदय एवं रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने की ओर उसका ध्यान जाना स्वाभाविक ही है। परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेशीय सरकार के हरिजन सहायक विभाग की ओर से गांधी जी के हरिजन सम्बन्धी लेखों एवं प्रवचनों का यह संकलन कराना सर्वथा अभिनन्दनीय है।

प्रस्तुत संकलन में हमने इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया है कि हरिजन सम्बन्धी उनका कोई भी प्रवचन छूटने न पाये, इसको सर्वांगीण बनाने की हमारी प्रवृत्ति इसकी विषयानुक्रमणिका से सर्वथा स्पष्ट हो जायगी। सुविधा के लिये हमने इसको विभिन्न परिच्छेदों में विभक्त कर दिया है। इस महान् प्रयत्न में हमें जो भगीरथ परिश्रम करना पड़ा है, इसका प्रमाण तो संग्रह ही अपने-आप देगा। हम तो यहां केवल उन व्यक्तियों, संस्थाओं, प्रकाशकों एवं पत्रों के प्रति आभार प्रदर्शन करना चाहते हैं जिनसे हमने सब सामग्री का संचयन कर इस ग्रंथ का निर्माण किया है।

साथ ही उत्तर प्रदेशीय सरकार के इस महान् आयोजन का हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं कि उसकी प्रेरणा से हमें विश्व-वन्द्य महात्मा जी की इस अमरवाणी के अगाध समुद्र में अवगाहन करके उनके हरिजनोद्धार सम्बन्धी विचार-मुक्ताओं को एकत्र करने का सुअवसर मिला।

४४६७, हाथीखाना,
पहाड़ी धीरज, दिल्ली,
७ मार्च, १९४९ ई०

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

विषय-क्रम

पृष्ठ

मैं भंगी हूँ

मैं भंगी हूं

मैं मानसिक रूप से अपने को भंगी मानता हूं ; परन्तु खेद है कि मैं उनके रहता नहीं । अतः भंगियों को यह कहने का अधिकार है कि मेरा भंगी बनने का दावा एक ख्याली चीज है।

मैं चाहता हूं कि आपमें से कुछ लोग भंगी घरों में सेवायें करें, जिससे उनके यहां भी ऐसी ही सफाई रहे, जैसी यहां है। स्वयंसेवकों को यह काम किसी आदेश से नहीं करना है, बल्कि स्वयं अपनी इच्छा और आवश्यक प्रेरणा से उन्हें यह सब काम सहर्ष अपनाना चाहिये। आज जो हमारे स्वयं-सेवक हैं उनके मन में यह भावना छिपी है कि वे नेता बन जायं। यह एक बहुत बुरी चीज है। स्वयंसेवकों की इच्छा यह होनी चाहिये कि जो सबसे छोटे समझे जायं उनकी सेवा करें।

भंगी

भंगी शब्द का व्यापक अर्थ है, सबका हितचिन्तक। यदि हरिजन बुरी लतों का पूर्णतया परित्याग कर दें, तो मैं समझूंगा कि मेरा उनके बीच में आना सफल हुआ। हरिजनों को मेरे जैसा भंगी बनना चाहिये। आप चाहते हैं कि मैं आपकी बकरी का दूध ग्रहण करूं, परन्तु आपको इसके लिये इसकी कीमत लेनी होगी। यदि आप यह जानते हैं कि मैं आपके हाथ का बनाया हुआ भोजन ग्रहण करूं, तो आप मेरे यहां आकर भोजन बना सकते हैं। आप लोगों के बीच मेरे रहने का मतलब यही है कि मैं आपकी वास्तविक आवश्यकताओं को जान सकूं। आप परमात्मा से प्रार्थना करें कि भारत को वास्तविक स्वतंत्रता मिले। कोई भी मनुष्य परमात्मा को कभी धोखा नहीं दे सकता।

भंगी काम की कला

मैं खुद भंगी बना हूं, इसलिये मुझे पहला ख्याल इसी बात का आता है। मैं ठेठ दक्षिण अफ्रीका से भंगी का काम करता आया हूं। मैंने इस कला में इतनी महारत हासिल की है कि मैं खुद गन्दगी से पूरी तरह बचकर इसे कर सकता हूं। जब मैं किसी भंगी को सिर पर पाखाने की टोकरी लिये जाता देखता हूं, तो मेरा मन बेचैन हो उठता है। भंगी का काम एक बढ़िया हुनर है, ललित कला है। उसके लिये पूरी-पूरी सफाई ही काफी नहीं, बल्कि जरूरी यह है कि सफाई करने का तरीका और सफाई के लिये बरते जाने वाले साधन बिलकुल साफ हों और सो भी इस हद तक साफ हों कि इन्सान की सफाई पसन्द तबियत को वे जरा भी न खटकें। मैं जिस पाखाने का इस्तेमाल करता हूं, उसे आप लोग देख जाइये। वह आइने की तरह साफ है और बदबू का तो वहां नाम-निशान तक नहीं। लेकिन क्या आप जानते हैं कि मेरा पाखाना साफ क्यों रहता है? इसलिये कि मैं खुद उसे साफ करता हूं। यहां की म्युनिसिपैलिटी का भंगी मैले की गाड़ियों को पहाड़ी चट्टानों के किनारे पर उड़ेल देता है, जिसकी वजह से एक सुहावनी

जगह बदसूरत और बीमारियों का घर सी बन गयी है। अगर आप खुद कर लिया करें, तो उससे न सिर्फ आपकी अपनी पूरी-पूरी सफाई रहे, बल्कि आपके आस-पास की जगह भी साफ रहे और भंगियों को आज जिस जुल्म के नीचे दबना और कराहना पड़ता है, उससे उन्हें छुटकारा मिल जाय। आप यह न समझें कि आपके ऐसा करने से उनकी रोजी छिन जायगी। आज हमने उनको जानवरों-सा बना रखा है। सच है कि रोजी के तौर पर उन्हें कुछ पैसे मिल जाते हैं, लेकिन उसमें उनकी इन्सानियत या मनुष्य की प्रतिष्ठा नहीं रहती। एक ही भंगी म्युनिसिपैलिटी का काम करता है और आपके बंगलों की भी सफाई करता है। नतीजा इसका यह होता है कि वह दोनों में से एक भी काम पूरी तरह नहीं कर पाता। क्या कभी आपने किसी भंगी को मैले के बीच में बैठकर पाखाने की दीवार की आड़ में छिपे-छिपे ज्यों-त्यों खाते देखा है? यह दृश्य किसी भी आदमी के दिल को चूर-चूर करने के लिये काफी है। इस भंगी के लिये ज्यादा साफ और इन्सानियत से भरा धन्धा या पेशा मुहैया कर देने का काम आपको क्यों मुश्किल मालूम होना चाहिये।

भंगी बस्ती में

मैं भंगियों की बस्ती के निकट ही रहता हूं, परन्तु मेरा स्थान बहुत साफ-सुथरा और हवादार है। वहां मैं आयु-पर्यन्त रह सकता हूं, परन्तु भंगियों के जो मकान बने हुये हैं वे बहुत गन्दे हैं, उनकी कोठरियां अंधेरी हैं और हवा आने के लिये उनमें रोशनदान तक नहीं है। उनके मकान में दाखिल होते ही मेरा दम-सा घुटने लगता है। हमारे लिये यह शर्म की बात है कि हमारे भाई ऐसी हालत में रहें। मैं चाहता हूं कि आप सब लोग उनके मकानों को देखें।

यदि हरिजन मुझे इस बात के लिये गालियां दें कि मैं अपने को भंगी कहने का दावा करता हूं और वे मुझ पर गुस्सा करें, तो मुझे बुरा नहीं लगेगा। इस चीज का पाप मुझ पर ही नहीं, आप सब लोगों पर है। आखिर हम सब लोग ईश्वर के नाकिस प्राणी हैं। ईश्वर की सृष्टि में न तो कोई बड़ा है और न कोई छोटा। उनके बड़प्पन से ही हम बड़े बन सकते हैं। यदि आकाश से हमारा सम्पर्क रहे, तो बीमारी हमें स्पर्श तक नहीं कर सकती। यदि किसी कारण से हम बीमार भी हो जायं, तो हमें भगवान की कृपा से प्रकृति द्वारा उपलब्ध सादे तरीकों को अपनाकर अपने उपचार पर संतुष्ट रहना चाहिये।

भंगी बस्ती में क्यों?

हो सके तो भंगी बस्ती में रहने का मैंने इरादा किया है, इस पर दोस्तों को ताज्जुब क्यों होता है? ताज्जुब तो इसलिये होना चाहिये था कि मैं इतने दिनों तक हरिजन बस्ती में रहने क्यों नहीं गया? क्यों नहीं गया, इसका जवाब किसी और वक्त दूंगा। आज तो मैंने इरादा क्यों किया है, यह बता दूं। मैंने कहा है कि हम अपने को भंगी यानी अति शूद्र मानें और वैसा ही बर्ताव भी रखें। मैं ऐसा मानता हूं, लेकिन चलता नहीं। शायद सब तरह तो ऐसे

चलना असम्भव-सा हो। लेकिन जितना हो सके उतना तो करूं। मन में कई दिनों से इस तरह के विचार उठ रहे थे। इसी बीच, जैसा कि 'हरिजन' में दे चुका हूं, खबर मिली कि गुजरात में हरिजनों के लिये एक ही कुआं खुला है। इसी तरह मंदिर भी एक ही। यह सही है या गलत, इस पर विचार न किया जाय। इसका मेरे मन पर जो असर हुआ, वही यहां समझने की बात है। दिल में इस बात का गुस्सा नहीं होना चाहिये। मैंने तुरन्त सोचा कि अगर मैं ही हरिजनों से अलग रहता हूं तो दूसरे क्या करें। यह सवाल तो ठीक था ही, लेकिन सही बात तो यह थी कि दूसरे कुछ भी करें, मुझे अपना फर्ज अदा करना चाहिये। यही एक बात है, जो मुझ पर सवारी किये हुये है, और मुझे कहती है कि जहां जाऊं, वहां मुझे हरिजन बस्ती में रहना चाहिये।

इसीलिये मैंने सेठ रामेश्वरदास बिड़ला से कहा कि जब मैं बम्बई आऊं तो मेरे रहने का इन्तजाम भंगियों की बस्ती में करें और वहां संभव न हो, तो कहीं किसी हरिजन बस्ती में। सेठ घनश्याम दास बिड़ला को भी मैंने तार दिया है कि वे दिल्ली में भी ऐसा इन्तजाम करें। भाई ब्रजकृष्ण चांदीवालों का तार मिला है कि वहां वैसा ही बन्दोबस्त हो रहा है। जाहिर है कि अगर हरिजन भाई-बहन ही अपनी बस्ती में मेरा रहना बरदाश्त न कर सकें, तो मैं वहां नहीं रह सकता। उनका दिल दुखाकर मैं उनकी बस्ती में कैसे रह सकता हूं? मगर मुझे ऐसा कोई डर नहीं है।

कुछ लोग खुश हुये हैं कि मैं अब बिड़ला हाउस में नहीं रहूंगा। वे नहीं जानते कि बिड़ला भाइयों के साथ मेरा क्या संबंध है। कितने ही सालों से मैं बिड़ला भाइयों से सेवा ले रहा हूं। सार्वजनिक काम के लिये मैंने उनसे काफी रुपये भी लिये हैं, और लेता रहता हूं। आम लोग क्या जानें कि उनके जीवन में कैसा परिवर्तन होता रहा है। जो होता है वह दिखावे के लिये नहीं। यह सब होते हुये भी, उनके जीवन में और मेरे जीवन में बड़ा अन्तर है। उससे न दुख होना चाहिये, न ताज्जुब। सच्चा परिवर्तन दिल से होता है। किसी के दबाव से किया हुआ परिवर्तन निकम्मा होता है। मुझमें न ऐसा अभिमान है, न ऐसी मूर्खता है कि मैं सबको अपने जैसा बनाने की आशा तक रखूं। यह कौन कह सकता है कि जो मैं करता हूं, वह ठीक है, या जो दूसरे करते हैं, वह ठीक है। मैं अपने रास्ते पर रहूं और दूसरे अपने पर। हम सब भगवान के ताबेदार रहें, जैसे वह चलावे, वैसे चलें और अपने-अपने रास्ते पर चलते हुये सबसे मैत्री रखें।

उरुली, २५ मार्च, १९४६ ई०

भंगियों का राज

हमें तो राज चाहिए भंगियों का। भंगी हमारे में सबसे ऊंचे हैं, क्योंकि उनकी सेवा सबसे बड़ी है। तभी तो मैं खुद भंगी बन गया हूं। भंगियों के राज से मेरा मतलब यह है कि एक मेहतर को आपने अपना अमात्य बना दिया, तो फिर

आपको उसकी बात उसी तरह माननी है जिस तरह अंग्रेजों ने अपनी सत्र वर्ष की रानी विक्टोरिया का राज माना था और छोटे-बड़े सभी ने अपना-अपना कर्त्तव्य पाला था। अंग्रेज लोग कर्त्तव्य-पालन किस तरह करते हैं, इसका मैं गवाह हूं।

नई दिल्ली, १ जून, १९४७ ई०

लंदन की हरिजन बस्ती

जब हेमन्तकुमार के पत्र से मुझे पता चला कि गुजरात में हरिजनों के लिये सिर्फ एक ही कुआं और एक ही मंदिर खुला है, तो मैं चौंका। इससे पहले भी यह विचारणीय तो था ही। गुजरात तो नगाड़े बजाने पर ही जागेगा। जो भी हो, अब मैं जाग चुका हूं, तो सहज ही चुप नहीं रहूंगा। मैं जहां जहां जाऊं वहां वहां मुझे भंगी बस्ती में रहना चाहिये। इसलिये मैंने श्री रामेश्वरदास बिड़ला से कह दिया है कि आगे जब मैं बम्बई आऊँ, मेरे रहने का इन्तजाम भंगियों की बस्ती में किया जाय। यही मेरी तीव्र इच्छा है।

........गोलमेज परिषद् के दिनों में भी मैं लन्दन के ईस्ट एण्ड नामक मोहल्ले में रहता था। ईस्ट एण्ड को लन्दन की हरिजन-बस्ती कहा जा सकता है। जिस कमरे में मैं रहता था उसमें दो आदमियों के लिये भी पूरी जगह नहीं थी। कपड़े वगैरह रखने के लिए दराजों वाली एक चौखट को छोड़कर वहाँ कोई फर्नीचर नहीं था, न मेज थी, न कुर्सियां। हम सब फर्श पर सोते थे। चारों तरफ गन्दी बस्ती थी और इतना होने पर भी खुद किंग्सले हाल को सफाई का नमूना कहा जा सकता था।

१९ मार्च, १९४६ ई०

यदि मेरा पुनर्जन्म हो

मेरी समझ में नहीं आता कि सुधार का गलत अर्थ लगाने वालों या उसके विरोधियों को मैं किस प्रकार अपने मत का बना लूं। मैं उनके सामने कैसे वकालत करूं, जो किसी दलित व्यक्ति को छू लेना गन्दा होना समझते हैं और इस अपवित्रता को दूर करने के लिये आवश्यक शुद्धि, स्नान इत्यादि करते हैं तथा ऐसा न करना पाप समझते हैं। मैं उनके सामने केवल अपना मन्तव्य मात्र ही प्रकट कर सकता हूं।

मैं अछूत प्रथा को हिन्दू समाज का सबसे बड़ा कलंक समझता हूं। अपने दक्षिण अफ्रीका के घोर संग्राम में प्राप्त कटु अनुभवों से मेरे मन में यह विचार नहीं उठा है। कुछ लोगों का यह विचार भी गलत है कि ईसाई धर्म तथा साहित्य के अध्ययन से मेरे मन में ऐसे भाव उठे हैं। ये विचार उस समय के पनपे हैं, जब मैं न तो बाइबिल को जानता था और न उसके अनुयायियों को।

यह विचार उस समय मेरे मन में उत्पन्न हुआ, जब मैं शायद पूरे १२ वर्ष का भी नहीं था। ऊका नामक भंगी हमारे घर के पाखाने की सफाई करने

आया करता था। मैं प्रायः अपनी माता से पूछता था कि उसे छूने में क्या दोष है, पर मुझे उसे छूने की मनाही थी। यदि इत्तिफाकन मैं ऊका को छू लेता, तो मुझे स्नान करना पड़ता, पर ऐसे अवसरों पर मुस्कराते हुये मैं कह देता कि धर्म में छुआछूत का कहीं जिक्र नहीं है। यद्यपि मैं बड़ा आज्ञाकारी बच्चा था, पर माता-पिता के प्रति पूर्ण सम्मान रखते हुये जहां तक सम्भव होता, मैं अपना विरोध प्रकट कर देता और उनसे झगड़ बैठता था। मैंने अपनी मां से साफ कह दिया था कि उनका यह विचार बिलकुल भ्रमपूर्ण है कि ऊका को छूना पाप है।

स्कूल में मैं प्रायः अछूतों को छू देता था। और चूंकि मैं इस सत्य को अपनी माता से कभी नहीं छिपाता था, इसलिये मैं उनसे साफ कह दिया करता था और उन्होंने मुझे बतलाया था कि अछूत को छूने के बाद जो पाप किया गया, उसको रद्द करने का सबसे सरल तरीका यह है कि राह चलते किसी मुसलमान को छू दे और केवल अपनी माता के प्रति प्रेम और आदर भाव के कारण मैं प्रायः ऐसा किया करता था, यद्यपि मैंने कभी इसे धार्मिक रूप से आवश्यक न समझा। कुछ समय बाद हम पोरबन्दर चले गये और यहीं मेरा संस्कृत से पहला परिचय हुआ। अभी तक मैं किसी अंग्रेजी स्कूल में भर्ती नहीं हुआ था। मुझे और मेरे भाई को पढ़ाने के लिये एक ब्राह्मण रखा गया। उस अध्यापक ने हमें 'राम रक्षा' तथा 'विष्णु नाम' पढ़ाना शुरू किया। तब से मैं इन पंक्तियों को कभी नहीं भूल सका हूं कि 'जले विष्णुः' स्थले विष्णुः। निकट में ही एक बूढ़ी मां रहती थी। इन दिनों मैं बड़ा डरपोक था और जरा भी रोशनी बुझने पर भूत-प्रेत की कल्पना करने लगता था। मेरा डर भगाने के लिए बूढ़ी मां ने कहा था कि जब कभी मुझे भय मालूम हो, मैं 'राम रक्षा' के श्लोक का पाठ करना शुरू कर दूं इससे भूत-प्रेत भाग जाते हैं। मैं ऐसा ही करने लगा और इसका फल भी अच्छा हुआ। उस समय मैं कभी यह विश्वास ही नहीं कर सकता था कि 'राम-रक्षा' में कोई ऐसा श्लोक है, जिसके अनुसार अछूत का सम्पर्क पाप बतलाया गया है। पहले तो मैं उसका अर्थ ही अच्छी तरह नहीं समझता था... या समझता भी था, तो बहुत कच्चे तौर पर। पर मुझे यह विश्वास था कि जिस 'राम रक्षा' के पाठ से भूत का भी भय भाग जाता है वह अछूत से भय करना या उसका स्पर्श पापजनक नहीं बतलाता होगा।

हमारे परिवार में रामायण का नियमित रूप से पाठ होता था। लद्धा महाराज उसका पाठ करते थे। उन्हें कोढ़ हो गया था और उनको विश्वास था कि यदि वह नियमित रूप से रामायण का पाठ करेंगे, तो कोढ़ अच्छा हो जायगा। मैंने अपने मन में सोचा, जिस रामायण में निषाद ने राम को गंगा पार कराया, वही रामायण यह कैसे सिखला सकती है कि अछूत को छूना पाप है, हम परमात्मा को पतित-पावन इत्यादि नामों से पुकारते हैं, ऐसी दशा में हिन्दू धर्म में किसी को अपवित्र या अछूत सोचना पाप है, ऐसा करना निरा शैतानी काम है। तब से मैं बार-बार यही बात दुहराते नहीं थकता। बारह वर्ष की उम्र में मेरे मन में यह

विचार जम नहीं गया था, मैं ऐसा कहने का पाखंड न करूंगा, पर मैं उस समय अछूत प्रथा को पाप जरूर समझता था। वैष्णवों तथा अन्य हिन्दुओं की सूचना के लिये यहां पर मैं यह कहानी दे रहा हूं।

मैं सदैव सनातनी हिन्दू होने का दावा करता हूं। मैं हिन्दू शास्त्रों से बिलकुल अनभिज्ञ नहीं हूं। मैं संस्कृत का विद्वान् नहीं हूं। मैंने वेद, उपनिषद् का अनुवाद मात्र पढ़ा है। अवश्य इसीलिये मेरा अध्ययन पांडित्यपूर्ण नहीं है। मैं उनका घोर पंडित नहीं हूं। पर मैंने एक हिन्दू के समान उनका अध्ययन किया है और मेरा दावा है कि मैंने उनका असली अर्थ समझ लिया है। २१ वर्ष की उम्र तक मैंने अन्य धर्मों की जानकारी भी हासिल कर ली थी।

एक समय था, जब मैं हिन्दू धर्म तथा ईसाई धर्म के बीच खींचातानी में पड़ा हुआ था। जब मेरा दिमाग ठिकाने आया, तब मैंने यह अनुभव किया कि केवल हिन्दू धर्म के द्वारा ही मेरी मुक्ति हो सकती है और हिन्दू धर्म में मेरी श्रद्धा तथा ज्ञान और भी विकसित हो गया। उस समय भी मेरा विश्वास था कि अछूत प्रथा हिन्दू धर्म में नहीं है। यदि है, तो ऐसा हिन्दू धर्म मेरे लिये नहीं है।

यह सत्य है कि हिन्दू धर्म में अछूत को छूना पाप नहीं समझा जाता, शास्त्रों के अर्थ के विषय में कोई तर्क नहीं करना चाहता। मेरे लिये यह कठिन-सा है कि भागवत अथवा महाभारत से उदाहरण उद्‌धृत करूं। पर मेरा यह दावा है कि मैं हिन्दू धर्म का भाव समझ गया हूं। अछूत प्रथा को स्वीकृति देकर हिन्दू धर्म ने पाप किया है। इसने हमको नीचे गिराया और साम्राज्य को अछूत बना दिया है। हमारी छूत मुसलमानों को भी लग गयी है और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही दक्षिण अफ्रीका, पूर्वी अफ्रीका तथा कनाडा में अछूत समझे जाते हैं। यह सब अछूत प्रथा का परिणाम है।

अब मैं अपनी बात साफ कर दूं। जब तक हिन्दू जानबूझकर अछूत प्रथा में विश्वास रखते तथा इसे धर्म समझते हैं, जब तक अधिकांश हिन्दू अपने एक अंग को, भाइयों को छूना पाप समझते हैं, स्वराज्य प्राप्त करना असंभव है। युधिष्ठिर ने अपने कुत्ते के बिना स्वर्ग जाना अस्वीकार कर दिया। इसी प्रकार अब उसी युधिष्ठिर की संतान बिना अछूतों के स्वराज्य प्राप्त करना चाहती है। आज जिन अपराधों के कारण हम सरकार को शैतान कहते हैं, क्या वही हमने अछूतों के प्रति नहीं किया है?

हम अपने भाइयों को दबाने के दोषी हैं। हम उन्हें पेट के बल रेंगाते हैं। हम उनकी नाक जमीन पर घिसवाते हैं। गुस्से से लाल आंखें करके हम उन्हें रेल के डिब्बे के बाहर ढकेल देते हैं। ब्रिटिश शासन ने इससे ज्यादा और क्या किया है। जो अपराध हम डायर, ओडायर के सिर मढ़ते हैं, उनमें से कौन अपराध हमारे सिर नहीं मढ़ा जा सकता। हमें इस अपवित्रता को निकाल बाहर करना चाहिये। जब तक हम दरिद्र तथा निस्सहायों को पीड़ा देते हैं, जब तक यह एक भी स्वराजी के लिये संभव है कि किसी व्यक्ति के भावों को पीड़ा पहुंचावे, स्वराज्य

की बात करना मूर्खता है। स्वराज्य का यह अर्थ है कि एक भी हिन्दू या मुसलमान के लिये यह संभव न हो कि एक भी दरिद्र हिन्दू या मुसलमान को दबावे···पीड़ा दे। जब तक यह शर्त नहीं पूरी होती, हमें एक ओर स्वराज्य मिलेगा, दूसरी ओर छिन जायगा। हम मनुष्य नहीं पशु हैं, यदि अपने भाइयों के प्रति पाप का प्रायश्चित्त न करें।

पर, मुझे अभी तक अपने में विश्वास है। मैं देख रहा हूं, कवि तुलसीदास ने, जैनों तथा वैष्णवों ने, भागवत तथा गीता ने अनेकों रूप से जिस एक वस्तु का गुण गाया है, वही दानशीलता, वही दयालुता तथा वही प्रेम धीरे-धीरे, पर दृढ़ता के साथ, हमारे देश की जनता के हृदय में घर कर रहा है।

आजकल हिन्दू-मुसलमानों के अनेक झगड़े सुनने में आते हैं। अब भी ऐसे बहुत से हैं जो एक-दूसरे को क्षति पहुंचाने में नहीं हिचकिचाते। पर मैं तो समझता हूं, कुल मिलाकर प्रेम तथा दयालुता बढ़ती जा रही है। हिन्दू-मुसलमान ईश्वर से डरने लगे हैं। हमने अपने को अदालतों तथा स्कूलों के जादू से छुड़ा लिया है और इसी प्रकार का और कोई कपट-जाल हमें नहीं सता रहा है। मैंने यह भी अनुभव कर लिया है कि जिनको हम अपढ़ तथा अज्ञानी कहते हैं, वे ही लोग शिक्षित कहलाने के योग्य हैं। वे हमसे ज्यादा संस्कृत हैं, उनका जीवन हमसे ज्यादा न्यायशील है। जनता की वर्तमान मनोवृत्ति का जरा भी अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जन सामूहिक मत के अनुसार स्वराज्य राम-राज्य का पर्यायवाची है।

यदि मेरे अछूत भाइयों को इस जानकारी से कोई तसल्ली हो, तो मैं यह कहने के लिये तैयार हूं कि अब उनकी समस्या से पहले जितनी बेचैनी नहीं पैदा हो जाती। मेरा यह मतलब नहीं है कि तुम हिन्दुओं से जरा भी निराश न होओ। जब उन्होंने तुम्हारा इतना अहित किया है, तो वे अविश्वास के योग्य तो हैं ही। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि "अछूत दलित नही, पीड़ित हैं, तथा उनको पीड़ा देकर स्वयं हिन्दुओं ने भी अपने को पीड़ित बना लिया है"

शायद ६ अप्रैल को मैं नेलोर में था। उस दिन मैंने अछूतों के संग आज के ही समान प्रार्थना की थी। मैं तो मोक्ष प्राप्त करना चाहता हूं। मै पुनः जन्म लेना नहीं चाहता। पर यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मैं अछूत के घर पैदा होऊं, ताकि मैं उनकी पीड़ा, विपत्ति संकटों में उनका साथ दूं। और उनके साथ मिलकर इस दुर्दशा को समाप्त करने की चेष्टा करूं। इसीलिये मैंने प्रार्थना की कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के घर नहीं, बल्कि अतिशूद्र की कोख से।

आज का दिन उस दिन से भी अधिक गंभीर है। आज हमारा हृदय हजारों की हत्या से छलनी हो रहे हैं। इसलिये मैंने आज भी प्रार्थना की है कि यदि मैं अपनी किसी अपूर्ण इच्छा के कारण मर जाऊं, या अछूतों के प्रति अधूरी सेवा

करके ही मर जाऊं, या अपने हिन्दुत्व को बिना पूरा किये ही मर जाऊं, तो मैं अछूतों में ही जन्म लूं, ताकि मेरा हिन्दुत्व पूर्ण हो जाय।

अछूतों से····अछूत कहलाने वालों से··भी मैं एक बात कहना चाहता हूं। तुम्हें हिन्दू होने का दावा है। इसलिए यदि हिन्दू तुम्हें दबाते हैं, तो तुमको यह समझ लेना चाहिये कि यह हिन्दू धर्म का नहीं, धर्म के पालन करने वालों का दोष है। आपको अपने को मुक्त करने के लिए स्वयं पवित्र बनना होगा। आपको मदिरा आदि की बुरी लतों को छोड़ना होगा।

मैंने देश भर के अछूतों को देखा है तथा मेरा उनसे संपर्क रहा है। मैंने यह देखा है कि उनमें सुधार की इतनी सम्भावनाएं हैं, उनमें इतने गुण छिपे हुए हैं, जिनको वे हिन्दू नहीं जानते। उनका मस्तिष्क अक्षुण्ण रूप से पवित्र है। मैं तुमसे बुनना, कातना सीखने के लिये अनुरोध करूंगा और यदि तुम इनको अपना लोगे, तो दरिद्रता को अपने दरवाजे से भगा दोगे।

अब वह समय आ गया है, जब चाहे कितनी भी सफाई से तुमको जूठन दी जाय, तुम लेनी अस्वीकार कर दो। केवल अच्छा ताजा, बढ़िया नाज और वह भी आदर से दिया हुआ, लो। मैंने जो आपसे कहा है यदि उसके अनुसार आप काम करेंगे तो कुछ दिनों में ही आपका उद्धार हो जायगा।

हिन्दू स्वभावतः पापी नहीं है। वे अज्ञान में डूबे हुए हैं। इस साल अछूत प्रथा नष्ट हो ही जानी चाहिये। संसार में केवल ऐसी दो ही वस्तुएं हैं, जिनके कारण मुझे नर चोला धारण करने का लोभ होता है और वे हैं अछूतोद्धार तथा गो-रक्षा। जब ये दो इच्छायें पूर्ण हो जायंगी, तभी स्वराज्य हो जायगा, और मुझे मोक्ष मिलेगा। ईश्वर तुम्हें भी इतनी शक्ति दे कि अपना मोक्ष प्राप्त कर सको।

वे·······सब्र से काम लें

मैं बहुत दिनों से कहता आया हूं कि हिन्दुओं को न सिर्फ नाम से, बल्कि विचार, वाणी और कर्म से भी अतिशूद्र बनना होगा। इसलिये मैंने हरिजनों की बस्ती में जाकर ठीक हरिजनों के बीच रहने का निश्चय किया है।

लेकिन अपने यहां रहने की वजह से मैं इस भ्रम में नहीं हूं कि मैं हरिजनों की ही जिन्दगी बिता रहा हूं। मैंने हरिजनों की कई बस्तियां देखी हैं और हरिजनों में जो गरीबी, गन्दगी और मैला कुचैलापन पाया जाता है, वह भी मैंने देखा है। मैं यह भी जानता हूं कि इस जगह को खूब साफ सुथरा बना दिया गया है। मेरे लिये और मेरे साथियों के लिये श्री बिड़ला जी ने आराम और सहूलियत की जो चीजें यहां जुटा रखी हैं, उनके कारण सचमुच मैं परेशान हूं। मैं यहां रहने आया तो हूं, लेकिन मुझे उम्मीद है कि इस ओर यह मेरा आखिरी कदम नहीं, बल्कि पहला कदम है। मैं उस दिन की राह देख रहा हूं, और उसके लिये हमेशा ईश्वर से प्रार्थना करता रहता हूं कि

सचमुच ही मैं हरिजन की झोपड़ी में जाकर रहूंगा और वहां हरिजन, जो भोजन मुझे खिलायेंगे, वही खाऊंगा। इस बीच हरिजनों की बस्ती में बनी हुई इस धर्मशाला में रहकर मैं थोड़े सन्तोष का अनुभव करता हूं।

मैं हरिजनों पर क्यों गुस्सा होऊं? नामधारी सवर्णों ने उनके साथ जिस तरह का बर्ताव किया है, उसके खिलाफ उनके इस अदम्य रोष को मैं समझ सकता हूं। मुमकिन है कि वे बदला भी लेना चाहें। हमारी कहनी और करनी में कोई मेल नहीं है। उनका अधीर होने का हक है। मैं तो उनसे यही विनय करूंगा कि वे हिन्दू समाज के साथ सब्र से काम लें, यानी उसे निबाह लें। सदियों पुरानी बुराई एक दिन में जड़-मूल से नहीं मिटाई जा सकती। मैं यह भी जानता हूं कि यह मिटनी ही चाहिये, नहीं तो हिन्दू धर्म का नाश होना चाहिये। जब तक यह नहीं होता, हरिजन दिक्कतों और मुसीबतों के बीच जो रहे हैं, उनमें उनके हिस्सेदार बनकर, और जो हक उन्हें हासिल नहीं हैं, उन हकों को खुद छोड़कर हम थोड़ा प्रायश्चित कर सकते हैं। आज वे जिस हालत में जो रहे हैं, वह तो समझदार आदमी से एक दिन को भी न सही जानी चाहिये। सफाई और स्वच्छता के मामले में हरिजन बस्ती की हालत ऐसी होनी चाहिये कि मेरे जैसा आदमी वहां बिना खटके के जाकर रह सके। ईश्वर से मैं प्रार्थना करता हूं कि वह दिन जल्दी ही आये।

मेरा निश्चय

हरिजन बस्ती में रहकर ही मैं इस बार के अपने मिशन को ज्यादा अच्छी तरह पूरा कर सकूंगा। अंग्रेजी हुकूमत के नीचे हिन्दुस्तान की गुलामी दो सौ बरस से ज्यादा पुरानी नहीं है। और फिर भी हम उसे इसी दम खत्म करने को अधीर हो उठे हैं। ऐसी हालत में हम किस मुंह से हरिजनों से यह कहें कि वे उस आने वाले सुनहले समय की धीरज के साथ राह देखें, जब देश में जात-पाँत और ऊंच-नीच का कोई भेद-भाव नहीं रह जायगा और सो भी खासकर आज की दशा में, जब कि हम अपनी आजादी के दरवाजे पर खड़े हैं, हरिजनों का उत्थान अब रुक नहीं सकता। अगर स्वतंत्र हिन्दुस्तान में भी हरिजन आज ही की तरह पद-दलित बने रहें, तो मैं भी उन्हीं के साथ रहना ज्यादा पसन्द करूंगा।

३१ मार्च, १९४६ ई०

मैं पहले सुधारक हूं

अछूत कहलाने वाले भाइयों की सेवा मेरे लिये अन्य किसी राजनीतिक कार्य से कम नहीं। अभी एक क्षण पूर्व मेरे दो पादरी मित्रों ने भी यही भेद बतलाया था, फलतः मैंने उन्हें हल्की झिड़की भी दी थी। मैंने उन्हें समझाया कि मेरा समाज-सुधार का कार्य राजनीतिक कार्य से किसी प्रकार कम या उससे हेय नहीं है। सच तो यह है कि जब मैंने यह देखा कि बिना राजनीतिक कार्य के सामाजिक सेवा नहीं हो सकती, मैंने इसे अपनाया, और उसी सीमा तक, जहां तक

है मेरी समाज-सेवा में सहायता कर सकता है। इसलिये मैं स्वीकार करता हूं कि मेरे लिये सामाजिक सुधार अथवा आत्म-शुद्धि का यह कार्य शुद्ध राजनीतिक कहलाने वाले कार्य से कहीं अधिक प्रिय है।

हरिजन-सेवा

अछूतों की सेवा अथवा उनके साथ न्याय करने का क्या अर्थ है? इसका केवल यही अर्थ है कि सदियों से मियाद पूरी हो जाने वाले कर्ज को चुका देना, तथा युगों से हम जिस पाप के भागी बन रहे हैं उसका कुछ प्रायश्चित्त करना। अपने ही रक्त-मांस के संबंधी का ऋण न चुकाना और उसका अपमान करना हमारा पाप है। हमने अपने इन अभागे बन्धुओं के प्रति ऐसा ही व्यवहार किया है, जैसा एक नर-पिशाच अपने अन्य भाइयों, मनुष्यों के साथ करता है और हमने अछूतोद्धार का जो कार्यक्रम बनाया है, वह हमारे महान् पैशाचिक न्याय का कुछ अंशों में प्रायश्चित मात्र है। चूंकि यह कार्य मूलतः प्रायश्चित अथवा आत्म-शुद्धि की दृष्टि से किया जा रहा है, अतएव किसी भी दशा में इसमें भय अथवा पक्षपात की संभावना नहीं हो सकती। यदि हम इस भाव से यह कार्य करते हैं कि अछूत दूसरे मत को ग्रहण कर लेंगे, या वे हमारे ऊपर अपना क्रोध उतारेंगे, या हम एक राजनीतिक चाल के रूप में यह कार्य प्रारंभ करते हैं, तो हम हिंदू धर्म के प्रति अपना अज्ञान प्रकट करते हैं। मैं यह स्वीकार करता हूं कि मैंने ही इस प्रश्न को कांग्रेस-कार्यक्रम में इतना प्रमुख स्थान दिलाया, तथा मुझ पर आक्षेप करने वाला व्यक्ति यह कह सकता है कि मैंने अछूतों के लिये चारा फेंका था। इसका मैं तुरंत ही उत्तर देता हूं कि यह आक्षेप निराधार है। अपने जीवन के बहुत प्रारंभिक काल में ही मैं यह महसूस कर चुका था कि जिन्हें अपने हिन्दू होने का विश्वास है, यदि वे हिन्दू धर्म पर गर्व करते हैं, तो उनको इस कुप्रथा को मिटा कर प्रायश्चित्त करना चाहिये। और चूंकि कांग्रेस में हिन्दुओं का बहुमत था, और उस समय राष्ट्र के सामने जो कार्यक्रम रखा गया था, आत्म-शुद्धि का था, अतएव मैं इस प्रश्न को कांग्रेस—कार्यक्रम में इस भाव से आगे ले आया कि जब तक हिन्दू इस धब्बे को मिटाने के लिये तैयार नहीं हैं, वे अपने को स्वराज्य के योग्य नहीं समझ सकते। इस विश्वास की सार्थकता मेरे सम्मुख प्रत्यक्ष है। यदि अछूत-प्रथा का दाग लिये हुये ही आपको स्वाधिकार प्राप्त हो गया, तो मेरा विश्वास है कि आपके स्वाराज्य में अछूतों की और बुरी दशा होगी, क्योंकि इसका सीधा कारण यह होगा कि अधिकार के मद में हमारी आपकी दुर्बलता तथा कमजोरियां और भी अधिक कठोर हो जायंगी। संक्षेप में, मेरी यही स्थिति है, सफाई है और मेरा सदैव यह मत रहा है कि यह आत्म-शुद्धि स्वराज्य के लिये अनिवार्य है। मैं आज इस तथ्य पर ही पहुंचा हूं। जिस समय से मैंने स्वराज्य के विषय में विचार करना शुरू किया उसी समय से मेरा यह मत रहा है। इसलिये मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूं कि उसने मुझे इस अवसर पर उपस्थित होने योग्य बनाया। मैंने सदैव ऐसे कार्य के अवसर को मूल्यवान समझा है और इसलिये ऐसे अवसरों पर मैंने राजनीतिक कहे जाने वाले कार्यों को

ताक़ पर रख दिया है। मैं जानता हूं, जिनको राजनीतिक कहलाने वाली उत्तेजक वस्तु ही आकर्षित करती है, वे मुझपर हँसेंगे, पर यह कार्य हृदय के सब से निकट तथा सब से प्रिय है।

जब परीक्षा का समय होगा

आज इस मन्दिर को खोल कर आपने अपने कर्तव्य का पालन तथा आत्म-शुद्धि का जो कार्य किया है उसके लिये आप को बधाई देने की आवश्यकता नहीं। किन्तु मुझे, जहाँ तक मैं सोच सकता हूं, बधाई देने का अवसर शीघ्र ही उपस्थित होगा। इस मंदिर के ब्रह्मण-पुजारियों ने परिस्थिति को स्वीकार कर लिया है, पर यह संभव है वे एक दिन आप के विमुख हो जायं और यह कहें कि उनको मंदिर के पूजा-पाठ से कोई सरोकार नहीं है। यह भी संभव है कि समूचा ब्राह्मण समुदाय, समग्र सनातनी-नागर समुदाय आप के विरुद्ध षड्यंत्र कर ले। उस समय भी मैं आशा करता हूं और प्रार्थना करता हूं कि आप अपने निश्चय पर दृढ़ रहेंगे और यह सोच कर प्रसन्न होंगे कि उसी दिन मंदिर में शिव की पत्थर की मूर्ति में वास्तविक जीवन का, ईश्वर की जीवित सत्ता का संचार हो जायगा। आपके प्रायश्चित की वह चरम सीमा होगी और जिस दिन आपका समाज इस आवश्यक आत्म-शुद्धि का कार्य करने के लिये आपको जाति से बाहर कर देगा, मैं आपको हृदय से बधाई दूंगा।

हिन्दुओं के लिए

आज जो यहां पर उपस्थित हैं, उनसे मैं कह देना चाहता हूं कि हमारे सिर पर पाप का जो बोझ लदा हुआ है, उसी से हम स्वराज्य नहीं प्राप्त कर रहे हैं। यदि सभी छूत कहलाने वाले हिन्दू अपने अछूत कहलाने वाले भाइयों के प्रति अन्याय का प्रायश्चित्त करें, तो वे देखेंगे कि स्वराज्य आप से आप हमारे हाथों में आ जाता है। और कृपा करके यह भी समझ लें कि केवल शारीरिक छुआछूत दूर करने से ही कार्य नहीं चल सकता।

अछूत-प्रथा के अंत होने का अर्थ है जन्म से ही किसी को बड़ा-छोटा मानने के भेद-भाव को मिटा देना। वर्णाश्रम धर्म बड़ा सुन्दर धर्म है, पर यदि इसका उपयोग सामाजिक बड़प्पन के प्रतिपादन में होता है, तो यह बड़ी भयंकर बात हो जायगी। अछूत-प्रथा का अंत केवल इस जीवित विश्वास के आधार पर होना चाहिये कि इस सृष्टि में सब लोग एक हैं तथा स्वर्ग में बैठा परम पिता हम सबके साथ बराबर तथा समान रूप से न्याय करेगा।

यह तो एक आदमी का निजी मंदिर है। यदि इसका द्वार अछूतों के लिये खुल जाता है, तो सार्वजनिक मंदिर का द्वार कितने समय तक बन्द रहेगा। आज का यह अवसर हर एक हिन्दू की आंख खोलने वाला होगा। यह शुभ मुहूर्त उस क्रिया को प्रारम्भ करता है, जिसके द्वारा सभी हिन्दू मंदिरों के द्वार अछूतों के लिये खुल जायंगे, किन्तु अन्य बातों के समान इस दशा में भी मैं जोर-जबर्दस्ती से बचने का अनुरोध करूंगा। कुछ समय पूर्व हम बड़ी जड़ता पूर्वक

इस प्रथा से चिपटे हुये थे, किन्तु आज हम इसके प्रति उपेक्षित-से हो रहे हैं। वह समय दूर नहीं, जब वह उपेक्षा ऐसी जागृति में परिणत हो जायगी, जब हम आत्म-शुद्धि के कर्तव्य भाव से प्रेरित हो कर स्वेच्छया यह कार्य करने लगेंगे। पन्द्रह वर्ष पूर्व इस प्रकार की उपेक्षा या ऐसी दशा को बर्दाश्त कर लेना भी असंभव था। हमें यह आशा करनी चाहिये तथा इसके लिये प्रार्थना करनी चाहिये कि अब दूसरा पग होगा इच्छापूर्वक आत्म-शुद्धि का यह कार्य करना।

अभी कल ही मेरे एक मित्र ने मुझे सलाह दी थी कि अछूत अथवा अन्त्यज के लिये 'हरिजन' शब्द का उपयोग करना चाहिये। सनातनी नागर ब्राह्मण समाज के श्री नरसिंह मेहता नामक महान साधु ने अपने समाज के मत की अवहेलना कर, अन्त्यजों को अपनाकर उनके लिये सर्वप्रथम इस शब्द का उपयोग किया था। इतने बड़े साधु के प्रयोग से शुद्ध किये हुये शब्द को अपनाने में मुझे बड़ा हर्ष होता है, पर मेरे लिये अपनी तुलना में अन्त्यज वास्तव में हरिजन ईश्वर का पुरुष है, और हम दुर्जन हैं, क्योंकि हमें आराम तथा सफाई से रखने के लिये वह परिश्रम करता और अपने हाथ को गन्दा करता है। हमें तो उसे दबाने में ही आनन्द आता है। इन अन्त्यजों के सिर पर जिस दुर्बलता तथा दूषण का हम दोष मढ़ते हैं, उसकी पूरी जिम्मेदारी हमारे सिर पर है। हम अब भी हरिजन हो सकते हैं; पर इसके लिये हमें पहले उनके प्रति अपने अन्याय के लिये हार्दिक पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

हम ईश्वर से मुंह न मोड़ें

हिन्दू धर्म में छुआछूत के संबंध में मेरा मत सदा प्रतिकूल रहा है। मैं इसे सदा से एक अनावश्यक बात मानता आ रहा हूं। हां, यह सच है कि यह प्रथा हमारे यहां परम्परा से चली आ रही है। और दूसरी भी कितनी ही ऐसी प्रथायें आज तक प्रचलित हैं। बड़ी शर्म की बात होगी अगर मैं यह ख़्याल करने लगूं कि लड़कियों को वस्तुतः वेश्या-वृत्ति के लिये समर्पित कर देना हिन्दू धर्म का अंग है। परन्तु मैं तो देखता हूं कि हिन्दुस्तान के कितने ही भागों में हिन्दू लोगों में यह बात प्रचलित है। काली को बकरे का बलिदान करना मैं बिलकुल अधर्म मानता हूं और इसे मैं हिन्दू धर्म का अंग नहीं मानता। हिन्दू धर्म तो कई युगों के विकास का फल है। हिन्दू धर्म नाम तो हिन्दुस्तान के रहने वाले लोगों के धर्म का विदेशियों द्वारा रखा हुआ नाम है। हां, इसमें कोई शक नहीं कि किसी जमाने में धर्म के नाम पर जीवों का बलिदान हुआ करता था। पर वह धर्म नहीं है और हिन्दू धर्म तो और भी नहीं है। और इसी तरह मुझे तो यह भी जान पड़ता है कि हमारे पूर्वजों ने गो-रक्षा को एक अटल सिद्धान्त बना लिया तब जिन लोगों ने मांस खाना नहीं छोड़ा, उनके साथ व्यवहार करना बन्द कर दिया गया। वह झगड़ा खूब ही बढ़ा होगा। जो लोग उस नियम को न मानते थे, न केवल उन्हीं का वहिष्कार किया गया, बल्कि उनके पाप का फल उनकी सन्तान को भी भोगना पड़ा। इस तरह यह क्रम, जो कि बहुत करके अच्छे ही हेतु से शुरू हुआ था, जारी रहा, और अन्त को यह प्रथा के रूप में दृढ़

हो गया........यहां तक कि हमारे धर्म-ग्रन्थों में भी ऐसे-ऐसे श्लोकों का प्रवेश हो गया जिनके बल पर यह प्रथा चिरस्थायी हो गई। पर वास्तव में यह योग्य नहीं था और समर्थनीय तो उससे भी कम था। मेरा अनुमान चाहे ठीक हो, या न हो, अस्पृश्यता तर्क के और दया, करुणा और प्रेम-भाव के विरुद्ध तो अवश्य है। जो धर्म गो-पूजा की स्थापना करता है, वह भूलकर भी मनुष्य प्राणी के निर्दयतापूर्ण और अमानुषिक वहिष्कार को न तो आवश्यक मान सकता है और न उसे जारी ही रख सकता है। और मैं तो अछूत जातियों को अपने से अलग रखने की अपेक्षा अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाने से अधिक सन्तुष्ट रहूंगा। अगर हिन्दू लोग अपने उच्च उदात्त धर्म को, अस्पृश्यता के कलंक को कायम रखते हुये, निन्दनीय बनायेंगे, तो वे अवश्य ही कभी न तो स्वतंत्रता के योग्य होंगे और न उसे प्राप्त ही कर सकेंगे। और चूंकि मैं हिन्दू धर्म को अपने प्राण से भी अधिक प्यार करता हूं, यह कलंक मेरे लिये असह्य भार हो गया है। अपनी जाति के पंचमांश मनुष्यों को बराबरी के साथ रहने-धरने का अधिकार देने से इन्कार करके हम ईश्वर से मुंह न मोड़ें।

ईश्वर की मंशा

मुझे मृत्यु की अभिलाषा नहीं है। मैं हरिजनों की सेवा के लिये जिन्दा रहना चाहता हूं। पर यदि मरना ही है तो क्या चिन्ता? अस्पृश्यता की गन्दगी जितनी मैंने जानी थी, उससे कहीं अधिक गहरी है, इसलिये यह आवश्यक है कि मैं और मेरे साथी, यदि जिन्दा रहना है तो अधिक स्वच्छ बनें। यदि ईश्वर की यह मन्शा है कि मैं हरिजनों की सेवा करूं, तो मेरा भौतिक भोजन बन्द होने पर भी ईश्वर मुझे जो आध्यात्मिक भोजन भेजता रहेगा वह इस देह को टिकाये रखेगा, और यदि सब अपने-अपने कर्तव्य का पालन करते रहेंगे तो वह भी मेरे लिये भोजन का काम देगा। कोई अपने स्थान से न हटे। कोई मुझे उपवास रोकने को न कहे।

दीन-दुखियों से तादात्म्य

........मुझे इस बात पर विश्वास है कि मेरे प्रति आपका जो प्रेम है उसका कारण और कुछ नहीं.......यही है कि मैं दीन-दुखियों के साथ तदाकार हो गया हूं। मैं भंगी के साथ भंगी हो सकता हूं, ढेड़ के साथ ढेड़ हो कर उसका काम कर सकता हूं। यदि इस जन्म में अस्पृश्यता समूल न मिटी और मुझे दूसरा जन्म लेना पड़ा, तो मैं चाहता हूं कि भंगी के ही घर मेरा जन्म हो। यदि अस्पृश्यता के कायम रहने के कारण मुझे हिन्दू धर्म छोड़ देना पड़े तो मैं जरूर छोड़ दूं, और कलमा पढ़ लूं, या बपतिस्मा ले लूं। पर मुझे तो अपने धर्म पर इतनी श्रद्धा है कि मुझे उसी में जीना और उसी में मरना है। सो इसके लिये भी अगर फिर जन्म लेना पड़े, तो मैं भंगी के ही घर लूंगा।

हज्जाम या वालन्द ?

हज्जाम शब्द के इस्तेमाल में जो हल्कापन है, वह असल में धन्धे के लिये है। हज्जाम शब्द उनके लिये है, जिनका धन्धा बाल काटने का है। वह अच्छा न लगे तो मैं वालन्द शब्द ही काम में लूंगा। लेकिन मेरी पक्की राय है कि इससे असली रोग दूर नहीं होगा। सच्चा उपाय तो यह है कि जो-जो जरूरी मगर मैला साफ करने वाले धन्धे हैं, उन धन्धों के लिये नफरत दूर की जाय, फिर नाम कुछ भी रखा जाय, इस बारे में हम उदासीन रह सकते हैं। 'नाम धरावे हेत हरि, बालपने में जाय मरी' इसका हम क्या करें? इससे हम हरि शब्द का तिरस्कार नहीं करेंगे। शब्दों की प्रतिष्ठा मनुष्य की प्रतिष्ठा की तरह बढ़ती-घटती रहती है, और रहेगी।

इस सुधरे हुये जमाने में तो सब अपनी-अपनी हजामत करना सीख रहे हैं, इसलिये वालन्द के धन्धे में जो हल्कापन है, वह अपने आप निकल जायगा। कुछ–कुछ निकल भी गया है। मेरे दिल में वालन्द, भंगी, चमार, ढेड़ वगैरह शब्द के लिये कुछ भी नफरत नहीं रही। मैं तो ये सब धन्धे करता हूं, दूसरों को करने की प्रेरणा करता हूं और ऐसा करने में मुझे आनन्द होता है। उक्त धन्धे करने वाले भाइयों को मेरी सलाह है कि वे यह भूल जायं कि इस धन्धे के लिये समाज में नफरत है। और वे इन धन्धों में होशियार हो कर अपना आचार-विचार शुद्ध करके उन धन्धों की और अपनी इज्जत बढ़ावें। इसी गरज से, हालांकि मुझे अपनी हजामत अच्छी तरह बनानी आती है, तो भी जहां कहीं खादी पहनने वाला नाई मिल सकता है, वहां उसे तकलीफ देता हूं और उसे देश-सेवा में लाने की कोशिश करता हूं।

हमें शुद्ध स्वराज्य लेना है, इसलिये ऐसे धन्धे करने वाले सभी लोगों की मदद और सुधार की जरूरत है। हमारे यहां चमार, जुलाहे, मोची और ढेड़ वगैरह ज्ञानी भक्त हो चुके हैं। तो फिर उनमें से कोई अपनी सेवा के बल पर राष्ट्रपति हो जाय तो क्या बड़ी बात है। ऐसा धन्धा करने वाला अपना आचरण बिलकुल शुद्ध रख सकता है और इस तरह अपनी बुद्धि तेज कर सकता है। दुःख यह है कि ऐसा धन्धा करने वाले बुद्धिशाली निकलते हैं, तो उन्हें अपने धन्धे से शर्म आती है और आखिर में वे उसे छोड़ देते हैं। मेरे ख़्याल का राष्ट्रपति वालन्द या मोची के धन्धे से गुजर करते हुये राष्ट्र की बागडोर संभालता रहेगा। यह हो सकता है कि राष्ट्र के काम के बोझ के कारण वह अपने धन्धे को पूरी तरह न कर सके।

२२ दिसम्बर, १६२६ ई०

छुआछूत और फ्लश का तरीका

एक प्रश्न के उत्तर में गांधी जी लिखते हैं :—

जहां पानी की इफरात है और जहां गरीबों को मुसीबत में डाले बिना सफाई के नये तरीके दाखिल किये जा सकते हैं, वहां इस बारे में मुझे कोई एतराज नहीं

हो सकता। सच तो यह है कि उस हालत में शहर की तन्दुरुस्ती को सुधारने के एक जरिये की तरह उसका स्वागत ही किया जाना चाहिये। फिलहाल तो पानी की मदद से मैला बहाने का यह तरीका शहरों में और कस्बों में ही शुरू किया जा सकता है। मशीनों की मेरी मुखालिफत के बारे में आमतौर पर बहुत गलत-फहमी फैली हुई है। मैं मशीन नाम का विरोधी नहीं हूं, बल्कि मैं उन मशीनों का विरोध करता हूं जो मजदूरों की मजदूरी छीन कर उन्हें बेकार बना देती हैं। फ्लश के तरीके को अपनाने से छुआछूत का पाप धुलेगा या नहीं, इसमें मुझे शक है। यह पाप तो हमारे दिलों के अन्दर से निकलना चाहिये। मैले को पानी से बहाने के तरीके से या ऐसे दूसरे तरीके अपनाने से ही छुआछूत नहीं मिटेगी। जब तक हम खुद भंगी नहीं बन जाते और झाड़ू लगाने या पाखाने साफ करने में जो एक शान है, उसे महसूस नहीं करते, तब तक छुआछूत सचमुच नहीं मिटेगी।

खुलासा..........फ्लश के तरीके में पानी की मार से पाखाने साफ किये जाते हैं और बड़े-बड़े शहरों में यह तरीका चल रहा है। पाखाने के ऊपरी हिस्से में अपने-आप पानी से भर जाने वाली एक टंकी रखी जाती है। जंजीर के झटके से टंकी के पानी को खोलने से पानी नीचे को धंस जाता है, और उसकी मार से मैला धुल कर व बह कर गटर की राह को चला जाता है। चूंकि पानी की मार से मैला धोने व बहाने का यह एक तरीका है, इसलिये अंग्रेजी में इसे फ्लश सिस्टम कहा जाता है।

नई दिल्ली, २ सितम्बर, ४६ ई०

लेडी माउन्टबेटन

आज वायसराय साहब की पत्नी यहां आयी थीं। उनके आने का मेरे ख्याल में कोई सबब नहीं था। मैंने टेलीफोन पर उनको कह भी दिया था कि आप यहां आने का क्यों कष्ट करती हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि जब आप हमारे पास इतनी दफा आ चुके, तो मुझे भी आपके यहां आना चाहिए। मैंने कहा कि मैं तो अपने काम से वायसराय साहब के पास आता था और आना चाहिये था। मगर वे न मानीं, और आखिर आईं। वे बड़ी सादगी से रहने वाली हैं और हमारे पास वैसे ही आ कर बैठ गईं जैसे हम यहां बैठे हुये हैं। उन्होंने सब बातें दरियाफ्त कीं। यह भी पूछा कि हमारा जीवन यहां कैसे बीतता है, और हर चीज में दिलचस्पी ली। मैंने बताया कि मैं तो यहां मेहतरों के बीच में रहता हूं। परन्तु मैंने यह कहा कि मैं तो यहां एक मंदिर में रहता हूं, जो काफी स्वच्छ है और होना भी चाहिये। यदि आप को कुछ देखना है, तो यहां पास ही भंगियों की एक बस्ती पड़ी है, उसे जा कर देख लें। आप उसे ढाकर दूसरी बनवा सकें, वह अधिकार तो आपने छोड़ दिया, और अच्छा किया। उन्होंने रसपूर्वक सब कुछ वहां जा कर देखा। मैं इसलिये उनके साथ नहीं गया कि लोगों की भीड़ वहां जमा हो जाती। इसके बाद वे हरिजन-निवास गईं, जहां

पर कि हरिजन लड़कों को काम सिखाया जाता है। वहां तो उनके खुश होने जैसी चीज ही थी। वहां एक मन्दिर और स्तम्भ भी बन चुके हैं। सारांश यह है कि वे वहां से खुश हो कर लौटीं।

नई दिल्ली, ५ जुलाई, १९४७ ई०

शरीर-श्रम

सबको अपना-अपना भंगी तो बनना ही चाहिये ।.......................... सबसे अच्छी बात तो यह है कि जो मैला करे वही अपना मैला छोड़े भी । अगर यह मुमकिन न हो, तो सब परिवार अपना कर्तव्य करें। जहां भंगी के पेशे को अलग पेशा माना है, वहां कोई भारी दोष घुस गया है ।................ बचपन से ही हमारे मन में यह भावना बंस जानी चाहिये कि हम सब भंगी हैं.... जो इसे समझ चुके हैं, वे पाखानों की सफाई से शरीर-श्रम आरम्भ करें।

हरिजन-सेवा

हर एक हिन्दू को यह समझना चाहिये कि हरिजन-सेवा उसका अपना काम है, और उसमें उसे पड़ा रता करनी चाहिये, और जिस अकुलाने वाली व भयानक अलहदगी में उन्हें रहना पड़ता है, उसमें उनके साथ लड़ रहना चाहिये ।

सफ़ाई

........आप जो पानी पियें, जो खाना खायें और जिस हवा में सांस लें, वे सब बिलकुल साफ होने चाहिएं। आप सिर्फ अपनी निज की सफाई से संतोष न मानें, बल्कि हवा , पानी और खुराक की जितनी सफाई आप अपने लिये रखना चाहें उतनी ही सफाई का शौक आप अपने पड़ोस में फैलायें।

मेरा राम-राज्य

मैं भारत में ऐसा राम-राज्य चाहता हूं जिसमें गरीब-से-गरीब आदमी भी यह अनुभव करे कि यह मेरा देश है और उसके संगठन में उसके मत का भी मूल्य है। ऐसे राज्य में उच्च श्रेणी और नीच श्रेणी के रूप में मनुष्य का कोई समाज नहीं होगा, सब सम्प्रदाय वाले परस्पर प्रीति का संबंध रखते हुये वास करेंगे, अस्पृश्यता नाम की कोई वस्तु नहीं होगी मादक द्रव्य, शराब आदि का नाम नहीं रहेगा तथा नारी समाज पुरुष समाज के समान ही अधिकार का भोग करेगा।

जो बोया सो काटा

हमने जैसा बोया वैसा ही काटा। अछूत भाइयों का तिरस्कार करके हम संसार के तिरस्कार के पात्र हुये हैं ।

मेरे प्रभु के हजारों रूप

मेरे प्रभु के हजारों रूप हैं। कभी मैं उसका दर्शन चरखे में करता हूं तो कभी साम्प्रदायिक एकता में और कभी अस्पृश्यता निवारण में, और कभी रोगियों और दुखियों की सेवा में।

छूत-छात मत मानो

छूत-छात मत मानो। किसी को ऊंचा-नीचा मत समझो। किसी को दुःख मत पहुंचाओ। माता-पिता तथा दीन-दुखियों की सेवा करो।

कांग्रेस ने क्या किया है ?

गुजरात के एक हरिजन भाई के पत्र के उत्तर में गांधी जी लिखते हैं—

इस खत में अज्ञान है और कसक है। दोनों माफ करने लायक हैं। हम इस चीज के भेद व राज को समझ लें। कांग्रेस को जो इतने सारे हरिजन मिले हैं, उसका मतलब ही यह है कि कांग्रेस ने उनकी कुछ न कुछ सेवा की है। आज हरिजन दूसरों के मुहताज हैं, पराधीन हैं। वे हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज के कभी अलग न किये जा सकने वाले अंग हैं। अगर वे अलग हो जायं, तो समझिये कि हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज का नाश हो जाय....होना चाहिये। खत लिखने वाले भाई की मन्शा यह दिखाने की है कि सवर्ण कहे जाने वाले हिन्दुओं को अवर्ण या हरिजन कहलाने वालों के तई जो फर्ज अदा करना चाहिये उतना उन्होंने नहीं किया। मैं अपनी मर्जी से हरिजन बना हूं और हरिजनों में भी अपने को भंगी मानता हूं। अपनी इस हैसियत से मैं यह कहता हूं कि सवर्ण या अवर्ण का यह भेद या फर्क मिटाना चाहिये। अवर्णों या हरिजनों में भी बहुत सी छोटी-छोटी जातियां हैं, वे मिटनी चाहिएं। आज सब की एक ही जाति है ..भंगी। भंगी सब का, अकेले हिन्दुओं का ही नहीं, बल्कि सारी मनुष्य जाति का सेवक है। जब हम ऐसे भंगी बन जायगे तो सब वाद मिट कर एक ही वाद रह जायगा, यानी फिर कोई वाद न रहेगा। जहां सभी सेवक हों, वहां स्वामी कौन ?

लेकिन फिलहाल तो यह एक सपना है, मनोरथ है। मगर कोई समाज महज सपनों पर ही नहीं जी सकता। उसे तो ठोस चीज चाहिये।

हिन्दुओं की दुनिया में कांग्रेस ही एक ऐसी जमात है, जिसके नजदीक सब बराबर हैं, फिर वे हिन्दू हों, मुसलमान हों, या किसी भी जाति के हों। चुनांचे कांग्रेस का तो यह काम है कि जो नीचे पड़े हुये हैं, उनको ऊपर उठाये और जो ऊपर चढ़ कर बैठे हैं उन्हें नीचे उतारे, जो ठेठ पाताल में हैं, उन्हें सतह पर लाये और इस तरह सब को बराबरी की जगह पर लाकर खड़ा कर दे। इस कोशिश में बीच का रास्ता मिल जायगा। न किसी को हिमालय की चोटी पर रहना है, न नीचे पाताल में। सब को माता की सुन्दर, हमवार सतह पर रहना है। यह कांग्रेस की प्रतिज्ञा अहद है। कांग्रेस अभी इसे पूरा नहीं कर पाई है।

हरिजन के इन पत्रों से यह साबित होता है कि जब तक कांग्रेस अपने इस अहद को पूरा नहीं करती, तब तक उसके खिलाफ ऐसी शिकायतें करने के मजबूत कारण हरिजनों के पास रहेंगे।

इन भाई से तो मुझे एक ही बात कहनी है। वे जो इतनी अच्छी लिखावट वाला खत लिख सके, सो किसकी बदौलत? हरिजनों के लिए कांग्रेस से बढ़कर काम और किस संस्था ने किया है? सच है कि कांग्रेस ने सब कुछ नहीं किया, बहुत करना बाकी है। लेकिन साथ ही यह भी सच है कि जितना उसने किया उतना और किसी ने नहीं किया। इसलिए हरिजनों को सब्र से काम लेना चाहिए। इसमें शक नहीं कि सब्र की भी हद होती है। मगर अभी वह घड़ी नहीं आई है।

नई दिल्ली, १५ जून, १६४६ ई०

मेरा निश्चय

मैं अछूतों के साथ भाई-चारा बढ़ाऊंगा, उनके साथ अपने सगे भाई जैसा बर्ताव करूंगा, और तमाम छोटी-छोटी जातियों और उपजातियों को तोड़ डालूंगा, और चुनांचे जब मैं अपने लड़के का ब्याह करूंगा तो कोशिश करके दूसरी उप-जातियों में से लड़की ढूंढ़ लूंगा। आज हम भद्दी रूढ़ियों से इतने जकड़े हुए हैं कि आप न यहां से गुजरात में जा बसने को लड़की देंगे और न गुजरात की लड़की तामिलनाड में बसने को लेंगे।

इसके बाद अछूतों को धार्मिक शिक्षा या मजहबी तालीम के तौर पर हिन्दू धर्म के और नीति-धर्म के उसूलों की मामूली जानकारी कराऊंगा। आज तो वे बेचारे महज जानवरों की सी जिन्दगी बिता रहे हैं। मैं उन्हें निषिद्ध या ममनूअ खुराक छोड़ने और पाक व साफ जीवन बिताने को समझाऊंगा। आप इन बातों को आसानी से बढ़ा सकेंगे और इनमें से एक बड़ा रचनात्मक कार्यक्रम पैदा कर सकेंगे।

अस्पृश्यता की समस्या

अस्पृश्यता की व्याख्या

१—अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं है, बल्कि उसमें घुसी हुई सड़न है, वहम है, पाप है और उसको दूर करना हर एक हिन्दू का धर्म है उसका परम कर्तव्य है।

२—अस्पृश्य माने जाने वाले लोग चारों वर्णों के ही अंग हैं।

३—जन्म के कारण मानी गई इस अस्पृश्यता में अहिंसा धर्म और सर्वभूतात्म भाव का निषेध हो जाता है। इसकी जड़ में संयम नहीं है, उच्चता की उद्धत भावना ही वहां बैठी हुई है। इसलिए यह स्पष्टतः अधर्म ही है। इसने धर्म के बहाने लाखों, करोड़ों की हालत गुलामों की-सी कर डाली है।

४—सार्वजनिक मेले, बाजार, दुकानें, मदरसे, धर्मशालाएं, मन्दिर, कुएं, रेल, मोटरों इत्यादि में, जहां कहीं दूसरे हिन्दुओं को आजादी से जाने और उनसे लाभ उठाने का अधिकार है, हरिजन स्वच्छन्द रूप से जा सकते हैं। इस अधिकार से उन्हें वंचित रखने वाला अन्याय करता है। इस अधिकार को स्वीकार करने वाले उन पर मेहरबानी नहीं करते, बल्कि अपनी ही भूल को सुधारते हैं।

५—सैकड़ों वर्षों के अमानुष व्यवहार और संस्कारवान वर्णों के संसर्ग से वंचित रहने के फलस्वरूप अस्पृश्यों की स्थिति इतनी अधिक दयनीय हो गई है और वे इतने अधिक नीचे गिर गये हैं कि उन्हें दूसरे वर्गों की कोटि में चढ़ाने के लिए संस्कारवान हिन्दुओं के विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है। इसलिए अस्पृश्य तथा दूसरी दलित या पिछड़ी हुई जातियों की सेवा में अपना जीवन अर्पण करना और इस कार्य में उदार हृदय से सहायता करना इस युग के संस्कार वाले हिन्दुओं का अति पवित्र कर्तव्य है।

६—इस दृष्टि से दलित जातियों के लिए विशेष संस्थाओं और सुविधाओं की जरूरत है। पर विशेष संस्थाओं और सुविधाओं की व्यवस्था कर देने से उनका सार्वजनिक संस्थाओं और सुविधाओं से लाभ उठाने का अधिकार चला नहीं जाता।

७—अछूतों की स्थिति सुधारने के लिए यह जरूरी नहीं है कि उनसे परम्परागत पेशे छुड़वाये जायं अथवा उन पेशों के प्रति उनके मन में अरुचि पैदा की जाय। ऐसा नतीजा पैदा करने के लिए की गई कोशिश उनकी सेवा

नहीं, असेवा होगी। बुनकर बुनता रहे, चमार चमड़ा कमाता रहे और भंगी पाखाना साफ करता रहे और तब भी वह अछूत न समझा जाय, तभी कह सकते हैं कि अस्पृश्यता का निवारण हुआ।

८—भंगी समाज की गन्दगी को दूर करके उसे रोज-रोज साफ-सुथरा रखने का पवित्र कार्य करता है। यह कार्य नियमित रूप से न हो तो सारा समाज मरने की दशा को पहुंच जाय। यह कहना यथार्थ नहीं है कि वे अपने पेशे की बदौलत संस्कारहीन तथा निर्बल दशा को प्राप्त हुए हैं। इन पेशों की तरह इस पेशे में भी अनेक सुधारों की गुंजाइश है, पर यह बिल्कुल भिन्न प्रश्न है। संस्कारवान हिन्दू इसको खुद कर दिखा कर उसमें बहुत सुधार कर सकते हैं।

९—अछूतों में घुसी हुई मुरदार मांस खाने की प्रथा ही बतलाती है कि उनकी दरिद्रता कितनी करुणाजनक है। इस दरिद्रता के दूर होने और उन्हें समझाने से यह आदत छूट सकती है।

१०—केवल अपना आचार अच्छा रखने से कोई संस्कारवान नहीं बन सकता। स्वयं जिसे हम गन्दा काम मानते हों उसे करने को दूसरे को विवश होना पड़े, इस प्रकार का व्यवहार संस्कारहीनता की निशानी है। अपने को संस्कारवान मानने वाले वर्ण अछूतों को अपनी जूठन या बासी, उतारन या अपवित्र हुई वस्तु दें, और उनके साथ पशु से भी बुरा व्यवहार करें, यह असंस्कारता है और साथ ही पाप भी।

अस्पृश्यता के बारे में मेरी दृष्टि

अस्पृश्यता के बारे में मेरी दृष्टि अधिकांश नहीं तो बहुत से कांग्रेसजनों से कदाचित भिन्न है। मेरे लिए तो यह एक गम्भीर धार्मिक और नैतिक प्रश्न है। बहुतों का विचार है कि इस प्रश्न को जिस तरह और जिस समय मैंने हाथ में लिया उससे सत्याग्रह आन्दोलन की गति में बाधा डाल कर मैंने भारी भूल की। पर मैं अनुभव करता हूं कि अगर मैंने कोई दूसरा मार्ग पकड़ा होता तो मैं अपने तईं सच्चा न रहा होता।

अस्पृश्यता का अभिशाप

जब तक अस्पृश्यता के अभिशाप से हिन्दू का मस्तिष्क कलुषित है तब तक वह संसार की आंखों में अस्पृश्य है और एक अस्पृश्य अहिंसात्मक स्वराज्य की लड़ाई नहीं जीत सकता। अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ है तथाकथित अस्पृश्यों के साथ भाई-चारे का सम्बन्ध भाव रखना। जो मनुष्य उनके साथ ऐसा सद्व्यवहार करेगा उसे ऊंच-नीच की भावना, वास्तव में सब गलत वर्ग भावनाओं से दूर रहना पड़ेगा। उसके लिए सारा संसार ही एक परिवार की तरह होगा। अहिंसात्मक स्वराज्य के अन्दर किसी देश को शत्रु देश के रूप में देखने की भावना असम्भव होगी।

अस्पृश्यता का व्यवहार

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि अन्त्यजों के सम्बन्ध में मेरे जो विचार हैं वह बाइबिल और मिशनरियों के संग का फल है। परन्तु ऐसा कहना उनकी भूल है। बारह वर्ष की अवस्था से ही मेरे ऐसे विचार हैं। मैं पक्का सनातन धर्मी हूं।

मैंने गीता आदि धर्म-शास्त्रों का प्रारम्भ से ही बड़े परिश्रम और छान-बीन के साथ अभ्यास किया है। अच्छे-अच्छे विद्वानों से धर्म-शास्त्रों की कथाएं सुनी हैं। मुझे किसी शास्त्र में भी ऐसा प्रमाण नहीं मिला कि अन्त्यजों के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाय। जो व्यवहार वर्तमान समय में अन्त्यजों के साथ किया जा रहा है उसकी पुष्टि किसी शास्त्र द्वारा नहीं होती।

हिन्दू धर्म के अनुसार जैसी लोगों को मोक्ष की इच्छा रहती है वह आकांक्षा मुझे भी है। मुझे तो यहां तक विश्वास है कि इसी जन्म में मेरा मोक्ष हो जायगा। परन्तु यदि मैं जन्म भी लूं तो ब्राह्मण या वैश्य के घर जन्म लेना नहीं चाहता। मैं यही चाहता हूं कि मैं अन्त्यजों के घर जन्म लेकर उनके दुःखों का अनुभव कर हिन्दू जाति के सिर पर जो अस्पृश्यता का कलंक है उसका प्रायश्चित्त करूं और इस पाप को हटाऊं।

मैं वर्तमान ब्रिटिश शासन की बुराई करता रहा हूं और अनेक भारतवासी भी इस बात को अच्छी तरह जानकर मेरे साथ सहमत हो गए हैं।

परन्तु मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि जो अत्याचार ब्रिटिश शासन का हम पर हो रहा है, वही दोष हिन्दुओं का अन्त्यजों के साथ देखने में आ रहा है। डायर और ओडायर ने जलियान वाले बाग में सहस्रों भारतवासियों के प्राण हरे। मैं उनके दुःखों को अभी तक दूर नहीं कर सका हूं।

उन अत्याचारियों ने लोगों को पेट के बल चलाया। उनसे जमीन पर नाकें रगड़वाईं। परन्तु दुःख है कि करोड़ों अन्त्यज स्त्री, पुरुष और बच्चों को भी अस्पृश्य बना कर उसी प्रकार हम अपमानित कर रहे हैं जिस प्रकार डायर और ओडायर ने सहस्रों भारतीयों को किया।

फिजी और दक्षिण अफ्रीका में लोग हमको भी अस्पृश्य समझ रहे हैं। यह हमारे उसी पाप का फल है जो भारतवर्ष में हम अन्त्यजों के साथ कर रहे हैं। याद रखना चाहिये कि अस्पृश्यता का कलंक जब तक हम अपने ऊपर से नहीं हटायेंगे तब तक स्वराज्य मिलना कठिन है। हमारे कुछ भाइयों को अपमानित रख कर यदि स्वराज्य मिला भी तो मुझे ऐसे स्वराज्य के साथ भी असहयोग करना पड़ेगा।

यदि हिन्दू भाई अस्पृश्यता का कलंक दूर कर दें तो मैं छः मास में स्वराज्य-प्राप्ति की योग्यता भारत में ला सकता हूं।

यद्यपि विचारों में कुछ-कुछ परिवर्तन होने लगा है। मद्रास प्रान्त में नेलोर से पांच कोस दूर उच्च वर्ग के ब्राह्मणों का एक गांव है। वहां पर मुझे

उन्होंने निमंत्रण देकर बुलाया। परन्तु मैंने यह कह दिया था कि मेरे साथ कुछ अन्त्यज हिन्दू भाई भी आयेंगे। उन्होंने स्वीकार कर लिया। फल यह हुआ कि यह अन्त्यज लोग उन ब्राह्मणों के घरों तथा मन्दिरों में सर्वत्र गए, परन्तु उन्होंने कोई भी आपत्ति नहीं की।

हमारे 'सत्याग्रह-आश्रम' में तो यहां तक इस विचार में परिवर्तन हो गया है कि एक वेद और शास्त्र के वेत्ता ब्राह्मण ने, जिसके धर्मोपदेश सुनकर मुझे बहुधा शान्ति मिला करती है, भंगी का काम करना शुरू कर दिया है। केवल इसी निमित्त कि भंगी भाई अपने धंधे को करते हुए भी शुद्धता और स्वच्छता से रहना तथा विद्याभ्यास करना भी सीखें।

अछूत का भूत

बहुत से सनातनी अछूत के भूत को मानते हैं और उसके पालन में धर्म समझते हैं। लेकिन हममें कौन सच्चा सनातनी है, इसका न्याय तो ईश्वर ही चुकायेगा। इसी तरह यदि कांग्रेस भी अधर्म को धर्म का लिबास पहनाती है तो हमें कांग्रेस बन्द कर देनी पड़ेगी। कांग्रेस को तो कौन मार सकता है ? पर हम उसके सामने मर जायंगे। आत्म-हत्या करके नहीं मरेंगे, पर हम तब तक उसका मुकाबला करेंगे और उसके आगे सिर नहीं झुकायेंगे जब तक हम उसे सही रास्ते पर नहीं लायेंगे या खुद मर नहीं जायेंगे। लेकिन ऐसा तब करेंगे जब हम देखेंगे कि कांग्रेस जान-बूझकर गलती करती है। मेरी समझ से इस समय तो वह ऐसा नहीं कर रही है। न उसने पहले ऐसी गलतियां की हैं। यदि वह अधर्म को ही धर्म मान कर आज तक चलती तो वह वहां तक नहीं पहुंच पाती, जहां तक आज पहुंची है।

नई दिल्ली, ७ जून, १९४७ ई०

अछूत प्रथा और उसकी विषमताएं

अछूतोद्धार के विषय में अपनी अमूल्य सम्मति प्रकट करने के लिए मुझसे कहना एक प्रकार से अनावश्यक ही है। मैंने अगणित बार सार्वजनिक व्याख्यानों में कहा है कि यह मेरे हृदय की प्रार्थना है कि यदि मैं इस जन्म में मोक्ष न प्राप्त कर सकूं, तो अगले जन्म में भंगी के घर पैदा होऊं। मैं जन्मना तथा कर्मणा दोनों रूप से वर्णाश्रम में विश्वास रखता हूं, किन्तु भंगी को किसी भी रूप में हीन आश्रम का नहीं समझता। मैं ऐसे बहुत से भंगियों को जानता हूं, जो आदर तथा श्रद्धा के पात्र हैं। मैं ऐसे बहुत से ब्राह्मणों को भी जानता हूं, जिनके प्रति जरा भी श्रद्धा तथा आदर का भाव होना कठिन ही है। मेरे उपर्युक्त विचार होने के कारण मेरी धारणा है कि अछूतों के बीच में ही जन्म लेने से मैं उनकी अधिक लाभदायक सेवा कर सकूंगा तथा दूसरे समुदायों से उनकी ओर से बोल सकूंगा।

किन्तु जिस प्रकार मैं यह नहीं चाहता कि छूत कहलाने वाले अछूतों से घृणा करें, उसी प्रकार मैं यह भी नहीं चाहता कि अछूत के हृदय में छूत के प्रति कोई दुर्भाव हो। मैं नहीं चाहता कि पश्चिम के समान वे हिंसा द्वारा अपना अधिकार प्राप्त कर लें। मैं स्पष्ट रूप से अपने सामने ऐसा समय देख सकता हूं, जब संसार में शक्ति के फैसले से ही अपना अधिकार प्राप्त करना सम्भव न होगा। इसीलिए जिस प्रकार मैं ब्रिटिश सरकार के विषय में कहता हूं, उसी प्रकार अपने अछूत भाइयों से आज कहता हूं कि यदि वे अपनी कार्य-सिद्धि के लिए शक्ति की शरण लेंगे, तो अवश्य ही असफल होंगे। मैं हिन्दू धर्म का उद्धार करना चाहता हूं। मैं अछूतों को हिन्दू समाज का अन्तर्भाग समझता हूं। जब मैं एक भी भंगी को धर्म के दायरे के बाहर जाते देखता हूं, तो मुझे बड़ा क्लेश होता है; किन्तु मेरा यह विश्वास है कि समुदाय के सभी भेद मिटाए नहीं जा सकते। मैं गीता में भगवान् कृष्ण द्वारा सिखलाए गए समानता के सिद्धान्त में विश्वास करता हूं। हमें गीता की सीख है कि चारों जातियों, वर्णों के लोगों को समान भाव से देखना चाहिए पर उसने ब्राह्मण तथा भंगी के लिए एक ही धर्म नहीं बतलाया है। उसका तो कहना है कि जिस प्रकार ब्राह्मण की पांडित्य के लिए प्रतिष्ठा होती है, उसी प्रकार भंगी की भी होनी चाहिए। इस लिए हमारा कर्तव्य है कि इस बात का ध्यान रखें कि अछूतों को यह महसूस न होने पाये कि उनसे हिकारत की जाती है। चाहे ब्राह्मण हो या भंगी, यदि वह एक ही ईश्वर की पूजा करता है, तथा अपने शरीर और मन को स्वच्छ रखता है, तो मैं उसे किस प्रकार दो निगाहों से देख सकता हूं। कम से कम मैं तो यह पाप समझता हूं कि भंगी को रसोई का बचा-खुचा जूठा भोजन दिया जाय, या आवश्यकता पड़ने पर उसकी सहायता न की जाय।

मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर दूं। यद्यपि मैं यह मानता हूं कि हिन्दू धर्म अछूत-प्रथा के वर्तमान रूप की कोई शास्त्रीय आज्ञा नहीं है, पर किन्हीं दशाओं में, एक सीमित रूप में, अछूत-प्रथा को स्वीकार किया गया है। उदाहरण के लिए जब कभी मेरी माता कोई गंदी चीज छूती थीं तो वह अछूत हो जाती थीं, और स्नान द्वारा उन्हें शुद्ध होना पड़ता था। कोई अपने जन्म से अछूत हो सकता है, यह मानना मैं एक वैष्णव होने के नाते अस्वीकार करता हूं। धर्म में जिस प्रकार के अछूतपन की आज्ञा है, वह प्रकृतितः अस्थायी है...... कर्म तथा क्रिया द्वारा शुद्धि-अशुद्धि होती है, न कि कर्त्ता द्वारा। इतना ही नहीं, ठीक जिस प्रकार बचपन में अपनी माताओं की सेवाओं, हमारे मैले-कुचैलेपन को दूर करने की शुश्रूषाओं के लिए हम लोग उनकी प्रतिष्ठा करते हैं, ठीक उसी प्रकार समाज की सेवा करने के कारण भंगी का सबसे अधिक आदर होना चाहिए। इसके साथ एक दूसरी बात भी है। मैं सहभोज तथा अन्तर्जातीय व्याह को अछूत-प्रथा दूर करने के लिए अनिवार्य नहीं मानता। मैं वर्णाश्रम धर्म में विश्वास

करता हूं, पर भंगियों के साथ खाना भी खाता हूं। मैं नहीं कह सकता कि मैं संन्यासी हूं; क्योंकि इस कलियुग में कोई सन्यासी के लिए निर्धारित नियमों का पालन कर सकता है, इसमें मुझे घोर संदेह है। पर मैं जानबूझ कर सन्यास की ओर अग्रसर हो रहा हूं। इसलिए मेरे लिए बन्धन का पालन करना आवश्यक ही नहीं, प्रत्युत हानिकर भी है। अन्तर्जातीय ब्याह का प्रश्न मेरी ऐसी दशा वाले के लिए उठता ही नहीं। मेरे लिए यही कहना पर्याप्त है कि मेरी योजना में अन्तर्जातीय ब्याह नहीं है। मैं आपको यह बतला देना चाहता हूं कि मेरे समाज में सब लोग एक साथ एक दूसरे के यहां भोजन नहीं करते। हमारे कतिपय वैष्णव-परिवारों में दूसरे का बर्तन या दूसरे की अंगीठी की आग भी काम में नहीं लाते। आप इस प्रथा को अन्ध-विश्वास कह सकते हैं, पर मैं इसे ऐसा नहीं समझता। यह तो निश्चित है इससे हिन्दू धर्म की कोई हानि नहीं हो रही है। मेरे आश्रम में एक अछूत साथी अन्य आश्रमवासियों के साथ बिना किसी भेद-भाव के भोजन करता है, पर मैं आश्रम के बाहर किसी व्यक्ति को ऐसा करने की सलाह नहीं देता। साथ ही आप यह भी जानते हैं कि मैं मालवीय जी की कितनी इज्जत करता हूं। मैं उनके पैर धो सकता हूं। पर वह मेरा छुआ खाना नहीं खा सकते। क्या मैं इसे अपने प्रति उनकी उपेक्षा समझकर इससे बुरा मानूं? हरगिज नहीं, क्योंकि मैं जानता हूं कि वह उपेक्षा के कारण ऐसा नहीं करते।

मेरा धर्म मुझे मर्यादा धर्म का पालन करना सिखलाता है। प्राचीन युग के ऋषियों ने इस विषय में खूब छानबीन तथा गवेषणा द्वारा कुछ महान् सत्यों का अनुसंधान किया था। इन सत्यों की समानता किसी भी धर्म में वर्तमान नहीं है। उनमें से एक यह भी है कि उन्होंने मनुष्य के आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए हानिकर कतिपय खाद्य पदार्थों का पता लगाया था, अतः उन्होंने उनके सेवन का निषेध किया है। मान लो, किसी को खूब यात्रा करनी है, और उसे भिन्न रीति-रिवाज तथा भोजन करने वाले व्यक्तियों के बीच में रहना है... यह जानकर कि जिस समुदाय के बीच में रहना होता है उसके व्यक्तियों की समाज प्रथा नए व्यक्ति पर कितना दबाव डाल सकती है, ऐसी विषम समस्याओं का सामना करने के लिए उन्होंने मर्यादा-धर्म की रचना की। मैं उसे हिन्दू धर्म का अनिवार्य अंग नहीं मानता। मैं एक ऐसे समय की भी कल्पना कर सकता हूं जब ये बाधाएं बिल्कुल ही उठा दी जायंगी। पर अछूतोद्धार आन्दोलन में जिस प्रकार का सुधार करने की सलाह दी जा रही है, उसमें सहभोज तथा अन्तर्जातीय विवाह की बाधा भी उठा देने की बात नहीं कही जा रही है। अपने ऊपर पाखंड तथा अव्यवस्थित चित्त वाला होने का दोष लगने का भय होने पर भी मैं जनता से इनको एकदम दूर कर देने की सलाह न दूंगा। उदाहरणार्थ मैंने अपने लड़के को मुसलमान घरों में स्वेच्छापूर्वक भोजन करने दिया। क्योंकि मैं जानता हूं कि वह इस बात की पूरी तरह से फिक्र रख सकता है कि क्या खाद्य है

तथा क्या अखाद्य। मुसलिम घर में भोजन करने में मुझे स्वयं कोई एतराज नहीं, क्योंकि भोजन के विषय में अपने लिए मैंने बड़े कठोर नियम बना रखे हैं। मैं आपको अलीगढ़ की एक घटना बतलाता हूं....मैं और स्वामी सत्यदेव ख्वाजा साहब के मेहमान थे। स्वामी सत्यदेव मेरे विचारों से सहमत नहीं थे। मैंने आपस में बहुत कुछ तर्क-वितर्क किया, और स्वामी सत्यदेव को समझा दिया कि मेरे जिस प्रकार के विचार हैं उनको रखते हुए एक मुसलमान के हाथ का भोजन अस्वीकार करना उतना ही अनुचित है, जितना भोजन कर लेना स्वामी के लिए मर्यादा का उल्लंघन करना होगा। अतएव स्वामी के लिए भोजन बनवाने का अलग से प्रबन्ध करना पड़ा। इसी प्रकार जब मैं बारी साहब का मेहमान हुआ, तो उन्होंने एक ब्राह्मण रसोइया तैनात किया, और उसे सख्त हिदायतें दीं कि रसोई का सब सामान बाजार से लाकर रसोई बनाया करे। इसका कारण उन्होंने यह बतलाया कि वह नहीं चाहते कि जनता के मन में इस प्रकार का कुछ भी संदेह हो कि वह मुझे तथा मेरे साथियों को मर्यादा-भ्रष्ट करना चाहते हैं। इस एक घटना ने मेरी नज़रों में बारी साहब को बहुत ऊंचा उठा दिया।

मैं इस एक खान-पान की बात पर इतने विस्तार के साथ इसी वास्ते बोल गया कि मैं आपके सामने यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि आपके, अछूतों के या इस विषय में किसी दूसरे के साथ व्यवहार में कोई पाखंड हरगिज नहीं बर्तना चाहता। मैं आपको अन्धकार में रखना या झूठा लालच दिला कर अपना समर्थन प्राप्त करना नहीं चाहता। मैं अछूत-प्रथा को इसलिए उठा देना चाहता हूं कि उसका मूलोच्छेदन स्वराज्य प्राप्ति के लिए अनिवार्य है, और मैं स्वराज्य चाहता हूं। पर अपने किसी राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये मैं आपसे नहीं मिलना चाहता। मेरे सामने जो प्रश्न है, वह स्वराज्य से भी अधिक बड़ा है। मैं अछूत प्रथा का इसलिए अन्त करना चाहता हूं कि यह आत्म-शुद्धि के लिए आवश्यक है। अछूतों की शुद्धि की कोई आवश्यकता नहीं है, यह निरर्थक बात है, किन्तु स्वयं मेरी तथा हिन्दू धर्म की शुद्धि अभीष्ट है। हिन्दू धर्म ने इस दूषण की धार्मिक आज्ञा देकर एक बड़ा भारी पाप किया है, और मैं अपने शरीर पर ही ओट कर इस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहता हूं।

'ऐसी दशा में मेरे कार्य के लिए, मेरे सामने दो ही मार्ग खुले हुए हैं... अहिंसा और सत्य। मैंने एक अछूत बच्चे को अपना बच्चा बना लिया है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि मैं अपनी स्त्री को अपने विचार से पूरी तरह सहमत नहीं कर सका। वह उसे इतना प्यार नहीं करती, जितना मैं। पर मैं उसका मत परिवर्तन क्रोध द्वारा नहीं प्रेम द्वारा ही कर सकता हूं। यदि हमारे किसी आदमी ने आपका बुरा किया हो, तो मैं आपसे उसके लिए क्षमा मांगता हूं। जब मैं पूना में था, अछूत समुदाय के किसी व्यक्ति ने

कहा था कि यदि हिन्दू उनकी ओर से अपना व्यवहार नहीं बदलेंगे, तो वे जबरदस्ती अपना अधिकार प्राप्त कर लेंगे। क्या इस प्रकार अछूतों की दशा सुधर सकती है? घोर सनातनी हिन्दुओं का मत-परिवर्तन केवल धैर्यपूर्ण तर्क तथा उचित व्यवहार से ही हो सकता है! जब तक उनका मत-परिवर्तन नहीं होता, मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि धैर्यपूर्वक अपनी वर्तमान दशा को सहन कीजिए। मैं आपके साथ खड़ा रहने, कंधा मिला कर आपकी पीड़ाओं में हाथ बंटाने के लिए तैयार हूं। जिस मंदिर में ऊंची जाति के लोग उपासना करते हैं, उसमें आपको भी उपासना का अधिकार मिलना ही चाहिए। स्कूलों में भी अन्य जाति के बच्चों के साथ आप के बच्चों को भी पढ़ने का अधिकार मिलना चाहिये। इस भूमि का सबसे बड़ा सरकारी ओहदा······· वायसराय तक का पद भी आपको मिलने का अधिकार होना चाहिये। अछूत प्रथा को मिटा देने की मेरी यही व्याख्या है।

पर इस कार्य में मैं आपकी सहायता अपने धर्म द्वारा प्रदर्शित उपाय से ही कर सकता हूं न कि पश्चिमी उपाय से। इस उपाय से मैं हिन्दू धर्म की रक्षा नहीं कर सकता। आप का उद्देश्य पवित्र है। किसी पवित्र कार्य की सिद्धि क्या शैतानी उपायों से हो सकती है? मैं इसलिये आपसे प्रार्थना करता हूं कि अपनी दशा सुधारने के लिये पशु बल के उपयोग का ध्यान छोड़ दीजिये। गीता का कथन है कि हृदय से ईश्वर चिंतन करने से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। चिंतन करना ईश्वर के दरबार में हाजिरी देना है। यदि ईश्वर के दरबार में हाजिरी देने से मोक्ष का सबसे बड़ा आनन्द प्राप्त हो सकता है, तो ऐसा ही करने से अछूत प्रथा का कितनी जल्दी नाश हो सकता है। ईश्वर के दरबार में हाजिरी देना अपनी पवित्रता बढ़ाना है। आइये, हम प्रार्थना द्वारा अपने को पवित्र कर लें, जिससे हम अछूत प्रथा ही नहीं हटा देंगे, बल्कि स्वराज्य भी शीघ्र सुलभ बना लेंगे।

अस्पृश्यता एक विनाशकारी भावना

यह वर्तमान हिन्दू धर्म के माथे पर अमिट कलंक का टीका है मैं विश्वास नहीं करता कि यह अनन्तकाल से हमारे बीच चला आ रहा है। मैं सोचता हूं कि अस्पृश्यता की इस विनाशकारी और बन्धनकारी भावना ने हमारे बीच उस समय प्रवेश पाया होगा जब हम अपनी अधोगति की चरम सीमा पर थे। यह बुराई हमारे साथ लगी रही है और आज भी लगी है। मेरे जानते यह एक अभिशाप है और जब तक यह अभिशाप हमारे साथ लगा रहेगा तब तक हमें सोचना चाहिये कि इस पवित्र भूमि पर जो कुछ भी विपत्ति आती है वह इस घोर पाप के दंड स्वरूप ही है।

अस्पृश्यता जिस रूप में आज हिन्दू धर्म में प्रचलित है वह भगवान और मनुष्य दोनों के विरुद्ध पाप है। अतः यह एक विष की तरह है जो हिन्दू धर्म के मर्म

को खाये जा रहा है। मेरी राय में सामूहिक दृष्टि से हिन्दू शास्त्रों में कहीं इसके लिये स्वीकृति नहीं है। निःसन्देह स्वस्थ अस्पृश्यता हिन्दू शास्त्रों में पाई जाती है और यह सर्व धर्मों में सार्वभौमिक रूप से पाई जाती है। यह स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम है। यह अनन्त काल तक रहेगा, पर आज जिस रूप में अस्पृश्यता प्रचलित है वह भयानक चीज है। और यह भिन्न-भिन्न प्रांतों और जिलों में भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है। इसने अस्पृश्यता और स्पृश्य दोनों को नीचे गिराया है। इसने ४० लाख मनुष्यों की अभिवृद्धि को अवरुद्ध कर दिया है। उन्हें जीवन की साधारण सुविधाएं भी प्राप्त नहीं, अतः जितना ही जल्द इसका नाश हो उतना ही हिन्दू धर्म के लिये, भारतवर्ष के लिये और शायद पूरी मानव जाति के लिये श्रेयकर है।

स्वराज्य एक निरर्थक शब्द मात्र है, यदि हम भारत की आबादी के पांचवें हिस्से को सदा के लिये गुलामी के बन्धन में जकड़े रहें और राष्ट्रीय सरकार के फलों से उन्हें वंचित रखें। हम लोग इस महान् पवित्र आंदोलन में भगवान से सहायता की प्रार्थना कर रहे हैं, परन्तु उसके सबसे योग्यतम जीवों को मानवता के अधिकारों से वंचित करना चाहते हैं। हम लोग स्वयं अमानुषीय हो गये हैं अतः हम लोगों को ईश्वर से दूसरों की अमानुषिकता से मुक्त होने की प्रार्थना करने का हक नहीं।

अस्पृश्यता एक पुरानी संस्था है, इसे किसी ने अस्वीकार नहीं किया है। अगर यह कलंक है तो प्राचीनता के नाम पर इसका समर्थन नहीं हो सकता। यदि अछूत आर्यों के समाज से वहिष्कृत जीव हैं तो उस समाज के लिये और भी बुरा है। यदि आर्य अपनी सभ्यता की किसी अवस्था विशेष में दंड स्वरूप किसी वर्ग को बहिष्कृत समझने लगे थे तभी कोई कारण नहीं कि उनकी संतान को भी दंडित किया जाय, चाहे वे उस अपराध से मुक्त हों जिसके लिये उनके पूर्वजों को दंड दिया गया था। अछूतों के बीच भी अस्पृश्यता है, इसी से प्रमाणित होता है कि इस बुराई की कोई सीमा नहीं और इसका घातक प्रभाव सबों को ग्रसित करने वाला है। अछूतों के बीच में भी अस्पृश्यता वर्तमान है, यह एक और भी कारण है कि सभ्य हिन्दू समाज से इसे जल्द से जल्द दूर किया जाय। यदि एक अछूत इसलिये अछूत है कि वह पशु-हत्या करता है, मांस, रक्त, हड्डियों और विष्ठा से उसे काम करना पड़ता है तब तो प्रत्येक नर्स और डाक्टर को अछूत हो जाना चाहिये और इसी तरह प्रत्येक ईसाई, मुसलमान और तथाकथित उच्च वर्गीय हिन्दू को जो भोजन या यज्ञ के लिये पशु हिंसा करते हैं, उनको भी। जिस तरह कसाईखाने, ताड़ी की दूकानें, वेश्यालय पृथक रखे जाते हैं उसी तरह अछूतों को भी पृथक् रखना चाहिये, इस तरह के तर्क में महान् पक्षपात नजर आता है। कसाईखाने तथा ताड़ी की दूकानें पृथक् रखी जाती हैं और रखी जानी चाहिये भी। पर कसाइयों तथा शराब पीने वालों को तो कोई पृथक् नहीं करता।

अस्पृश्यता पर आक्रमण करते समय मैंने समस्या की तह में घुसने की कोशिश की है। अतः यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। अस्पृश्यता-निवारण राजनैतिक शासन विधान के रूप में मिले स्वराज्य से कहीं अधिक गहरे मूल्य की वस्तु है । और मैं कहूंगा कि स्वराज्य से निर्मित हुआ शासन विधान व्यर्थ का भार है। यदि उसकी नीव नैतिक बल पर आधारित नहीं है और यदि वह आज लाखों पददलितों के हृदय में इस आशा का संचार नहीं करता कि यह भार उनके कन्धों पर से उठाया जा रहा है।

प्रारम्भिक रूप में अस्पृश्यता स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम था और भारतवर्ष के बाहर और अन्य स्थानों में आज इसी रूप में वर्तमान है। मतलब यह है कि एक गन्दा मनुष्य या गन्दी चीज अस्पृश्य है, पर ज्यों ही वह गन्दगी दूर हुई अस्पृश्यता भी हटी। अतः जो सफाई का काम करते हों, चाहे वह वैतनिक भंगी हों अथवा अवैतनिक, वे तब तक अस्पृश्य हैं जब तक वे साफ नहीं हो जाते, पर यदि हम एक भंगी को सदा के लिये अस्पृश्य न समझ उनके साथ भाई की तरह व्यवहार करें, उसे सफाई कर लेने के पश्चात् साफ होने का अवसर दें अथवा बाध्य करें तो वह समाज के लिये उतनी ही स्वीकृति है जितनी अन्य किसी व्यक्ति की।

मैं ऐसा विश्वास नहीं करता कि जाति-भेद एक घृणित और भयावह सिद्धांत है, यदि इसे वर्णाश्रम धर्म से पृथक् कर दिया जाय तो भी। हां, इसकी अपनी सीमायें और त्रुटियां हैं, पर अस्पृश्यता ही की तरह इसमें कोई पाप नहीं है। यदि यह अस्पृश्यता जाति प्रथा से ही निकलती है तो ठीक वैसे ही जैसे शरीर पर कभी कभी व्यर्थ की सूजन हो जाती है अथवा फसल के मैदान में घास-फूस उग आते हैं। अन्त्यजों के कारण जाति-प्रथा को नष्ट कर देना ठीक वैसा ही भूल होगी, जैसी कि शरीर को किसी विद्रूप सूजन के कारण अथवा फसल को कुछ घास-फूंस उग आने के कारण नष्ट कर देना। आज के प्रचलित अर्थ में अन्त्यजता नष्ट कर देनी होगी। यह एक ऐसी अतिरिक्त बाढ़ है जिसको दूर करना होगा, यदि हम यह चाहते हैं कि हमारा शरीर नष्ट न हो। अतः अस्पृश्यता की उत्पत्ति जाति-प्रथा के कारण नहीं हुई, परन्तु उच्च और नीच की भावना के कारण, जो हिन्दू धर्म में घुस आई है और उसे खोखला कर रही है। अतः अस्पृश्यता पर आघात इस उच्च जाति की भावना पर है। ज्यों ही अस्पृश्यता दूर हुई त्यों ही जाति-प्रथा अपने परिमार्जित रूप में हमारे सामने आयेगी, सच्चे वर्ण धर्म की स्थापना होगी, जिसका मैं स्वप्न देख रहा हूं। इसमें समाज के चार वर्ण होंगे, जो एक दूसरे के पूरक होंगे, कोई एक दूसरे से उच्च या नीच नहीं रहेगा। हिन्दू धर्म के लिये इनमें से एक अंग वैसा ही आवश्यक रहेगा जैसा कि दूसरा कोई अंग।

अस्पृश्यता का प्रश्न

तथाकथित सवर्ण हिन्दुओं के अधीन रह कर हरिजनों को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनमें हिस्सा बंटाने की प्रबल

भावना से ही प्रेरित होकर मैंने हरिजनों के बीच में रहने का निश्चय किया है।

मैं अपने को तनिक भी भ्रम में नहीं रख सकता कि आज हरिजन बस्तियों में हरिजन वास्तव में जिस प्रकार के जीवन को बिता रहे हैं उसमें मैं भी हिस्सा बंटा रहा हूं। मैंने हरिजन बस्तियां देखी हैं और मैं जानता हूं कि वहां के निवासियों को कितनी अस्वस्थकर तथा दयनीय स्थिति में रहना पड़ता है। यदि मैं चाहूं भी तब भी इस सीमा तक आगे नही बढ़ सकता कि मैं उनके घरों में रहूं।

यह मैं जानता हूं कि मेरे लिये तथा मेरे साथियों के लिये जिन सुविधाओं का प्रबन्ध किया गया है उनमें मैं परेशानी अनुभव करता हूं। इसके साथ ही मैं ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूं कि वह दिन आवे जब मैं हरिजनों के घरों में ही रहूं, उन्हीं के साथ रुखा-सूखा भोजन करुं और उसी पानी को पिऊं जिसे वे प्रयोग मे लाते हैं।

मेरा विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं है, जब हरिजनों को वे सब सुख-सुविधाएं हासिल होंगी, जो मानवोचित हैं। फिलहाल मुझे इस बात का संतोष है कि मैं ऐसे स्थान पर रहा हूं जो हरिजनों से चारों ओर से घिरा हुआ है। सवर्ण हिन्दुओं को चाहिये कि वे उन सुविधाओं को ग्रहण न करें जो कि हरिजनों को प्राप्त नहीं है और उन्हें तब तक चुप न बैठना चाहिये जब तक कि समाज में से अस्पृश्यता का समूल विनाश नहीं हो जाता।

अस्पृश्य लोग

अस्पृश्य लोगों के संबंध में भी हमारे यहां एक प्रतिज्ञा है। हिन्दुत्व पर इस समय एक ऐसा कलंक है जो छूट नहीं सकता। मुझे विवश होकर विश्वास करना पड़ा है कि यह कलंक बहुत दिनों से चला आ रहा है। मैं समझता हूं कि ये बेचारे दीन-दुखी अस्पृश्य लोग उस समय हमारे पास आये होंगे जिस सम्य हम अपने जीवन-चक्र के सबसे नीचे वाले स्थान में रहे होंगे। उसी समय हममें यह दोष लग गया जो बराबर अब तक बना हुआ है। मेरी समझ में हम लोगों के लिये यह बड़ा भारी पाप है और जब तक यह हम लोगों के साथ लगा रहेगा तब तक हम लोग यह समझने के लिये बाध्य हैं कि इस पवित्र भूमि में हम लोगों को जितना कष्ट पहुंचता है, वह वास्तव में हमारे बड़े पाप का उचित और उपयुक्त दंड है। साधारणतः यह बात समझ में नहीं आती कि मनुष्य केवल अपने पेशे के कारण ही अस्पृश्य समझा जा सकता है। आप स्वयं चाहें इस बात को समझ लें कि संसार में कोई मनुष्य अस्पृश्य नहीं हो सकता, लेकिन अपने परिवार तथा आस-पास के लोगों के विचार भी केवल इसीलिये आप अपने अनुकूल नहीं कर सकते कि आप लोग जो कुछ सोचते-समझते हैं, वह विदेशी भाषा में होता है।

मद्रास १६, फ़रवरी १९१७ ई० ।

हिन्दू धर्म के माथे पर कलंक

अछूत एक जुदा वर्ग है। हिन्दू धर्म के माथे पर लगा हुआ कलंक है। जात-पांत रुकावट है, पाप नहीं। अछूतपन तो पाप है, सख्त जुर्म है, और यदि हिन्दू धर्म इस बड़े सांप को समय रहते नहीं मार डालेगा, तो वह उसको खा जायगा। अछूतों को अब हिन्दू धर्म के बाहर हरगिज न समझना चाहिये। उन्हें हिन्दू समाज के मातबर आदमी समझना चाहिये और उनके धन्धे के मुताबिक वे जिस वर्ण के लायक हों, उसी वर्ण का उन्हें समझना चाहिये।

वर्ण की मेरी की हुई व्याख्या या तारीफ के हिसाब से तो आज हिन्दू धर्म में वर्ण धर्म का अमल होता ही नहीं। ब्राह्मण नाम रखने वाले विद्या पढ़ाना छोड़ बैठे हैं। वे और-और धन्धे करने लगे हैं। यही बात थोड़ी बहुत दूसरे वर्णों के बारे में भी सच है। असल में विदेशी हुकूमत के नीचे होने के कारण हम सब गुलाम हैं और इस तरह शूद्र से भी हल्के पश्चिम वालों की निगाह में अछूत हैं।

रावण से भी भयंकर

ईश्वर यह अत्याचार क्यों चलने देता है? रावण राक्षस था, पर यह अस्पृश्यता रूपी राक्षसी तो रावण से भी भयंकर है। और इस राक्षसी की धर्म के नाम पर जब हम पूजा करते हैं, तब तो हमारे पाप की गुरुता और भी बढ़ जाती है। इससे हब्शियों की गुलामी भी कहीं अच्छी है। यह धर्म, इसे धर्म कहें तो मेरी नाक में तो बदबू मारता है। यह हिन्दू धर्म हो ही नहीं सकता। मैंने तो हिन्दू धर्म द्वारा ही ईसाई धर्म और इस्लाम का आदर करना सीखा है। फिर यह पाप हिन्दू धर्म का अंग कैसे हो सकता है? पर क्या किया जाय?

हिन्दू धर्म का पाप

इस पाखंड और अज्ञान के खिलाफ यदि जरूरत पड़े तो मैं अकेला लड़ूंगा, अकेला रहकर तपश्चर्या करूंगा और उसका नाम जपते हुये मरूंगा। शायद ऐसा भी हो कि मैं पागल हो जाऊं और कहूं कि मैंने अस्पृश्यता संबंधी विचारों में भूल की है, और मैं कहूं कि अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का पाप कह कर मैंने पाप किया था, तो आप मानना कि मैं डर गया हूं, सामना नहीं कर सकता और विक होकर मैं अपने विचार बदल रहा हूं। उस दशा में आप मानना कि मैं मूर्च्छित अवस्था में ऐसी बात बक रहा हूं।

असत्य, पाखंड का मैल

मेरी अल्प बुद्धि के अनुसार तो भंगी पर जो मैल चढ़ता है, वह शारीरिक है और वह तुरन्त दूर हो सकता है। किन्तु जिन पर असत्य, पाखंड का मैल

बढ़ गया है, वह इतना सूक्ष्म है कि दूर करना बड़ा कठिन है। किसी को अस्पृश्य गिन सकते हैं तो असत्य और पाखंड से भरे हुये लोगों को।

अन्त्यजों का प्रश्न

गोधरा के महार बाड़े में भंगी, डोम आदि अछूत जातियों का जो जलसा हुआ था उसके संबंध में गुजराती नामक पत्र में बहुत सी टीका-टिप्पणी की गई है। और इन टीका-टिप्पणियों के कर्त्ताओं ने वास्तविक घटना को और का और वर्णित कर पाठकों के मन मन में भ्रम उत्पन्न कर दिया है। अतः उसे दूर करने के लिये मैं निम्नलिखित पंक्तियां लिख रहा हूं।

धर्म संबंधी बातों में मैं अपने आपको बालक नहीं, किन्तु खासा ३५ वर्षों का तजुर्बेकार समझता हूं। क्योंकि इतने वर्ष मैंने धर्म विषय का विचार और मनन किया है। विशेषकर मुझे जहां-जहां सत्य दीख पड़ा, वहां-वहां मैंने उसे कार्य में परिणत किया। मेरी धारणा है कि निरे शास्त्राभ्यास से ही धर्म का स्वरूप प्राप्त नहीं होता। हम सदा ही देखते हैं कि मन नियमों के पालन के बिना, शास्त्र पठन के बिना मनुष्य मनमाने मार्ग से चलने लगता है। मैं ऐसे मनुष्य से शास्त्र का अर्थ न पूछगा, जिसने लोगों के पंडित कहाने के लिये शास्त्र पढ़े हैं। इसीलिये मैक्समूलर जैसे महान विद्वानों ने विकट अध्ययन के अनन्तर जो पुस्तकें लिखी हैं उनसे भी मैं अपने आचरण संबंधी नियम बनाने में सहायता न लूंगा। आजकल अपने को शास्त्र-ज्ञानी प्रकट करने वाले बहुतेरे लोग अज्ञानी और दम्भी ही पाये जाते हैं। मैं धर्मगुरू की खोज में हूं। गुरू की आवश्यकता है यह मैं मानता हूं। परन्तु जब तक मुझे कोई योग्य गुरु न दीख पड़े तब तक मैं अपने आपको ही अपना गुरु मानता हूं। यह मार्ग विकट अवश्य है, परन्तु आजकल के इस विषम-काल में यही योग्य जान पड़ता है। हिन्दू धर्म इतना महान और व्यापक है कि आज तक कोई उसकी व्याख्या करने में कृतकार्य नहीं हो सका। मेरा जन्म वैष्णव सम्प्रदाय में हुआ है और इसके सिद्ध सिद्धांत मुझे बड़े ही प्रिय हैं। वैष्णव धर्म में अथवा हिन्दू धर्म में मुझे कहीं यह विधान नहीं मिला कि भंगी, डोम आदि जाति अस्पृश्य हैं। हिन्दू धर्म अनेक रूढ़ियों से घिरा हुआ है। उनमें से कुछ रुढ़ियां प्रशंसनीय हैं, शेष निन्द्य हैं। अस्पृश्यता की रुढ़ि तो सर्वथा ही निन्द्य है। इसकी बदौलत दो हजार वर्षों से धर्म के नाम पर पाप की राशि हिन्दू धर्म पर लादी जा रही है और अब भी लादी जाती है। मैं इस रुढ़ि को पाखंड कहता हूं। इस पाखंड से आपको मुक्त होना पड़ेगा और इसका प्रायश्चित आप कर ही रहे हैं। इस रुढ़ि के समर्थन में मनुस्मृति आदि धर्म-ग्रन्थों के श्लोक उद्धृत करने से कोई लाभ नहीं। इन ग्रन्थों में कितने ही प्रक्षिप्त श्लोक हैं। कितने ही श्लोक नितान्त अर्थहीन हैं। फिर मनुस्मृति की प्रत्येक आज्ञा का पालन करने वाला या पालन करने की इच्छा रखने वाला एक भी हिन्दू मेरे देखने में नहीं आया। और यह सिद्ध करना बहुत सहज है कि ऐसा करने वाले को अन्त में भ्रष्ट ही होना पड़ेगा। धर्म-ग्रन्थों में मुद्रित प्रत्येक श्लोक का समर्थन कर देने से सनातन धर्म की रक्षा न होगी, बल्कि उनमें प्रतिपादित त्रिकाल-बाधित-तत्वों को कार्य-रूप में

परिणत करने से ही उसकी रक्षा होगी। जिन जिन धार्मिक नेताओं से इस विषय में सम्भाषण करने का मुझे अवसर मिला है, सबने इसी बात को स्वीकार किया है। उन धर्म प्रचारकों ने, जिनकी गणना विद्वानों में है और जो समाज में पूज्य माने जाते हैं, स्पष्ट कह दिया कि भंगी, डोम आदि के साथ हम लोग जैसा बर्ताव करते हैं उसका इसके सिवा और कोई आधार नहीं कि वैसी रुढ़ि या प्रथा चल गई है। सच पूछिये तो इस रुढ़ि का कोई पालन भी नहीं करता। रेल में उनका स्पर्श होता है। मिलों में उनसे काम लिया जाता है और हम उन्हें बेधड़क छूते हैं। फार्गुसन तथा बड़ौदा कालेजों में अन्त्यज प्रविष्ट किये गये हैं। इन सब बातों में समाज बाधा नहीं डालता। अंग्रेजों और मुसलमानों के घरों में उनका सत्कार किया जाता है और अंग्रेजों या मुसलमानों को छूने में हमें कुछ भी संकोच नहीं होता, बल्कि इनमें से कितनों के साथ हाथ मिलाने में तो हम उलटा गौरव समझते हैं। ईसाई धर्म ग्रहण कर लेने पर इन्हीं अन्त्यजों को हमें अछूत मानने का साहस नहीं होता। इस प्रकार जिस रूढ़ि का पालन करना असम्भव है उसका समर्थन कोई समझदार हिन्दू अपना व्यक्तिगत मत भिन्न होने पर भी नहीं कर सकता।

अस्पृश्यता की भावना में घृणा का अन्तर्भाव मानने से इन्कार करने वालों के लिये तो कोई विशेषण ही मेरे ध्यान में नहीं आता। भूल से कोई भंगी हमारे डिब्बे में सवार हो जाय तो बेचारा पिटे बिना नहीं रह सकता और गालियों की तो मानो उस पर वर्षा ही होने लगेगी। उसके हाथ चाय वाला चाय और दूकानदार सौदा नहीं बेचता। वह मरता हो तो भी हम उसको छूना गवारा नहीं करते। अपना जूठा हम उसे खाने को देते हैं और फटे तथा मैले कपड़े पहनने को। कोई हिन्दू उसे पढ़ाने को तैयार नहीं होता। वह अच्छे मकानों में नहीं रह सकता। रास्ते में हमारे भय से उसे बार-बार अपनी अस्पृश्यता की घोषणा करनी पड़ती है। इससे बढ़ कर घृणा-सूचक व्यवहार और कौन-सा हो सकता है? उनकी दशा से कौन-सी सूचना मिलती है? जिस तरह यूरोप में एक समय धर्म की ओट में गुलामी की प्रथा की हिमायत की जाती थी उसी तरह आज हमारे समाज में भी धर्म के नाम पर अंत्यजों के प्रति घृणा-भाव की रक्षा की जाती है। यूरोप में भी अन्त समय तक ऐसे कुछ न कुछ लोग निकलते ही आये थे जो बाइबिल के वचन उद्धृत करके गुलामी की प्रथा का समर्थन करते थे। अपने यहां के वर्तमान रूढ़ि के हिमायतियों को भी मैं उसी श्रेणी में समझता हूं। हमें अस्पृश्यता की कल्पना का दोष धर्म से अवश्य दूर कर देना होगा। इसके बिना प्लेग, हैजे आदि रोगों की जड़ नहीं कट सकती। अन्त्यजों के धंधों में नीचता की कोई बात नहीं है। डाक्टर और हमारी मातायें भी वैसे ही काम करती हैं। कहा जा सकता है कि वे सब फिर स्वच्छ हो जाती हैं। अच्छा यदि भंगी आदि यह बात नहीं करते तो दोष उनका नहीं, सोलहों आने हमारा ही है। यह स्पष्ट है कि जिस समय हम प्रेमपूर्वक उनका आलिंगन करने लगेंगे उस समय वे स्वच्छ रहना अवश्य ही सीख लेंगे।

सहभोज आदि आन्दोलनों की तरह इस आंदोलन को धक्का देने की आवश्यकता नहीं है। इस आंदोलन से वर्णाश्रम धर्म का लोप नहीं हो सकता। इसका उद्देश्य इसके अतिरेक या ज्यादती को निकालकर उसकी रक्षा करना है। इस आन्दोलन के पुरस्कर्ताओं की यह भी इच्छा नहीं है कि भंगी आदि अपने काम छोड़ दें। किन्तु उन्हें यह दिखा देना है कि मल, गंदगी आदि साफ करने का उद्यम आवश्यक और पवित्र है कि उसके करने से वैष्णव तक की शोभा हो सकती है। यह धंधा करने वाले नीच नहीं, किन्तु दूसरे पेशेवालों के बराबर सामाजिक अधिकारों के पात्र हैं और उनका उद्यम देश की कितने ही रोगों से रक्षा करता है। इसलिये वे डाक्टरों के समान पूज्य हैं।

यह देश तपश्चर्या, पवित्रता, दया आदि के कारण जिस प्रकार सबके लिये वन्दनीय है उसी प्रकार स्वेच्छाचार, पाप, क्रूरता आदि दुर्गुणों का भी क्रीड़ा-स्थल बना हुआ है। ऐसे समय में आपके लेखक समुदाय के पाखंड का विरोध कर उसकी जड़ समाज से काट देने के लिये बद्ध परिकर होने में ही शोभा है। आपसे मेरी प्रार्थना है कि गोधरा में किये गये पुण्य कार्य का अभिनन्दन कर आप उस पुण्य के भागी और इस निमित्त किये जाने वाले इस उद्योग में सहायक हों कि जिससे ६ करोड़ मनुष्य हताश होकर उससे अलग न हो जायं।

इस आंदोलन में सम्मिलित होने के पहले मैंने अपने धार्मिक उत्तरदायित्व को अच्छी तरह से सोच-समझ लिया है। एक आलोचक ने यह भविष्यवाणी की है कि कालान्तर में मेरे विचार बदल जायेंगे। इस संबंध में मुझे इतना ही कहना है कि यदि कभी ऐसा समय आयेगा, तो उसके पहले मैं हिन्दू धर्म ही नहीं, संसार के धर्म मात्र का त्याग कर चुकूंगा। परन्तु मेरी यह दृढ़ धारणा है कि हिन्दू धर्म को पूर्वोक्त कलंक से मुक्त करने में यदि अपना शरीर भी देना पड़े, तो भी यह कोई बड़ी बात नहीं है। जिस धर्म में नरसी मेहता जैसे समदर्शी भगवद्भक्त हो गये हों उसमें अस्पृश्यता की भावना का रह सकना कदापि संभव नहीं है।

गोधरा, नवम्बर, १९१७ ई०

पैशाचिक प्रथा

दक्षिण के एक देशी भाषा के पत्र में एक विद्वान पंडित की लेखनी से लिखा एक लेख प्रकाशित हुआ है। एक मित्र ने उसका सारांश मेरे पास भेजा है। अछूत प्रथा को जारी रखने लिये पंडित के तर्कों का उन्होंने इस प्रकार सारांश लिया है—

१—आदिशंकर ने एक बार एक चांडाल से यह कहा था कि वह उनसे दूर रहे, तथा त्रिशंकु को जब चांडाल बनने का शाप मिला, तब सभी लोग उसको त्यागने लगे। ये पौराणिक सत्य है, और इनसे यह प्रमाणित होता है कि अछूत प्रथा कोई नई वस्तु नहीं है।

२—आर्य जाति से बहिष्कृत को ही चांडाल कहते हैं।

३—अछूत स्वयं अछूत प्रथा के पाप के भागी हैं।

४—कोई अछूत इसीलिये होता है कि वह पशु हत्या करता रहता है, रात-दिन उसे मांस, रक्त, हड्डी और मैले से काम रहता है ।

५—जिस प्रकार कसाईखाना, ताड़ीखाना और भठियारखाना समाज से अलग तथा बाहर रखा जाता है, उसी प्रकार अछूत को भी अलग रखना चाहिये ।

६—इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि अछूत को परलोक का सुख कभी नहीं प्राप्त होता है ।

७—गांधी अछूतों को छू सकता है, इसी प्रकार वह उपवास भी कर सकता है । हम न तो उपवास कर सकते हैं और न अछूतों को छू सकते हैं ।

८—मनुष्य की उन्नति तथा विकास के लिये अछूत प्रथा या अछूतपन आवश्यक है ।

९—मनुष्य में आकर्षक शक्ति होती है । यह शक्ति दूध के समान है । अनुचित संपर्क से यह दूषित हो जायगी । यदि मुश्क और प्याज एक साथ रखा जा सकता है, तो ब्राह्मण और अछूत भी एक साथ मिलाये जा सकते हैं ।

इन मुख्य तर्कों का संक्षेप मेरे संवाददाता ने भेजा है । अछूत प्रथा अनेकों सिरवाली पिशाचिनी है, इसलिये यह आवश्यक है कि जब-जब पिशाचिनी सिर उठाये, उसका सामना किया जाय । पौराणिक कथाओं का वर्तमान परिस्थिति से क्या संबंध है, बिना यह जाने वे कहानियां बड़ी भयंकर हो जाती हैं । शास्त्रों में वर्णित हरेक लम्बी-चौड़ी बात के अनुसार यदि हम अपने आचरण का नियंत्रण करें, तो वे बातें मौत के फंदे के समान हो जायं । इन शास्त्रीय बातों से हमें केवल इतनी ही सहायता मिलती है कि हम मुख्य प्रश्नों पर तर्क-वितर्क कर सकते हैं । यदि किसी धार्मिक ग्रन्थ में किसी प्रसिद्ध व्यक्ति ने ईश्वर तथा पुरुष के विरुद्ध पाप किया, तो इसका यह अर्थ नहीं कि हम भी वही पाप दुहरायें । हमें केवल यही जान लेना, सीख लेना पर्याप्त है कि संसार में केवल एक ही वस्तु मुख्य है, और वह सत्य है, तथा सत्य ही ईश्वर है । यह कहना असंगत है कि एक बार युधिष्टिर भी ऐसे फंदे में फंस गये थे कि उनको झूठ बोलना पड़ा था । यह जानना अधिक संगत है कि जब एक बार वह झूठ बोल गये, उसी समय उनको उसका दंड सहना पड़ा, और उनका महान यश अथवा नाम भी उनकी रक्षा नहीं कर सका । इसलिये हमें यह बतलाना असंगत है कि आदिशंकर ने एक बार चांडाल के स्पर्श से अपने को बचाया । हमारे लिये इतना ही जानना पर्याप्त है कि जिस धर्म में अपने समान सब के साथ व्यवहार करने की शिक्षा दी जाती है, वह कभी एक भी जीवन के साथ अमानवीय व्यवहार बर्दाश्त नहीं कर सकता, एक समुदाय भर की बात तो दूर रही । इसके अलावा हमारे पास सभी बातें भी तो मौजूद नहीं हैं, जिससे हम यह निर्णय कर सकें कि आदिशंकर ने क्या किया और क्या नहीं किया । इसके अलावा क्या हम शास्त्र में चांडाल शब्द के उपयोग

का अर्थ जानते हैं? अवश्य इसके कई अर्थ हैं। एक अर्थ है पातकी। पर यदि सभी पापियों को चांडाल या अछूत समझा जाने लगे, तो मुझे भय है कि हम सभी, स्वयं पंडित भी, इस अछूत के पाश में पड़ जायंगे। यह अछूत प्रथा पुरानी है। उसे कौन अस्वीकार कर सकता है। पर यदि यह प्रथा बुरी है, तो इसकी प्राचीनता की दुहाई इसका समर्थन नहीं करा सकती।

यदि अछूत आर्य जाति के निकाले अंग हैं, तो यह जाति के लिये बड़ी कलंक की बात है। यदि आर्यों ने अप्रगतिशीलता के विचार से किसी समुदाय को जाति बाहर कर दिया हो, तो कोई कारण नहीं कि बिना कारण का विचार किये, अब उस समुदाय की संतानों को भी वही दंड दिया जाय।

यदि अछूतों में भी आपस में अछूतपन होता है, तो इसका यही कारण है कि दूषण सीमित नहीं, पर व्याप्त प्रभावशाली होता है। अछूतों में भी अछूत प्रथा का होना संस्कृत हिन्दुओं के लिये यह और भी आवश्यक बना देता है कि वे शीघ्राति शीघ्र इस शाप से मुक्त हो जायं।

यदि पशु-हत्या तथा मांस के व्यापार के कारण अथवा मल-मूत्र छूने से कोई अछूत होता है, तो हर एक डाक्टर,हर एक दाई, हर एक ईसाई और मुसलमान को, जो भोजन या बलि के लिये पशु-हत्या करते हैं, अछूत हो जाना चाहिये।

यह तर्क कि कसाईखाने तथा भठियारखाने की तरह अछूतों को भी त्याग देना तथा अलग रखना चाहिये, उनके प्रति घोर अन्याय व्यक्त करता है। कसाईखाने और ताड़ीखाने अलग हैं तथा कर दिये जाते हैं। पर कसाई और ताड़ी बेचने वाले अलग नहीं किये जाते। वेश्याओं को अलग कर देना चाहिये, क्योंकि उनका पेशा समाज के स्वास्थ्य के लिये हानिकर तथा दूषित है। अछूतों का पेशा समाज के लिये हानिकर नहीं, बल्कि उसके स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है।

यह कहना गुस्ताखी की हद है कि अछूत को परलोक की सुविधाएं नहीं प्राप्त हो सकतीं। यदि परलोक में उन्हें स्थान न देना संभव है, तो यह भी संभव है कि अछूत प्रथा के कट्टर समर्थक उन्हें वहां भी अलग करवा सकते हैं।

यह कहना जनता की आंखों में धूल झोंकना है कि एक गांधी अछूत को छू सकता है, पर सब नहीं। मानो अछूत की सेवा और उसे छूना इतना हानिकर है कि इसके लिये अछूतरूपी कीड़े से न प्रभावित होने वाले व्यक्ति ही चाहिये। ईश्वर ही जानता होगा कि मुसलमानों को क्या दंड मिलने वाला है अथवा उन ईसाई आदि समूहों को क्या दंड मिलेगा, जो अछूत प्रथा में विश्वास नहीं रखते।

पाशविक आकर्षक शक्ति का बहाना एक दम निरर्थक है। ऊंची जाति के सभी लोग मुश्क की तरह मधुर सुगंधवाले नहीं होते, न सभी अछूतों के शरीर से

दुर्गन्ध आती है। ऐसे हजारों अछूत हैं जो सदैव ऊंची जाति के कहे जाने वाले लोगों से सर्वांशतः महान होते हैं।

यह देख कर बड़ा दुख होता है कि अछूत प्रथा के विरुद्ध लगातार पांच वर्ष तक प्रचार करने पर भी ऐसे विद्वान आदमी निकल आते हैं, जो इस अनैतिक तथा बुरी प्रथा का समर्थन करते हैं। एक विद्वान भी अछूत प्रथा का समर्थन कर सकता है, इससे इस प्रथा की महत्ता नहीं बढ़ती। केवल यह देख कर निराशा होती है कि विद्या से ही चरित्र नहीं बनता, न बुद्धि विभ्रम दूर होता है।

सहस्रमुखी राक्षस

दक्षिण में छुआछूत सब से अधिक भयंकर रूप में प्रचलित है। सहस्र मुखवाले राक्षस के समान यह प्रथा अपनी जहरीली जीभ से समाज को डस रही है। एक स्थान से एक संवाददाता लिखते हैं:—

सनातनियों को ऐसा भय हो रहा है कि छुआछूत भेद-भाव को मिटाने के प्रचारक इस समस्या और उसकी विषमताओं को ऐसी सीमा तक ले जाने की चेष्टा करेंगे, जिससे घपला मचेगा और अनावश्यक झगड़ा पैदा होगा। मैं आप से नीचे कुछ प्रश्न कर रहा हूं, जिससे यह मालूम हो जाय कि आप किस दर्जे तक इस सुधार-कार्य को ले जाना चाहते हैं, और आपकी दृष्टि में इस कार्य की क्या व्याख्या है।

मैं नहीं समझता कि इस प्रथा में सुधार कराने का प्रचारकों ने अभी तक कोई ऐसा काम किया है, जिससे कोई ऐसा झगड़ा पैदा हो जाय। पर मैं इस प्रश्न का उत्तर दे देना चाहता हूं। ऐसे सज्जनों के मन में भी, जो इस आन्दोलन का समर्थन करना चाहते हैं, पर युगों से जमे हुये अंध-विश्वासों के कारण इसमें योग नहीं दे सकते, ऐसी शंकायें उठ सकती हैं। इसलिये मैं इस प्रश्नावली का उत्तर देना ही उचित समझता हूं।

संवाददाता का पहला प्रश्न है:—

क्या आपकी सम्मति में वर्णाश्रम धर्म के सिद्धांत भारतीय राष्ट्रीयता की रचना में असंयत हैं?

पहले तो वर्णाश्रम और आज-कल की जाति-पांति तथा छुआछूत का कोई संबंध नहीं है। दूसरे, जहां तक वर्णाश्रम का मेरा ज्ञान है, भारतीय राष्ट्रीयता-की प्रगति में उससे कोई असंयति नहीं होती। इसके विपरीत यदि वर्णाश्रम की मेरी परिभाषा सत्य है, तो उससे वास्तविक राष्ट्रीय भावना का विकास ही होगा।

दूसरा प्रश्न है:—

क्या आपकी सम्मति में स्पर्श तथा दर्शन का दोष वैदिक काल से ही माना जाता है?

यद्यपि इस विषय में मुझे निजी तथा बिल्कुल ठीक ज्ञान नहीं है, फिर भी मुझे वेदों की पवित्रता में पूरा विश्वास है। इसीलिये मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं होता कि वेदों में ऐसे किसी दोष की कोई आज्ञा नहीं है। किन्तु इस विषय में मुझसे कहीं अधिक अधिकारपूर्वक श्रीयुत चिंतामणि विनायक वैद्य और पंडित सातवलकेर बोल सकते हैं। फिर भी मैं यह कह देना चाहता हूं कि वैदिक काल से ही कोई वस्तु क्यों न चली आ रही हो, पर यदि वह नैतिकता की दृष्टि से कलुषित है, तो उसे यह न सोच कर कि यह वैदिक मूल भाव के ही नहीं, कर्तव्य शास्त्र के मूल भाव के विपरीत होने के ही कारण त्याज्य हैं।

अन्य चार प्रश्नों को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है :—

क्या आपको यह नहीं मालूम है कि आकर्षण शक्ति के विधान के ज्ञान पर ही कर्मकांड का सिद्धांत निर्भर करता है। इसीलिये स्पर्श तथा दर्शन दोष, जन्मना अपवित्रता तथा मृत्युना अपवित्रता का दोष मन की शुद्धि के विचार से माना जाता है।

जहां तक इनका इस दृष्टि से संबंध है, उनका कुछ सापेक्षिक मूल्य भी है, पर वेद, शास्त्र, पुराण संसार के अन्य सभी धर्मों के समान स्पष्ट रूप से यह घोषित करते हैं कि मन कि शुद्धि आंतरिक विषय है। जितना मन का मन पर प्रभाव पड़ता है, उतना शरीर का शरीर पर नहीं। यदि केवल बाहरी शुद्धि की क्रियायें की जायं, तो उससे आत्मा का हनन होता है। बाहरी शुद्धि की क्रियाओं का परिणाम यह होता है कि आदमी अपने को दूसरों से बड़ा समझने लगता है। दूसरों के साथ पशु का-सा व्यवहार करता है, और इस प्रकार उसकी आत्मा का हनन होता है।

सातवां प्रश्न है :—

क्या आपकी सम्मति में जो वस्तु, जो नियम जीवन मुक्तों के लिये लागू होता है, वह साधारण पुरुषों के लिये भी हितकर हो सकता है ?

मेरी समझ में, संसार में रहने वाले, नर देहधारी, चाहे कितनी भी उच्च आत्मा क्यों न हो, उसका कार्य तथा उसके लिये लोगों के प्रति व्यवहार नियम ऐसा विशिष्ट होगा कि दूसरा यदि उसे अपनाएगा, तो वह घातक सिद्ध होगा। छुआछूत का भूत आत्मा के विकास के लिये हानिकर सिद्ध हो चुका है। यह नियम हिन्दू धर्म के श्रेष्ठतम तथा उदार सिद्धांतों के विपरीत है।

तब प्रश्न होता है :—

क्या आप वर्ण-धर्म में विश्वास नहीं रखते ?

इस विषय में अपना मत प्रकट कर चुका हूं। मेरी सम्मति में वर्ण-धर्म में छुआछूत तथा बड़प्पन-छुटाई का कोई स्थान नहीं है।

फिर प्रश्न है.............छुआछूत का किस समय ध्यान नहीं रखना चाहिये ? यह निम्नलिखित श्लोक से प्रकट होता है····

"कल्याणे तीर्थयात्रायां राष्ट्रकोपे च संभ्रमे,
देवोत्सवे च दारिद्रे स्पृष्टिदोषो न विद्यते ।

अच्छे अवसर पर, तीर्थ यात्रा में, राजनीतिक आन्दोलन में, भय के अवसर पर, देवताओं के उत्सवों पर तथा दरिद्रता में स्पर्शास्पर्श का दोष नहीं रहता ।

इन विशेष अवसरों की आज्ञाओं से ही मेरा सिद्धांत प्रतिपादित हो जाता है । क्या आप इस अधिकारपूर्ण श्लोक का समुचित उपयोग कर सीमा का निर्धारण कर देंगे ?

जिस बुद्धिमान ने इस श्लोक को बनाया है, उसने विशेष अवसरों की इतनी लम्बी सूची दी है कि आदमी के जीवन में कभी ऐसा अवसर आ ही नहीं सकता, जब इनमें से कोई बात न हो । अछूत प्रथा के समर्थकों से मैं पूछता हूं कि कोई ऐसा अवसर बतलायें, जब व्यक्ति सुखी, दुखी, भयान्वित, हर्षोत्फुल्ल तथा दारिद्र्य इत्यादि में से किसी एक की दशा में न रहता हो । फिर भी संवाददाता को पता नहीं कि उन लोगों का विचार कितना शून्य तथा दरिद्रतापूर्ण है, जो अछूत प्रथा का समर्थन केवल इसीलिये करते हैं कि वह परम्परा से चली आ रही है । अभी तक मुझे तो अस्पृश्य, अछूत, दर्शनीय व्यक्ति की समझ में आने लायक कोई व्यवस्था पढ़ने देखने को नहीं मिली ।

अंतिम प्रश्न है :—

राजनीति को आध्यात्मिक रूप प्रदान करने की चेष्टा में आप किस सीमा तक इस प्रथा को मिटाना चाहते हैं ?

इसकी तो कोई सीमा ही नहीं है । राजनीति के आध्यात्मिक-करण का प्रारम्भ इसी से होता है कि आजकल अछूत प्रथा जिस प्रकार वर्तमान है, उसका समूल उच्छेदन कर दिया जाय । जन्मना किसी को अछूत मानना बड़ी गर्हित बात है, तथा मानवीय स्वभाव की धार्मिक वृत्ति के लिये एक कलुषित सिद्धांत है ।

अछूत का पाप

यह बड़े सौभाग्य की बात थी कि अछूतों के संबंध वाले प्रस्ताव को विषय निर्धारिणी समिति ने बिना किसी विरोध के स्वीकार कर लिया । राष्ट्रीय महासभा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि स्वराज्य प्राप्त करने के लिये हिन्दू धर्म के ऊपर से यह कलंक मिटा देना अत्यन्त आवश्यक है ।

बड़ा ही अच्छा काम किया । शैतान तभी तक सफल रहता है जब तक उसके साथी उसकी मदद करते जाते हैं । हम लोगों पर अधिकार प्राप्त करने के लिये वह हम लोगों की कमज़ोरियों को ही ताकता है और उसी प्रकार आक्रमण

करता है। इसी तरह यह सरकार भी हमारी बुराइयों या कमजोरियों से लाभ उठा कर ही अपना अभिप्राय सिद्ध करती रहती है। यदि हम लोग इसकी इस तरह की चेष्टाओं से अपनी रक्षा का प्रबंध करना चाहें तो हमें सब से पहले अपनी बुराइयों को छोड़ना पड़ेगा। यही कारण है कि हमने असहयोग को आत्मशुद्धि का उपाय बताया है। जिस समय आत्म-शुद्धि के उस तरीके में हम सफल हो गये, उसे पूरा कर डाला, उस समय आवश्यक सहायता के अभाव में यह सरकार उसी तरह गिर जायगी जिस तरह सूखे स्थान पर मच्छरों की दाल नहीं गलती।

अछूतों के साथ जो पापाचार हम लोग कर रह हैं, क्या उसके लिये हमें उचित दंड नहीं मिल रहा है? क्या हम लोगों ने जैसा बोया है, वैसा ही नहीं काट रहे हैं? क्या हम लोगों ने अपने ही बन्धु-बान्धवों पर डायर और ओडायर का-सा अत्याचार नहीं किया है? जिस तरह हम लोगों से पड़िया आदि जाति को अपने से अलग कर रखा है, उसी तरह ब्रिटिश उपनिवेशों में हम लोग भी वहिष्कृत हैं। हम लोग अपने कुएं से उन्हें पानी नहीं लेने देते। हम लोग उन्हें घोरतर नीच समझते हैं। हम उनकी परछाई तक बचाते हैं। जिस तरह हम लोग अंग्रेजों को अपवाद देते हैं उसी तरह पड़िया भी हमें देते हैं।

हिन्दू धर्म पर से इस कलंक को किस तरह मिटाना चाहिये। हमें औरों के साथ वही व्यवहार करना चाहिये जो हम अपने लिये दूसरों से चाहते हैं। मैंने अंग्रेज पदाधिकारियों से बार-बार कहा है कि यदि आप भारतवासियों के मित्र और नौकर बनते हैं, तो आपको उचित है कि अपने इस ऊंचे पद से नीचे उतर आइये और संरक्षकता का दावा छोड़ कर अपनी प्रेमपूर्ण कार्यकारी से कि आप लोग हर तरह से भारतवासियों के मित्र हैं और हम लोगों के साथ उसी बराबरी का व्यवहार कीजिये, जिस तरह आप किसी अंग्रेज के साथ करते हैं। पंजाब की दुर्घटना के बाद उस विषय में मैंने एक कदम और भी आगे बढाया है और उनसे कहा है कि आप कृपा पूर्वक अपने दिल को भी बदलिये और अपनी कार्रवाइयों के लिये पश्चाताप प्रकट कीजिये। उसी तरह हम हिन्दुओं को भी उचित है कि, जो बुराई हमने की है, उसके लिये पश्चाताप प्रकट करें। अपने दिल की प्रवृत्ति को बदलें और जिस शैतानी के बर्ताव के साथ हमने उन्हें दबाया है, जिस बात का कलंक हम भारत सरकार के सिर पर मढ़ते हैं उसके लिये पश्चाताप करें। केवल चन्द स्कूलों को उनके लिये खोल देने से काम नहीं चलेगा। हमें उन पर अपना बड़प्पन नहीं प्रकट करना चाहिये। हमें उन्हें अपना सगा भाई समझना चाहिये, जैसे कि वे वास्तव में हैं। जिस परम्परागत सम्पत्ति से हमने उन्हें वंचित किया है, उसे हमें उन्हें अवश्य लौटा देना चाहिये। पर यह काम उस चन्द अंग्रेजी पढ़े-लिखों का ही नहीं होना चाहिये, बल्कि सर्वसाधारण को अपने हृदय की प्रेरणा से यह काम करना चाहिये। इस दीर्घकाल व्यापी सुधार के लिये हमें अनन्त काल तक ठहरने का समय नहीं है। हमें उसकी पूर्ति इसी

वर्ष भर में कर देनी चाहिये । इसके लिये हमें कठिन तपस्या करनी चाहिये। यह सुधार स्वराज्य के बाद नहीं हो सकता । स्वराज्य प्राप्त करने के पहले ही इसे सम्पूर्ण कर डालना चाहिये।

अछूत धर्म विहित नहीं है, बल्कि यह शैतान का धर्म है । अपने लाभ के लिये शैतान भी धर्म ग्रन्थों का प्रयोग करता है । पर इस तरह के अवतरणों से सत्य और विश्वास कहीं से भी नहीं उठ सकता । उनका काम है, विश्वास को शुद्ध करना और सत्य को व्यक्त करना। वेदों में अश्वमेध यज्ञ की चर्चा है तो इसलिये हम निर्दोष घोड़े को जला नहीं देंगे । मेरे हृदय में वेदों के लिये अपूर्व श्रद्धा है। मैं उन्हें देवता प्रदत्त मानता हूं । उनके शब्दों में यह चर्चा हो सकती है, पर प्रकाश डालने के लिये तो उसके तत्व का निरूपण करना चाहिये। और वेदों का तत्व है पवित्रता , सच्चाई, निर्दोषिता, नम्रता, सादगी, क्षमा, दान, विस्मृति, देवत्व, और अन्य वे सब बातें जिनसे नर और नारी नम्र और वीर हो सकते हैं। समाज के उन असंख्य न बोलने वालों को इस तरह कतवार की तरह समझना तो कोई बहादुरी में शामिल नहीं है। क्या ईश्वर ने हमें इसी लिये शक्ति दी है कि हम राष्ट्र के पतन के कारण हों जैसा कि हम लोगों नें अछूत जातियों को बना डाला हैं ।

१९ जनवरी, १९२१ ई०

असली जड़

एक संवाददाता का प्रश्न है :—

क्या आप यह नहीं समझते कि वर्तमान विदेशी सरकार की सफलता का कारण उच्च-वर्णों द्वारा दरिद्र, दुर्बल तथा अछूत कहलाने वाले भाइयों का दमन है ?

इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे द्वारा अपने सगे-संबंधियों का दमन ही मूल कारण है। यह आध्यात्मिकता से पतन है। धर्म के नाम पर हम अपनी जाति के छठे अंश की अप्रतिष्ठा करते हैं तथा उनके हितों का अपहरण कर रहे हैं । उसका सबसे न्यायपूर्ण दंड ईश्वर ने यह दिया है कि एक विदेशी सरकार हमारी अप्रतिष्ठा तथा हमारे सत्वों का अपहरण कर रही हैं । इसीलिये मैंने अछूतोद्धार को स्वराज्य प्राप्ति के लिये अनिवार्य बतलाया है। चूंकि हमारे यहां दूसरों से अपनी स्वयं दासत्व प्रथा है, हमने स्वयं दास बना रखे हैं, इसलिये हमको दासता के लिये झगड़ा करने का अधिकार नहीं है, जब तक कि हम स्वयं अपने दासों को बिना शर्त मुक्त न कर दें, अधिकार न दे दें। हमें पहले अपनी आंखों से अछूतपन का शहतीर देखना तथा उसको निकाल देना चाहिये, तब हम अपने मालिकों की आंखों से दासता का तिल निकालने की चेष्टा करें।

वर्णाश्रम धर्म

वर्णाश्रम की रचना

एक संवाददाता लिखते हैं :—

"वर्णाश्रम संबंधी मेरे पत्र के उत्तर में आपने जो आलोचना की है, उसके संबंध में मुझे यही लिखना है कि मैं वर्णाश्रम और अछूत प्रथा में भेद को भले प्रकार समझता और मानता हूं, और यह भी स्वीकार करता हूं कि पिछली वस्तु की हिन्दू शास्त्र में कहीं भी आज्ञा नहीं है, किन्तु जैसा आप स्वयं कहते हैं, कार्य विभाग जन्मना होना चाहिये......ऐसी दशा में हमारे समाज में अछूत समुदाय सदा के लिये बना रहेगा। क्या यह स्वाभाविक नहीं है कि जिनका यह कौटुंबिक तथा पुश्तैनी पेशा समझा जाता है, जो झाड़ू लगायें, मुर्दा ढोयें, या कब्र खोदें, उनको हम बहुत गंदा समझकर हिकारत की नजर से देखें, हम उनको छूने से भी घृणा करें। अन्य किसी भी देश में ऐसा व्यक्ति इसलिये अछूत नहीं समझा जाता कि वहां इस प्रकार के कार्य पुश्तैनी नहीं समझे जाते, और समाज का कोई भी व्यक्ति योग्यता प्राप्त कर सिपाही, अध्यापक, व्यापारी, वकील, पादरी या राजनीतिज्ञ हो सकता है। इसलिये मेरी समझ में इस कुप्रथा की जड़ इसीलिये जमी है कि हम लोग ऐसी कुप्रथाओं को पुश्तैनी समझते हैं। और मुझे यह भी प्रतीत होता है कि जब तक हम लोग इस पुश्तैनी कानून को मानेंगे, हमारा इस कुप्रथा से कभी छुटकारा नहीं हो सकता। यह संभव है कि रामानुज ऐसे महान सुधारकों के प्रभाव के कारण उसकी जड़ता में कुछ कमी आ जाय, पर इस दुर्गुण को एकदम दूर करना असंभव है। मेरी समझ में जाति-पांति का बंधन बिना तोड़े अछूत प्रथा का अन्त करने की चेष्टा वैसे ही निरर्थक है, जैसे पेड़ का सिरा काट कर उसको निर्मूल करने का विचार।"

यह पत्र बहुत विचारपूर्ण है, और यदि सुधारक सतर्क न रहेंगे, तो संवाददाता का भय कटु वास्तविकता में परिणत हो सकता है। पर इस तर्क में एक स्पष्ट विभ्रम भी है। क्या भंगी या मोची जन्मना या कार्य के कारण अछूत समझा जाता है। यदि जन्मना अछूत समझा जाता है, तो यह बड़ी भयंकर प्रथा है, और इसका अंत करना ही चाहिये। यदि कार्य द्वारा व्यक्ति अछूत होता है तो सफाई के विचार से यह बड़ी महत्व की बात है। कोयले की खदान में काम करने वाला आदमी जब तक काम करता है, अछूत बना रहता है, और आप उससे हाथ मिलाना भी चाहेंगे, तो वह यह कह कर अस्वीकार कर देगा कि मैं बहुत गंदा हो रहा हूं। पर काम समाप्त कर, स्नान कर, वस्त्र बदल कर वह सबके साथ, ऊँचे से ऊँचे लोगों के साथ मिलता है। इसीलिये ज्यों ही हम जन्मना के भाव को अर्थात् बड़प्पन-छुटपन के भाव को दूर कर देते हैं, हम वर्णाश्रम को शुद्ध कर उसे निर्मल बना देते हैं। ऐसी दशा में भंगी की संतान भी हेय नहीं समझी जायगी और उसका ब्राह्मण के समान आदर होगा। अतएव दोष पुश्तैनी कानून का, बाप-दादों के कार्यों को अपनाने का नहीं, पर असमानता के अनुचित भाव का है।

मेरी समझ में वर्णाश्रम की रचना किसी संकुचित भाव से नहीं हुई थी। इसके विपरीत इसमें तो मजदूरी करने वाले शूद्र को वही स्थान दिया गया है,

जो विद्वान ब्राह्मण को। इसका ध्येय था गुण का विस्तार, दुर्गुण का नाश तथा मानवी सांसारिक महत्वाकांक्षा को स्थायी आध्यात्मिक महत्वाकांक्षा में परिणत करना। ब्राह्मण और शूद्र का ....दोनों का ही लक्ष्य था संसार की झूठी माया-ममता से मुंह मोड़ कर मोक्ष प्राप्त करना। समय पाकर यह प्रथा-कुप्रथा केवल निम्न रीति-रिवाजों में फंस गई, और इसका कार्य किसी को ऊंच, किसी को नीच बनाना रह गया। यह बात स्वीकार कर मैं इस वस्तु की दुर्बलता नहीं बतला रहा हूं। पर यह तो मानव स्वभाव की ही दुर्बलता है, जिसमें कभी उच्च स्व-प्रधान हो जाता है, कभी हेय स्व। वर्तमान सुधारक का कार्य अछूतपन के शाप को दूर कर वर्णाश्रम को उसके पूर्व में स्थापित करना है। इस सुधार के बाद परिष्कृत, वर्णाश्रम अधिक दिन चलेगा या नहीं, यह परीक्षा की बात है। यह बात उस नये ब्राह्मण वर्ग के हाथ में है, जिसकी नई रचना हो रही है, जो मनसा, वाचा, कर्मणा, देश सेवा तथा धर्म सेवा में जुट रहा है। यदि वे निष्काम तथा दैवी भाव से प्रेरित होकर कार्य करेंगे, तो हिन्दू धर्म का कल्याण होगा, अन्यथा अकल्याण होगा, और अनुचित हाथों में पड़कर, संसार के अनेक धर्मों के समान हिन्दू धर्म का भी नाश हो जायगा। किन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दू धर्म इतना शक्तिशाली है कि समय-समय पर उसमें जो अपवित्रतायें समाविष्ट हो जाती हैं, उसे दूर कर दे। मेरी समझ में उसकी यह क्षमता अभी तक वर्तमान है।

वर्णाश्रम की दलील

एक सम्वाददाता लिखते हैं :—

"हाल ही में मद्रास में आपने जो व्याख्यान दिया था, उसमें चतुर्वर्ण विभाग में अपना विश्वास प्रकट किया था। किन्तु क्या वर्ण प्रथा के परंपरागत विभाग में, उत्ताधिकार और कौटुंबिक विभाग में विश्वास रखते हैं। कुछ कहते हैं कि बात इससे उलटी ही है। आपकी लेखनी से तो पहली बात ही ठीक जान पड़ती है। उदाहरणार्थ, आपके इस कथन का क्या अर्थ है कि अछूतों को शूद्र समझना चाहिये और उनको अब्राह्मणों के सभी अधिकार प्रदान करने चाहियें। ब्राह्मण अब्राह्मण के इस स्वेच्छाचारपूर्ण भेद से क्या लाभ? क्या वे दोनों भिन्न जीव ही हैं। दो भिन्न जंतु हैं। यदि अछूत इसी जीवन में अब्राह्मण हो सकता है, तो ब्राह्मण भी क्यों नहीं हो सकता। पुनः यदि अछूत इस जन्म में शूद्र हो सकता है, तो वैश्य, क्षत्रिय और क्षत्रिय ब्राह्मण क्यों नहीं हो सकता। जो लोग कर्म विधान में अविश्वास करते हैं, उन्हें आप यह विधान मानने के लिये विवश क्यों करते हैं? क्या संसार में श्रीनारायण गुरू स्वामी से बढ़कर पूर्ण ब्राह्मण होगा? मैं बनिया गांधी से बढ़ कर कोई ब्राह्मण नहीं देखता। मैं ऐसे सैकड़ों अब्राह्मणों को जानता हूं जो अधिकांश जन्मना ब्राह्मणों से अच्छे हैं।

"यदि आप जन्मना वर्ण के सिद्धांत के पक्के समर्थक न होते, तो द्विज वर्ग में वर्तमान समान धर्म, समान रीति, समान नियम होने पर भी, उनमें अंतर्विवाह

की आज्ञा क्यों न देते? मेरी समझ में इसी कारण आप इतनी तत्परतापूर्वक निरामिष ब्राह्मण अब्राह्मण में सहभोज का भी विरोध करते हैं।

"इसमें कोई संदेह नहीं कि परंपरा जीवन का एक महान नियम है, पर उसकी रहस्यमयी योजना के पालन के विषय में और भी महान तथा रहस्यमय कारण हैं। एक तो जीव विज्ञान के विकास के सिद्धांत में, उसकी भाषा में, विभिन्नता पर निर्भर करता है। यह विभिन्नता ही विश्व का प्रधान सिद्धांत है, जिस पर उसकी संपूर्ण प्रगति निर्भर करती है। इसी वस्तु को कोई अधिक उपयुक्त नाम न होने के कारण आप उन्नति प्रगति कहते हैं। इसलिये इस विभिन्नता के नियम का पालन हर एक समाज के हित में आवश्यक है, अपालन हानि-कर होगा। भारत में वर्ण प्रचार का इतिहास इसका पर्याप्त प्रमाण है। इससे यह प्रमाणित होता है कि इस प्रथा को उपयुक्त करने में, इस नियम के पालन में जो सबसे भद्दी भूल हो सकती है, वह अपने धर्म, अपनी विद्या, अपने आध्यात्मिक कार्यों के लिये एक परंपरागत पुरोहित तथा रक्षक समुदाय का निर्माण है, जो सदैव केवल इसी एक कार्य का जिम्मेदार और सर्वसर्वा होगा।

"बा० भगवानदास ऐसे ठोस सनातनी ब्राह्मण ने भी, जिन्होंने इस विषय पर गवेषणा पूर्ण विचार किया है, भारत के समाज के पुर्ननिर्माण पर अपनी यह सम्मति प्रकट की है कि जन्मना वर्ग का सिद्धांत छोड़ देना चाहिये। पर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आप ऐसे आदमी इसका ठोस पालन करने की सलाह देते हैं।

"चूंकि बहुत से आदमी इस विषय में आपकी सम्मति स्पष्ट रूप से नहीं जानते, इसलिये मैं आशा करता हूं कि आप अपने सम्मानित पत्र में इस पत्र को तथा अपना उत्तर प्रकाशित कर देंगे।"

मेरी समझ में मैंने वर्णाश्रम के विरुद्ध संवाददाता की सभी दलीलों का समय-समय पर उत्तर दे दिया है। किन्तु निस्संदेह पाठक भुलने होते हैं, या जो बात जिनके विषय में लिखी जाती है, वही उसे पढ़ कर रह जाते हैं। उदाहरणार्थ मैंने वर्णाश्रम तथा अछूत प्रथा के भेद को कई बार बतलाया है। पहली प्रथा को मैं बुद्धिमत्तापूर्ण वैज्ञानिक वस्तु समझता हूं तथा दूसरी को घोर अवगुण और पूर्व प्रथा का मैल। संभव है, अज्ञानवश मैं जो भेद देखता हूं, वह न हो, या जिसे वैज्ञानिक समझता हूं वह केवल भ्रम और अंधविश्वास हो, किन्तु मैं वर्णाश्रम का विभाग व्यवसाय के आधार पर निर्धारित मानता हूं, और मेरी समझ में वह बड़ा उपयोगी विभाग है, पर आजकल जाति संबंधी भाव मूल भाव के बिलकुल ही विपरीत हैं। बड़ाई-छोटाई का तो मेरे सामने कोई सवाल ही नहीं उठता। यह केवल कर्त्तव्य का प्रश्न है। मैंने यह अवश्य कहा है कि वर्ण विभाग जन्मना है, पर मैंने यह भी कहा है कि शूद्र के लिये भी यह संभव है कि वह वैश्य बन जाय। पर वैश्य का कर्त्तव्य पालन करने के लिये उसे वैश्यत्व का पट्टा नहीं चाहिये। स्वामी नारायण गुरु संस्कृत के विख्यात पंडित हैं। पर उनको अपना पांडित्व प्रकट करने के लिये ब्राह्मण

कहलाने से कोई लाभ नहीं होगा। जो इस जन्म में ब्राह्मण के कर्त्तव्य का पालन करता है वह बड़ी सरलतापूर्वक अगले जन्म में ब्राह्मण के घर पैदा होगा। पर इसी जन्म में एक वर्ण से दूसरे वर्ण में परिवर्तन से बड़ी गड़बड़ी पैदा होगी। बड़ी धोखा-धड़ी चल निकलेगी। इसका प्राकृतिक परिणाम यह होगा कि वर्ण का नामोनिशान ही मिट जायगा। पर इस वस्तु को मिटाने का कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता। भले ही इससे भौतिक महत्वाकांक्षा में बाधा पड़ती हो। किन्तु धार्मिक उद्देश्य से रची व्यवस्था के साथ भौतिक उद्देश्य का सम्मिश्रण मैं नहीं कर सकता। मैं इसके लिये क्षमा चाहता हूं।

मेरे सम्वाददाता का उदाहरण भी उचित नहीं। मैं पंचम को शूद्र इस वास्ते कहता हूं कि मेरा विश्वास है कि भारत में कोई पंचम वर्ण था ही नहीं। पंचम का ही वही कार्य है, जो शूद्र का है, अतः उसे पंचम कहने की आवश्यकता ही क्या है। मेरा तो विश्वास है कि अछूत प्रथा तथा वर्णाश्रम के संबंध में इतना भ्रम तथा वर्णाश्रम का विरोध अछूतोद्धार का समर्थन········इन विपरीत बातों से अछूत कुप्रथा के निवारण में बड़ी बाधा पहुंचती है।

यह तो स्पष्ट है कि वर्णाश्रम विधान से जीव भेद विज्ञान के विधान में कोई बाधा नहीं पड़ती। न तो इसकी कोई भी गुंजाइश ही है। पर एक ढंग की चीज में कुछ वर्ष या पीढ़ियों में भेद नहीं पैदा हो जाता। ब्राह्मण या अछूत में कोई मूल भेद नहीं है। पर जो चाहे, वह खोज कर देख ले कि दोनों में या चतुर्वर्ण में एक विशेष भेद द्रष्टव्य है। मैं चाहता हूं कि मेरे संवाददाता महोदय मेरे साथ मिल कर ब्राह्मण या किसी के भी बड़प्पन के विचार का विरोध करते, उससे लोहा लेते। वर्णाश्रम में जो अवगुण आ गये हैं, उनको दूर करना चाहिये, न कि वर्णाश्रम को ही।

वर्ण धर्म पर प्रश्नोत्तर

प्रश्न—वर्ण धर्म पर आप जो जोर देते हैं, उसे हम समझ नहीं सकते। क्या आप आजकल की जात-पांत को ठीक समझते हैं? वर्ण की आपकी व्याख्या क्या है?

उत्तर—वर्ण का जात-पांत से कोई संबंध नहीं। जात-पांत अछूतपन की तरह हिन्दू धर्म पर उगा हुआ फालतू अंग है। आज जिन फालतू अंगों पर जोर दिया जाता है वे कभी हिन्दू धर्म में न थे। पर क्या ऐसे फालतू अंग ईसाई धर्म या इस्लाम धर्म में भी नहीं दीखते?

इनका सामना आप जी भर कीजिये। वर्ण का बनावटी भेष धर कर फिरने वाले जात-पांत रूपी राक्षस का आप जरूर नाश कीजिये। वर्ण की इस बिगड़ी हुई शक्ल ने ही हिन्दू धर्म को और हिन्दुस्तान को नीचे गिराया है। हमारी आर्थिक या माली आध्यात्मिक या रूहानी गिरावट का बड़ा सबब यही

है कि हम वर्ण धर्म का अमल करने में चूक गये। बेकारी और गरीबी का भी यह एक कारण है और अछूतपन के और उसी तरह बहुतेरे हिन्दुओं के धर्म छोड़ने के लिये भी यही जिम्मेदार हैं।

लेकिन वर्ण धर्म की मौजूदा राक्षसी स्वरूप का और राक्षसी रीति-रिवाजों का विरोध करते हुये हमें असली धर्म का ही विरोध न करना चाहिये।

प्रश्न—मनुष्य शूद्र होकर ब्राह्मण का काम करे तो क्या वह पतित हो जाता है?

उत्तर—शूद्र को ज्ञान पाने का उतना ही हक़ है जितना ब्राह्मण को। लेकिन वह अपना गुजारा लोगों को लिखा-पढ़ा कर करने की कोशिश करे, तो वह जरूर वर्ण धर्म से गिर जायगा। पुराने जमाने में अलग-अलग धन्धों की अपने आप बनी हुई पंचायतें थीं, और अलग-अलग पेशे वाले हर एक आदमी को पोसने का पीढ़ी दर पीढ़ी रिवाज था। सौ वर्ष पहले बढ़ई का लड़का वकील बनने का लालच नहीं करता था। आज करता है, क्योंकि इस धंधे में उसे धन चुराने का सबसे आसान रास्ता दिखाई देता है। वकील मानता है कि उसे अपना दिमाग खर्च करने के लिये १५,००० रुपये फीस लेनी चाहिये और हकीम साहब, जैसे डाक्टर, वैद्य समझते हैं कि उन्हें अपनी डाक्टरी सलाह के लिये १,००० रुपये रोज लेने चाहिये।

प्रश्न—किसी शूद्र में ब्राह्मण के सब गुण होते हुये भी क्या उसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता?

उत्तर—वह इस जन्म में ब्राह्मण नहीं कहलायेगा। और इसके लिये यह अच्छा है कि जिस वर्ण में वह पैदा नहीं हुआ उसे वह न अपनाये। वह सच्ची नम्रता या इन्कसारी की निशानी है।

प्रश्न—जब तक आप वर्ण को नहीं मिटाते तब तक अछूतपन नहीं मिटेगा?

उत्तर—मैं यह नहीं मानता। फिर भी छुआछूत को मिटाने में वर्णाश्रम मिट जाय तो मैं एक आंसू भी नहीं बहाऊंगा। मगर मेरी व्याख्या या तारीफ के वर्ण का छुआछूत के साथ क्या ताल्लुक़ है?

प्रश्न—मगर सुधार के विरोधी अपनी हिमायत में आपका सबूत जो पेश करते हैं?

उत्तर—यह हालत तो हर सुधारक की तकदीर में लिखी है। स्वार्थी पक्ष उसकी बातों का बेजा इस्तेमाल करेंगे ही। मगर आप जानते हैं कि उनमें से कुछ यह चाहते हैं कि मैं हिन्दू धर्म छोड़ दूं। दूसरे कुछ ऐसे हैं कि उनका बस चले तो वे मुझे हिन्दू धर्म से निकाल दें। मैं वर्ण धर्म का बचाव करने के लिये कहीं गया नहीं, पर छुआछूत मिटाने के लिये तो मैं वायकम तक गया था।

खादी प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता और छुआछूत का नाश-स्वराज्य के इन तीन खम्भों का कांग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया था, उसे मैंने बनाया था। लेकिन वर्णाश्रम धर्म की संस्थापना को मैंने कभी स्वराज्य का चौथा खम्भा नहीं कहा। इसलिये आप मुझ पर यह इलजाम नहीं लगा सकते कि मैंने वर्णाश्रम धर्म पर गलत जोर दिया।

प्रश्न—ब्राह्मणों के जिस तबके ने बौद्ध धर्म का सबसे अच्छा हिस्सा अपना लिया था उसी तबके ने अछूतों को मंदिरों में जाने से रोक कर और उन पर बेरहमी भरी रुकावटें डाल कर भद्दे से भद्दे गुनाह, अमृतसर के जुल्मों से भी भद्दे गुनाह किये हैं।

उत्तर—आपका कहना कुछ हद तक सच है। लेकिन आप यह मान कर गलती करते हैं कि ब्राह्मण ही इसके दोषी हैं। इसलिये सारा हिन्दू धर्म जिम्मेवार है। जब वर्ण धर्म का रूप बिगड़ा तो उसमें से अछूतपन पैदा हुआ। यह कोई जानबूझ कर की हुई दुष्टता नहीं थी मगर इसका नतीजा बहुत ही दुखदायी निकला है।

[कडलौर, तंजौर, कोयम्बटूर के सार्वजनिक भाषणों से, जो ११ तथा १८ दिसम्बर, १९२७ ई० को वहां दिये गये थे]

आज का वर्ण धर्म

आज हम जिसे वर्ण व्यवस्था मानते हैं, उसे मैं नहीं मानता। आज की वर्ण व्यवस्था का मतलब सिर्फ छूआछूत और रोटी-बेटी के व्यवहार की पाबंदिया हैं। आजकल के छुआछूत को मैं भगत की भाषा में फालतू अंग मानता हूं, छोड़ने लायक मानता हूं। रोटी-बेटी की पाबन्दी को वर्ण का हिस्सा मानने के लिये पुराने रिवाज के सिवा शास्त्र का कोई आधार नहीं।

इससे उल्टे, वर्ण का गुजारे के धन्धे के साथ नजदीक का रिश्ता है। सबका धन्धा ही उनका अपना धर्म है। जो उसे छोड़ता है, उसका वर्ण बिगड़ जाता है और उसका अपना नाश हो जाता है। यानी उसकी आत्मा मर जाती है...... ब्राह्मण वर्ण ने विद्या देने का काम तोड़ा कि उनका वर्ण बिगड़ा। वैश्य रुपया पैदा करना छोड़ दे, तो वे वर्ण से गिरते हैं। शूद्र सेवा छोड़े, तो उनका पतन है। सब अपने-अपने धर्म में लगे रह कर बराबरी के रहते हैं। जो अपना धर्म छोड़ता है, उसी का पतन होता है। अपना धर्म छोड़ने वाले ब्राह्मण से अपना धर्म पालने वाला शूद्र अच्छा है।

आज का वर्ण धर्म मिटा हुआ दीखता है। एक वर्ण भी अपना धर्म छोड़ दे, तो वर्ण मिट जाता है।......आज अपने धर्म को पालने वाले कितने शूद्र मिलेंगे? बेमन से की हुई मजूरी सेवा नहीं। धर्म में जबरदस्ती का काम नहीं। धर्म को समझ कर समाज की तरक्की के लिये अपनी मरजी से की हुई मजूरी ही

सेवा कहलायेगी। इस तरह दुख के साथ यह मानना ही पड़ेगा कि वर्ण धर्म का बिलकुल नाश हो गया है। शूद्र को मजूर बता कर व्याख्या करने वाले ने उसकी बेइज्जती की है और हिन्दू धर्म को नुक़सान पहुंचाया है।

· · · · इस वर्ण धर्म के पालन को फिर से मुमकिन बनाने के लिये सबको खुशी से शूद्रों का धर्म अख्तियार करने की जरूरत है। शूद्र ज्यादातर शरीर की मेहनत के जरिये सेवा करता है। यह धर्म सबके लिये आसान है। इसलिये यही सब कर सकते हैं। सब अपने को शूद्र समझें, तो ऊंच-नीच का भाव जाता रहे।

कोई कहेगा कि अगर सब अपने को शूद्र बतावें, तो हरिजन ही क्यों न बतावें ? मैं इस आग्रह का बिलकुल विरोध न करूंगा, लेकिन धर्म में वर्ण पांच नहीं हैं, और अछूतपन तो मिट ही रहा है। इसलिये मैं शूद्र शब्द काम में लेता हूं। मालवीय जी महाराज की अध्यक्षता में या सदारत में हिन्दू जाति के नाम पर बम्बई में ली गई प्रतिज्ञा के बाद जन्म से अछूतपन मानने का हिन्दू धर्म में गुंजाइश नहीं रही। इसलिये वर्ण धर्म को फिर से ऊंचा उठाते समय सबकी गिनती हरिजनों में करने की बात बेमौका समझी जायगी। हरिजन और दूसरे सब लोग शूद्र बन कर रहें, तो सहज में सब हरि के जन यानी ईश्वर के भक्त बन जायं।

आज तो एक ही वर्ण है

आज अगर हम सब हिन्दुओं के वर्ण के हिसाब से हिस्से बनाने ही हों, तो अकेले शूद्र वर्ण के सिवा दूसरा कोई भी वर्ण नहीं। और इस सच्ची हालत को मान लेने में ही हिन्दू जाति का भला है। इतना मान लेने से ऊंच-नीच वर्ण के भेद अपने आप मिट जायेंगे। ऐसा नहीं है कि इसके बाद कोई ब्रह्म विद्या दूसरी विद्या हासिल करने की कोशिश नहीं करेगा। मगर इसका मतलब इतना तो है ही कि सब खुद मेहनत करके, हाथ-पैर हिलाकर रोटी पैदा करेंगे और अपनी दूसरी शक्तियां आप लोगों की भलाई के काम में लगायेंगे। यह सच है कि इस तरह का वर्ण धर्म असल में आया हुआ हमने देखा नहीं, पर इसमें मुझे कोई शक नहीं कि हिन्दू धर्म के सतयुग में इस वर्णधर्म का पालन हुआ होगा।

वर्णाश्रम धर्म और अछूत प्रथा

अछूत प्रथा पर व्याख्यान देने के सिलसिले में आज एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ है, और मुझसे पूछा गया है कि अछूत प्रथा का वर्णाश्रम धर्म से क्या संबंध है। इसका अर्थ यह है कि मैं वर्णाश्रम धर्म पर अपना विचार प्रकट करूं। जहां तक मैं जानता हूं हिन्दू धर्म में सबसे सरल बात है वर्णाश्रम धर्म का अर्थ। वर्ण का अर्थ अत्यन्त सरल है। इसका केवल यही अर्थ है कि कर्त्तव्य के मूल सिद्धांतों का विचार रखते हुये, जीविका निर्वाह का कार्य वही होना चाहिये, जो कुल परंपरा से हमारे पूर्वज करते आ रहे हैं। यदि हम सभी धर्मों

में मनुष्य की जो परिभाषा की गई है, उसे मानने के लिये तैयार हूं, तो मैं इस बात को अपनी सत्ता मात्र का मूल नियम समझता हूं। ईश्वर के बनाये सभी जानवरों में मनुष्य ही ऐसा पशु है, जिसकी सृष्टि इसलिये की गई है कि वह अपने विधाता को पहिचाने। इसलिये मनुष्य का यह ध्येय नहीं है कि वह सदैव अपनी भौतिक श्रीवृद्धि करता जाय, किन्तु उसका मुख्य और प्रधान कार्य है अपने विधाता या सृजनहार के निकट पहुंचने की चेष्टा करते रहना, और इसी परिभाषा के आधार पर हमारे प्राचीन ऋषियों ने हमारी सत्ता का यह नियम ढूंढ़ निकाला। आप समझ सकेंगे कि यदि हम सब इस वर्ण विधान का अनुकरण करें, तो हमारी भौतिक महत्वाकांक्षा सीमित हो सकेगी। हमारी क्रिया शक्ति को समय मिलेगा न कि वह ईश्वर को जानने के लिये जिस विशाल तथा महत्व पथ से चलना होता है, उसमें अपना उपयोग करेगा। इसलिये आप यह भी देख लेंगे कि संसार के जिन अधिकतम कार्यों की ओर हमारा ध्यान रहता है, वह निरर्थक प्रतीत होगा। इन बातों को सुनकर आप यह कह सकते हैं कि आज जिस वर्ण का हम पालन करते हैं, वह मेरे वर्णित वर्ण के बिलकुल ही विपरीत है। यह बात सत्य है पर जिस प्रकार असत्य को सत्य के रूप में माने जाते देख कर भी आप सत्य से घृणा नहीं करते, किन्तु असत्य को सत्य से दूर कर सत्य को ही अपनाने की चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार वर्ण के नाम पर प्रचलित वस्तु को भी हम दूर कर सकते हैं और हिन्दू समाज की वर्तमान कुदशा को परिष्कृत कर शुद्ध कर सकते हैं।

आश्रम तो वर्ण का परिणाम है और यदि वर्ण ही खराब हो गया है, तो आश्रम का एकदम लोप हो जाना आश्चर्यजनक नहीं है। मनुष्य के जीवन की चार श्रेणियों को आश्रम कहते हैं। यहां पर एकत्रित कालेज के विज्ञान तथा कला विभाग के विद्यार्थियों ने मुझे थैलियां भेंट की हैं। यदि वे मुझे यह आश्वसन दिला सकें कि वे प्रथम आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पूर्णतः पालन करते हैं, और मनसा वाचा कर्मणा वे ब्रह्मचारी हैं, तो मुझे आंतरिक हर्ष होगा। ब्रह्मचर्याश्रम का निर्देश है कि कम से कम २५ वर्ष की उम्र तक जो ब्रह्मचारी रहता है, उसे ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकार है। और चूंकि हिन्दू धर्म का संपूर्ण भाव ही यह है कि मनुष्य की वर्तमान दशा में सुधार करता हुआ उसे ईश्वर के निकट लेता जाय, इसीलिये ऋषियों ने गृहस्थाश्रम की भी एक सीमा बतला दी, और हमें वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रमों को भी क्रमशः अपनाने का निर्देश किया। पर आज भारत के हर कोने को छान डालिये, इनमें से किसी भी आश्रम का सच्चा पालन करने वाला एक भी न मिलेगा। आज की सभ्यता तथा नवीन बुद्धिमत्ता के युग में हम जीवन की इस योजना पर हंस सकते हैं। पर इसमें मुझे कोई संदेह नहीं की हिन्दू धर्म की महान सफलता का यही रहस्य भी है। हिन्दू सभ्यता अभी जीवित है और मिस्री, असीरियन या बैबीलोनियन सभ्यता कभी की मर चुकी। ईसाई सभ्यता तो केवल दो हजार वर्ष पुरानी है। इस्लाम तो अभी कल की चीज है। ये दोनों ही महान सभ्यतायें हैं, पर मेरी तुच्छ राय में, अभी इनका निर्माण हो रहा है। ईसाई योरप में बिलकुल ही ईसाइयत नहीं है, वह और मेरी समझ में

इस्लाम भी अपनी महान गूढ़ता की खोज में अंधेरे में मार्ग टटोल रहा है। और आज इन दो महान धर्मों में स्वास्थ्यकर तथा अत्यन्त अस्वास्थ्यकर दोनों प्रकार की प्रतिस्पर्द्धायें हो रही हैं। ज्यों ज्यों मैं बूढ़ा होता जाता हूं, मेरी यह धारणा होती जाती है कि मानवी जीवन के लिये वर्ण का होना आवश्यक है, और इसीलिये मैं ईसाई और मुसलमान तथा हिन्दू की रक्षा के लिये समान रूप से आवश्यक समझता हूं। इसलिये यह मानना अस्वीकार करता हूं कि वर्णाश्रम हिन्दू धर्म का अभिशाप है। आज दक्षिण में ऐसा कहना कुछ हिन्दुओं के लिये फैशन की बात हो गई है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि हम आप आजकल के वर्णाश्रम के भयंकर रूप को सहन करें या उसके वर्तमान स्वरूप के प्रति उदार भाव रखें। वर्णाश्रम या जाति-पांति का कोई संबंध नहीं। यदि आप चाहें, तो यह मान सकते हैं कि हिन्दू प्रगति में इस वस्तु ने बड़ी बाधा पहुंचाई है और, अछूत प्रथा इसी वर्णाश्रम का मैल है। जिस प्रकार धान या गेहूं के खेत में घास-पात को नहीं उगने दिया जाता, उखाड़ फेंका जाता है, उसी प्रकार इस मैल को भी हटा देना चाहिये। वर्ण के इस भाव में किसी की बड़ाई छोटाई का कोई स्थान ही नहीं है। यदि मैं हिन्दू भाव को ठीक प्रकार से व्यक्त कर सकता हूं, तो मैं यह कहना चाहता हूं कि सभी व्यक्तियों का, सभी प्राणियों का जीवन समान है, कोई बड़ा या छोटा नहीं है। इसलिये ब्राह्मण का यह कहना या सोचना कि वह अन्य वर्णवालों से बड़ा है, नितांत अनुचित है। प्राचीन समय के ब्राह्मण यह नहीं कहा करते थे। वे आदरणीय इसलिये नहीं थे कि वे बड़प्पन का दम भरते थे, पर इसलिये कि पुरस्कार की लेशमात्र भी कामना किये बिना ही वे दूसरों की सेवा करने के अधिकार का दावा रखते थे। पर आजकल के पुरोहितों ने इन पूर्वजों की महत्ता तथा आदर को अपनाने का पाखंड मात्र किया है। वे हिन्दू धर्म या ब्राह्मणत्व की रक्षा नहीं कर रहे हैं। ज्ञात या अज्ञात रूप से वे अपनी ही डाल काट रहे हैं और जब वे आपसे यह कहते हैं कि शास्त्रों में अछूत प्रथा का निर्देश है, मैं निस्संकोच यह कहने के लिये तैयार हूं कि वे अपने कर्त्तव्य तथा धर्म की अवज्ञा कर रहे हैं और हिन्दू धर्म के भाव की गलत व्याख्या कर रहे हैं। इसलिये आज इस समाज के श्रोता हिन्दुओं पर ही यह निर्भर करता है कि वे अपने लिये अत्यावश्यक कर्तव्य पहचान कर इस दिशा में क्रियाशील हों, और इस शाप से अपना छुटकारा करें। आप एक प्राचीन हिन्दू राज्य की प्रजा हैं। आपको इस सुधार में अगुआ बनने का गर्व होना चाहिये। जहां तक मैं आपके चारों ओर के वातावरण से पढ़ सकता हूं, मुझे यही दिखाई पड़ता है कि यदि आप सच्चाई तथा मेहनत से कार्य करना चाहें, तो वास्तव में यही अनुकूल अवसर है।

त्रिवेन्द्रम्, सन् १९२८

मेरे निजी विचार

वर्ण-व्यवस्था के प्रश्न का अछूतपन मिटाने के साथ सीधा संबंध नहीं। अछूतपन मिटाना हर हिन्दू का परम धर्म है। इसी के लिये हरिजन सेवक संघ

की हस्ती है। उसने अपने क्षेत्र की मर्यादा बांधी है। उस मर्यादा के बांधने में मेरा खास हाथ है।

वर्ण धर्म के विचार अभी तो मेरे निजी विचार हैं। उन्हें जो न माने, उसे भी अछूतपन दूर करने से न चूकना चाहिये। मैं उसमें विशेष करके भाग लेता हूं। इस ख्याल से किसी को भड़कने की जरूरत नहीं। वर्ण-व्यवस्था के मेरे विचारों को हिन्दू जाति न माने, तो वे मेरे पास ही रह जायेंगे। मैं उन्हें जबरदस्ती नहीं मनवा सकता, मनवाने की इच्छा भी नहीं रखता। ये विचार हिन्दू धर्म के खिलाफ होंगे, तो मैं खुद हिन्दू जाति में से निकल जाऊंगा। लेकिन अछूतपन मिटाने की प्रतिज्ञा का पालन करना तो सब हिन्दुओं का एक सा धर्म है। मैं अपना एक भी विचार छिपाकर किसी को दाग नहीं देना चाहता। वर्ण-व्यवस्था का सवाल अछूतपन के साथ टेढ़ा-मेढ़ा संबंध रखता है, इसलिये मैं समझ सकता हूं कि मेरे साथी और दूसरे इस बारे में मेरे विचार जानना चाहते होंगे। इसी कारण मुझे यह अपने ये विचार खोलकर बताने पड़ते हैं, मगर इन विचारों से किसी को सोच-विचार या परेशानी में पड़ने की जरा भी जरूरत नहीं।

मेरा वर्णाश्रम धर्म

वर्णाश्रम धर्म के मानी हैं भगवद्गीता में बताया हुआ वर्णाश्रम धर्म, समाज की सेवा के अलग-अलग कामों पर बनाए हुये महा नियमों का धर्म। इस धर्म का खाने-पीने और शादी-ब्याह के साथ कई सरोकार नहीं। मरा वर्णाश्रम धर्म मुझे पाक और साफ खुराक किसी भी धर्म वाले के और अछूत के भी से लेने की छुट्टी देता है। मेरा वर्णाश्रम धर्म मुझे अपने आश्रम में अछूत भाइयों के साथ एक पंगत में बैठ कर खाने से नहीं रोकता। मेरा वर्णाश्रम धर्म मुझे एक अछूत लड़की को अपनी बेटी बनाकर रखने से मना नहीं करता। अगर इस वर्णाश्रम धर्म को ही आप उखाड़ना चाहते हैं, तो आप हिन्दू धर्म को उखाड़ फेंकेंगे।

२५ सितम्बर, १९२७ ई०

मेरी योजना में शूद्र का स्थान

समाज को फिर से बनाने की अपनी योजना में मैंने अछूत जातियों का जिक्र नहीं किया, क्योंकि वर्ण धर्म में या हिन्दू धर्म में मैं अछूतपन की गुंजाइश नहीं देखता। ये वर्ग दूसरे सब के साथ शूद्रों की जमात में मिल जायेंगे। इस शूद्र वर्ग में से पवित्र या पाक होकर धीरे-धीरे दूसरे तीन वर्ण पैदा होंगे। इनके पेशे अलग-अलग होते हुये भी इनका दरजा बराबर होगा। ब्राह्मण बहुत थोड़े होंगे। क्षत्रियों का वर्ग इससे भी थोड़ा होगा और वे आजकल की तरह भाड़े के सिपाही या बेलगाम राजा न होंगे, बल्कि कौम के सच्चे रक्षक और हवलदार होंगे और राष्ट्र की सेवा में जान देने वाले होंगे। सबसे छोटा वर्ग शूद्रों का होगा, क्योंकि अच्छे बन्दोबस्त वाले समाज में इन भाई-बहनों से कम से कम मजदूरी कराई जायगी। बड़ी से बड़ी तादाद वैश्यों

की होगी। इस वर्ण में तमाम धन्धे, किसान, व्यापारी वगैरह सब शामिल होंगे। यह योजना ख्याली पुलाव पकाने जैसी लग सकती है। लेकिन आज जिस समाज को मैं तितर-बितर होता देख रहा हूं, उसके मनमाने और बेलगाम व्यवहार की माफिक जीने के बजाय मैं अपने ख्याल के इस मनोराज्य में बिचरना ज्यादा पसन्द करता हूं। किसी शख्स का मनोराज्य समाज के हाथों मंजूर न हो, तो भी उसे उसमें रहने और बिचरने की छुट है। हर एक सुधार की शुरुआत व्यक्ति से ही हुई है। जिस सुधार में सुधारक के प्राण हों और जिसे शूरवीर आत्मा का सहारा हो, उसे सुधारक का समाज स्वीकारे बिना नहीं रह सकता।

२७ नवम्बर, १९२७ ई०

दलित जातियां

छठी जुलाई को, जब मैं बम्बई में ए० आई० सी० सी० की बैठक में शामिल होने जा रहा था, किसी ने मेरी मोटर में एक छपा हुआ परचा फेंका। वही परचा श्री राजभोज ने १२ जुलाई को मुझे हाथों हाथ दिया। परचा ए० आई० सी० सी० यानी कांग्रेस की महासमिति के मेम्बरों के नाम लिखा गया है। मैंने वादा किया था कि उसमें पूछे गये सवालों का जवाब हरिजन में दूंगा। चुनान्चे नीचे वे सवाल और उनके जवाब देता हूं।

ये सवाल ऐसे हैं कि ए० आई० सी० सी० के मेम्बरों को इनका जवाब देने की जरूरत नहीं। मुझे हैरानी न होगी, अगर किसी मेम्बर ने इनका जवाब न दिया हो। इन सवालों से पता चलता है कि पूछने वाले को कांग्रेस के इतिहास या उसकी तवारीख की कोई जानकारी नहीं। किसी खास काम के लिये इकट्ठा हुये लोगों का यह काम नहीं कि वे दूसरे किसी मसले को लेकर बैठ जायं। मगर अखबारों का तो काम ही है कि वे अज्ञान या जहालत को दूर करें। इस बारे में मेरी जिम्मेदारी तो और भी ज्यादा है, क्योंकि मैं एक हफ्तेवार अखबार चलाता हूं और अपनी मरजी से हरिजन बन गया हूं।

सवाल—आपके स्वराज में अछूतों को क्या जगह होगी? कांग्रेस ने अल्पमतवालों या अकलीयतों की हिफाजत करने के बारे में बातें तो बहुत की हैं, मगर वह किस तरह उनकी हिफाजत करेगी, इसका कोई खाका वह आज तक क्यों नहीं बना पाई? क्या उसकी इस खामोशी से अल्पमतवालों के दिल में कांग्रेस की ईमानदारी के बारे में शक पैदा न होगा?

जवाब—मेरी कल्पना के स्वराज्य में अछूतों की वही जगह होगी, जो सवर्ण कहलाने वाले हिन्दुओं की होगी। कांग्रेस भी इसी उसूल को मानती है। सब आम और खास की जितनी संस्थाओं, इदारों या जमायतों को मैं जानता हूं, उन सबमें एक कांग्रेस ही ऐसी है, जिसने अल्पमतवालों की हिफाजत के बारे में बातें कम और काम ज्यादा किया है। जब हम कुछ करके दिखाते हैं, तो फिर उसके नक्शे या खाके की जरूरत नहीं रह जाती।

स०—क्या कांग्रेस अछूतों को अल्पमत मानती है? गांधी जी ने सन १९३९ के हरिजन में लिखे अपने एक लेख में यह कबूल किया था कि हिन्दुस्तान में सच्ची अल्पमत कौम एक ही है, और वह है अछूत कौम। ऐसी हालत में मौलाना अबुलकलाम आजाद ने वाइसराय साहब को लिखे अपने आखिरी खत में यह क्यों लिखा कि कांग्रेस अछूतों को माइनारिटी या अल्पमत मानने को तैयार नहीं?

ज०—कांग्रेस अछूतों को अल्पमत नहीं मान सकती, क्योंकि जिस मानी में पारसी, यहूदी, ईसाई और दूसरे लोग अपने को अल्पमत कहते हैं, उस मानी में अछूत अल्पमत नहीं हैं। अगर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अल्पमत माने जायं और शूद्र बहुमत तो अलबत्ता हरिजनों को अल्पमत कहा जा सकता है। जिन मानों में बहुमत और अल्पमत या मेजारिटी और माइनारिटी लफ्जों का इस्तेमाल किया जाता है, उन मानों में ये लोग अल्पमत या बहुमत वाले नहीं हैं। खुशकिस्मती से अभी हम उस हालत तक नहीं पहुंचे कि जब इन सबको अल्पमत या बहुमत गिना जाय। जब वह हालत पैदा हो जायगी, तब किसी भी तरह के स्वराज के लिये हमें कहना होगा कि भगवान हमें उससे बचाये। शायद अंग्रेज आज चले जायं, आज नहीं तो कल उन्हें जाना तो होगा ही। अगर उनके जाने के बाद हम जंगली बन कर आपस में एक दूसरे का गला काटने लगे, तो हमारी आजादी जंगली लोगों की आजादी होगी।

बम्बई प्रान्त के शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन के प्रेसीडेंट ने सन् १९३९ में हरिजन में लिखे मेरे जिस लेख या मजमून का जिक्र किया है, उन्हें चाहिये था कि वे उसमें छपे मेरे असल शब्द भी साथ में देते। मगर उन्होंने तो हरिजन का नम्बर और उसका पन्ना तक बतलाने की तकलीफ गवारा नहीं की। मुझे तो याद नहीं आता कि मैंने कभी ऐसी बात कही हो। सन् १९३९ में मैंने कुछ भी क्यों न लिखा हो, या शायद कुछ लिखा ही हो, तो भी मौलाना साहब ने जो कहा है, वह तो ठीक ही है।

स०—कांग्रेस हरिजनों को अल्पमत नहीं मानती, यह किस बात की निशानी है? क्या इसका यह मतलब है कि हरिजनों ने मौजूदा सरकार से अपने लिये जो राजनीतिक या सियासी हक़ हासिल किये हैं, उन्हें भी कांग्रेस उनसे छीन ले?

ज०—इससे यह जाहिर होता है कि अछूत हिन्दूधर्म के एक अंग या जुज हैं। इसलिये उनकी हालत अल्पमतवालों से बेहतर है। मगर वे अलग कौम होने का दावा करें, और अलग कौम बनना चाहें तो बदतर भी है। चन्द पढ़े लिखे अछूत अपने आपको भले हिन्दुओं से अलग समझें, मगर अछूतों की आम जनता को तो हिन्दुओं के साथ ही तैरना या डूबना है। और अगर हिन्दुओं ने हरिजनों के साथ, जिन्हें अछूत भी कहा जाता है, अपना बुरा सलूक जारी रखा, तो इसमें शक नहीं कि आखिर हिन्दू धर्म मिट कर ही रहेगा।

सवाल पूछने वाले के सामने कौन से राजनीतिक या सियासी सेफगार्डस यानी महफूज हक है, सो मैं नहीं जानता। अगर उनका इशारा अलग मताधिकार की तरफ है, तो कहना होगा कि जिस हद तक वह आज बरता जाता है, उसे भी एक दिन खत्म होना है। वह तो शैतान का एक हथकंडा है, और साम्राज्यवाद उसी का एक अवतार है। उन्होंने कभी अछूतों की रक्षा या हिफाजत करना नहीं चाहा। अछूत तो साम्राज्यवाद को टिकाये रखने के साधन भर थे। कौमों को कानूनन् एक दूसरे से अलग करने का हर एक कदम उनमें फूट डलवाकर अपनी हुकूमत बनाये रखने के उसूल को सामने रख कर ही उठाया गया है। यह तो साम्राज्यवाद की नस-नस में घुसी हुई चीज है, फिर भले ही इसे कितना ही मीठा नाम क्यों न दिया जाय।

स०—कांग्रेस यह मानती है या नहीं कि प्रान्तों या सूबों की धारासभाओं के चुनावों में जो अछूत चुने गये हैं, वे शुरू के चुनाव में सबसे नीचे रहे थे? और शेडयूल्ड कास्ट्स फेडरेशन की तरफ से खड़े किये गये लोग ऊपर आये थे, यानी उन्हें ज्यादा वोट मिले थे? क्या कांग्रेस यह मानती है या नहीं मानती कि पहले चुनाव में हारे हुये जो लोग आखिरी चुनाव में जीते, सो सिर्फ इसलिये कि उन्हें हिन्दुओं के वोट मिल गये थे। क्या कांग्रेस इस बात से इन्कार कर सकती है कि हिन्दुओं के वोट से चुने गये लोग अछूतों के सच्चे प्रतिनिधि या नुमाइन्दा नहीं माने जा सकते?

ज०—मैं नहीं कह सकता कि यह बात दुरुस्त है या नहीं। मेरे पास वोटों की गिनती के आंकड़े नहीं है। मेरा ख्याल है कि चन्द लोगों को छोड़ कर बाकी के मामले में हकीकत इससे उलटी थी।

हारे हुये उम्मीदवार कौन थे? वे अपने को मुश्तरका वोट के लिये खड़ा नहीं कर सकते थे। शुरू के चुनाव में पहले के चार उम्मीदवार जीते हुये माने जाते हैं, यानी वे मुश्तरका या मिले-जुले वोट के लिये खड़े हो सकते हैं। सचमुच ही यह तो फख्र या गर्व की बात है कि इन चारों में जो सबसे कम वोट पाकर जीता था, वह मुश्तरका चुनाव में हिन्दुओं के वोट की वजह से जीत सका।

कांग्रेस यह नहीं मान सकती कि शुरू के चुनाव में जो सबसे ऊपर था और जिसे हिन्दुओं के काफी या कुछ भी वोट नहीं मिल सके थे, वही अछूतों का सच्चा नुमाइन्दा था। क्या श्री गायकवाड़ और उनके जैसे दूसरे लोग हिन्दुओं के वोट की तरफ अपनी लापरवाही दिखा सकते हैं, जब तक कि वे खुद हिन्दू हैं। फिर उन्हें वोट देने वाले हिन्दू चाहे सवर्ण हिन्दू ही क्यों न हों। पेड़ की जिस डाल पर वे बैठे हैं, उसी को काटने की कोशिश वे न करें। अलग होने का मतलब तो यही हो सकता है कि या तो वे अपना धर्म बदलें या कोई नया धर्म चलायें। यह तो उलझन को और उलझाना होगा।

स०—पूना के समझौते के वक्त गांधीजी ने वादा किया था कि अछूतों के लिये अलग रखी गई सीटों या बैठकों की भर्ती में हिन्दू दखल न देंगे। कांग्रेस ने इस वादे को क्यों तोड़ा और क्यों वादाखिलाफी की ?

ज०—मैंने ऐसा कोई वादा नहीं किया था। मुश्तरका वोट या संयुक्त मत, जिसके लिये मैंने उपवास या फाका किया था, एक दखलगीरी ही थी, बशर्ते कि वह दखलगीरी कही जाय। अगर किसी और किस्म की दखलगीरी या दस्तन्दाजी से मतलब है, तो सवाल पूछने वाले को वह साफ करना चाहिये और अपनी दलील को मजबूत बनाने के लिये मेरे लेख का हवाला देना चाहिये।

स०—१९४५ में लार्ड वेवल की बुलाई शिमला कांफ्रेंस के वक्त कांग्रेस ने वाइसराय की एक्जिक्यूटिव या कारोबारी कौंसिल में दो हरिजनों को लेने की बात का विरोध नहीं किया था। इस बार कांग्रेस ने दो की जगह एक हरिजन क्यों रखा ? क्या इससे यह साबित नहीं होता कि कांग्रेस पर नहीं भरोसा किया जा सकता ? ज्योंही कांग्रेस को फैसला करने का हक मिलेगा, वह अपना वादा या बचन तोड़ डालेगी और अछूतों ने सियासी मामलों में आज तक जो महफूज हक या सुरक्षित अधिकार पाये हैं, उन सबको रद्द कर देगी।

ज०—यह इलजाम मेरी समझ में नहीं आया। जहां तक मैं जानता हूं कांग्रेस ने कोई वादाखिलाफी या विश्वासघात नहीं किया।

स०—हरिजन सेवक संघ के सब कार्यकर्ताओं ने और गांधी जी ने भी यह कह दिया है कि छुआछूत को मिटाने में जरा भी कामयाबी नहीं मिली। इसके बरअक्स जो जुल्म और सख्तियां सवर्ण हिन्दू हरिजनों पर सदियों से करते आये हैं, वे आज बढ़ गई हैं और मुख्तलिफ शक्लों में नजर आती हैं। अगर अछूतों की इन शिकायतों को दूर करना है तो जरूरी है कि हम धारासभाओं में जायें और वहां इनकी चर्चा करें। हर अकलमन्द शख्स मानेगा कि यह चर्चा सिवा अछूतों के दूसरा कोई नहीं कर सकता। अछूतों के ऐसे प्रतिनिधि या नुमाइन्दे अछूतों के अपने वोटों से . . . पृथक मताधिकार से ही चुने जाने चाहियें। अगर यह सच है तो फिर अकेली कांग्रेस ही क्यों अछूतों की इस मांग का विरोध करती है।

ज०—मैंने ऐसा कोई एलान नहीं किया और जहां तक मैं समझता हूं, हरिजन सेवक संघ ने भी नहीं किया कि छुआछूत मिटाने के कामों में थोड़ी भी तरक्की नहीं हुई। इतना तो हम सब कबूल करते हैं कि जहां तक सवर्ण हिन्दुओं का सवाल है, अभी तक इस मामले में संतोषजनक या खातिरख्वाह तरक्की नहीं हो पाई है। लेकिन यह कोई नई शिकायत नहीं। बहुत पुरानी चीज है। हमें उस सुधारक पर तरस आना चाहिये, जो बहुत आसानी से या थोड़ी तरक्की से सन्तुष्ट हो जाता है। इस सुधार या इस्लाह के दो पहलू हैं। जहां तक हरिजनों में काम करने की बात है, संघ काफी आगे बढ़ा है।

छूतछात के भूत को निकालने में यह कोई बात नहीं। लेकिन सवर्ण हिन्दुओं में सुधार बहुत धीमी चाल से हो रहा है। यह बहुत मुश्किल काम है, लेकिन इसके बारे में भी मैं यह दावे से कहता हूं कि तरक्की हो रही है, फिर वह कितनी ही धीमी क्यों न हो।

यह इल्जाम कि अछूतों पर सवर्ण हिन्दुओं का जुल्म और सख्ती पहले से बढ़ गई है, बिलकुल गलत है और टिक नहीं सकता। असलियत यह है कि इसे मैं एक अच्छी निशानी समझता हूं कि हरिजन खुद जाग उठे हैं। उनके जाग उठने के कारण हैं, सुधारकों की बढ़ी हुई तादाद, उनकी कोशिशें और छुआछूत रूपी बुराई को मिटाने की उनकी बेसब्री। लेकिन जो तरक्की हुई है, उससे उन्हें सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। अभी उन्हें बहुत आगे जाना होगा। धारा सभाओं का और कानून का सहारा जरूरी है, लेकिन मैं मानता हूं कि असल काम वहां नहीं होगा। जैसा कि मैं पिछले दिनों हरिजन में लिख चुका हूं इस बुराई की जड़ तो पुराना रिवाज है, कानून नहीं। रस्म या रिवाज क़ानून से कहीं ज्यादा मजबूत होते हैं। और वे तभी मिटाये जा सकते हैं, जब आम लोग उनके बारे में अपनी राय बदलें।

जुदागाना चुनाव या पृथक मताधिकार असली तरक्की को रोकेगा। हमें इस डरावने सपने का ख्याल छोड़ना होगा। अगर हम सारी हिन्दू क़ौम को, जिसमें हरिजन भी शामिल हैं, मिटाना नहीं चाहते, तो हमें यह करना ही होगा। सच्ची नुमाइन्दगी जुदागाना चुनाव से कभी हो नहीं सकती और जिन्हें हरिजनों में कोई दिलचस्पी ही नहीं, वे हरिजनों को सवर्ण हिन्दुओं से जुदा करने का विरोध क्यों करें?

सवाल—किसी कौम या फिरके के मजहब का अलग मताधिकार के साथ कोई ताल्लुक़ नहीं। बाज फिरके ऐसे हैं, जिनका धर्म तो एक है, मगर चुनाव अलग-अलग होते हैं। मसलन् अंग्रेज, एंग्लो-इंडियन और हिन्दुस्तानी ईसाई। कांग्रेस ने या किसी ने भी इनके खिलाफ कुछ नहीं कहा। तो फिर धर्म या मजहब की बिना पर कांग्रेस अछूतों के जुदागाना चुनाव की मुखालफत क्यों करती है?

जवाब—यह सवाल तो सिर्फ उन्हीं के दिमाग में उठता है, जो अलग मताधिकार को अच्छी चीज समझते हैं। कांग्रेस की राय इसके हक में नहीं। अंग्रेजों, एंग्लो-इंडियनों और हिन्दुस्तानी ईसाइयों की मिसाल इस मामले में लागू नहीं होती, और वह घातक या कातिल भी है। ऐसी जुदाई तो अलग मताधिकार की बुराई को साफ ही जाहिर करती है, और वह साम्राज्यवाद के बयान से बाहर जुल्म की एक मिसाल है, उसमें मगरूरी अपनी हद को पहुंच गयी है। अंग्रेजों को इसलिये अलग किया गया कि वे हुकूमत करने वाली कौम के लोग हैं और एंग्लो-इंडियनों को हिन्दुस्तानी ईसाइयों से इसलिये जुदा किया गया कि वे अध गोरे हैं।

सवाल—हिन्दुओं और सिक्खों में तो कोई सामाजिक भेद नहीं। एक ही घर में एक आदमी सिख है और दूसरा हिन्दू। इनमें आपस में खान-पान और

ब्याह-शादी भी होती है। मगर इन सिक्खों को अलग मताधिकार का हक मिला है और कांग्रेस ने उस पर कोई उज्र नहीं किया। अछूतों और सवर्ण हिन्दुओं में बहुत ज्यादा सामाजिक भेद है, मुसलमानों से भी ज्यादा, तो फिर क्या वजह है कि जो हक हम मुसलमानों और सिक्खों को मिल हैं, वे अछूतों को न मिलें?

जवाब—अगर बात कांग्रेस के बस की होती, तो वह आज ही अलग मताधिकार को खत्म कर देती। इस काम को वह तलवार की ताकत के जरिये नहीं, बल्कि समझा-बुझाकर ही करती। यह बिलकुल सही है कि सवर्ण हिन्दुओं और सिक्खों में वह फरक नहीं, जो उनमें और अछूतों में है। सवर्ण हिन्दुओं पर और हिन्दू धर्म पर यह एक बहुत बड़ा धब्बा है। लेकिन इसका इलाज यह नहीं कि एक बुरी रस्म को मिटाने के लिये दूसरा बुरा काम किया जाय। हिन्दू धर्म में इस तरह का सुधार किया जाना चाहिये, जिससे जुदागाना चुनाव की मांग अपनी मौत खुद मर जाय। इस बीच हिन्दू कौम से यह उम्मीद नहीं की जानी चाहिये कि वह हरिजनों को अपने से अलग करके खुदकशी या आत्महत्या करले।

पंचगनी, १६ जुलाई, १६४६ ई०

छूतछात की भावना अहिंसा धर्म में घातक

अस्पृश्यता की रूढ़ि में धर्म नहीं, बल्कि अधर्म है।

अगर आत्मा एक है, ईश्वर एक ही है, तो अछूत कोई नहीं।

जो उस छूतछात को पाप मानता है, वह उसका प्रायश्चित करे और ज्यादा कुछ नहीं, तो प्रायश्चित के तौर पर ही धर्म समझकर समझदार हिन्दू हरएक अछूत माने जाने वाले भाई-बहन को अपनायें। प्यार से और सेवा-भाव से उसे छूयें। छूकर अपने को पवित्र हुआ मानें, उसके दुख दूर करें .....उसमें जड़ जमाकर बैठे हुये दोषों को धैर्यपूर्वक दूर करने में मदद करें।

कुछ लोग तो छुआछूत का पालन करते-करते पृथ्वी के लिये बोझ रूप बन गये हैं।

छुआछूत मिटाने वाला ढेडों और भंगियों को अपनाकर ही संतोष न मानेगा, वह तब तक शांत होगा ही नहीं, जब तक जीव मात्र को अपने में देखने न लगेगा और अपने को जीव मात्र में होम न देगा। छुआछूत मिटाने का मतलब है, सारी दुनिया के साथ मित्रता रखना, उसके सेवक बनना।

जीव मात्र के साथ का भेद मिटाना ही छुआछूत मिटाना है।

जाति-भेद से हिन्दू धर्म को नुकसान पहुंचा है ...उसमें पाई जाने वाली ऊंच-नीच की और छूतछात की भावना अहिंसा धर्म की घातक है ।

मालूम होता है कि वर्ण-व्यवस्था सिर्फ धन्धों या पेशों के अधीन है, इसलिये वर्ण नीति का पालन करने वाला मां-बाप के पेशे से अपना गुजारा करके बाकी का वक्त सही-सही ज्ञान यानो उसे बढ़ाने में खर्च करे ।

हम सब गुलाम हैं.... अस्पृश्य हैं

जाति-पांत के बारे में कई बार कह चुका हूं कि आधुनिक अर्थ में मैं जाति-पांत नहीं मानता। वह विजातीय चीज है और प्रकृति में विघ्नरूप है। इस तरह मैं मनुष्य मनुष्य के बीच की असमानताओं को भी नहीं मानता। हम सब सम्पूर्णतया सामान हैं, पर समानता आत्माओं की है, शरीरों की नहीं। इसलिये यह एक मानसिक अवस्था है। समानता का विचार करने और जोर देकर उसे प्रकट करने की आवश्यकता रहती है, क्योंकि इस भौतिक जगत में हम बड़ी-बड़ी असमानतायें देखते हैं। इस बाह्य असमानता के आभास में हमें समानता सिद्ध करनी है। कोई भी आदमी किसी भी दूसरे आदमी की अपेक्षा अपने को उच्च माने, तो वह ईश्वर और मनुष्य के समक्ष पाप है। इस प्रकार जाति-पांत जिस हद तक दरजे के भेद का सूचक है, बुरी चीज है।

परन्तु वर्ण मैं अवश्य मानता हूं। वर्ण की रचना वंश परम्परागत धन्धों की बुनियाद पर है। मनुष्य के चार सर्वव्यापी धन्धों—ज्ञान देना, आर्त की रक्षा करना, कृषि और वाणिज्य और शारीरिक श्रम द्वारा सेवा ....की समुचित व्यवस्था करने के लिये चार वर्णों का निर्माण हुआ है। ये धन्धे समस्त मानव जाति के लिये एक से हैं। परन्तु हिन्दू धर्म ने इन्हें जीवन-धर्म के रूप में स्वीकार करके सामाजिक संबंध और आचार-व्यवहार के नियमन के लिये इनका उपयोग किया है। जब हिन्दू जड़ता के शिकार हो गये तब वर्ण के दुरुपयोग के फलस्वरूप बेशुमार जातियां बन गईं और रोटी-बेटी व्यवहार के अनावश्यक बन्धन पैदा हुये। वर्ण धर्म का इन बंधनों से कोई संबंध नहीं है, जुदा-जुदा वर्णों के लोग परस्पर रोटी-बेटी का व्यवहार रख सकते हैं। शील और आरोग्य की खातिर ये बंधन आवश्यक हो सकते हैं। परन्तु जो ब्राह्मण शूद्र कन्या को या शूद्र ब्राह्मण कन्या को व्याहता है वह वर्ण धर्म का लोप नहीं करता।

अस्पृश्यों का एक जुदा वर्ग है और हिन्दू धर्म के सिर पर यह कलंक का टीका है। जातियां विघ्न रूप हैं, पाप रूप नहीं। अस्पृश्यता तो पाप है और भयंकर अपराध है और यदि हिन्दू धर्म ने इस सर्प का समय रहते नाश नहीं किया, तो यह हिन्दू धर्म को ही खा जायेगा। अस्पृश्य अब हिन्दू धर्म के बाहर कभी गिने ही नहीं जाने चाहियें। वे हिन्दू समाज के प्रतिष्ठित सदस्य माने जाने चाहिएं, और उनके पेशे के अनुसार, वे जिस वर्ण के योग्य हों, उस वर्ण के वे माने जाने चाहिएं।

वर्ण की मेरी व्याख्यानुसार तो आज हिन्दू धर्म में वर्ण धर्म का पालन होता ही नहीं। ब्राह्मण नामधारियों ने विद्या पढ़ाना छोड़ दिया है, वे दूसरे अनेक धन्धे करने लगे हैं, यही बात कमोबेश दूसरे वर्णों के लिये भी सच है। वस्तुतः विदेशियों के जुये के नीचे होने की वजह से हम सब गुलाम हैं और इस कारण शूद्रों से भी हल्के .....पश्चिम के लिये अस्पृश्य हैं।

सवर्ण हिन्दू

ब्राह्मण और शूद्र

..देश में अछूतपन दूर करने का आन्दोलन शुरू हुआ, उसके बहुत पहले से ब्राह्मणों के खिलाफ हलचल शुरू हो गई थी, और कई साल से चल रही है। इस आन्दोलन को चलाने वाले अखबारों के सिवा और कहीं भी मैंने ब्राह्मणपन के खिलाफ हिंसक या अहिंसक हमले हुये देखे नहीं। हरिजन सेवक संघ का ऐसे आक्षेपों के साथ कोई सरोकार नहीं।

..अछूतपन का जड़ मूल से मिटना, मेरी समझ से, ब्राह्मणपन के यानी हिन्दू धर्म के फिर से जिन्दा होने की अचूक कसौटी है। जैसे-जैसे में हिन्दू धर्म-शास्त्रों का ज्यादा अध्ययन करता जाता हूं, वैसे-वैसे मेरा यह यकीन बढ़ता जाता है कि अछूतपन हिन्दू धर्म पर बड़े से बड़ा कलंक है। इस यकीन की बहुत से विद्वान ब्राह्मणों ने ताईद की है। इन विद्वानों का इसमें कुछ भी स्वार्थ नहीं है। वे सचाई की खोज करने के लिये जूझने वाले हैं। उन्हें इसमें से कुछ मिलता नहीं।

..मैं चाहता हूं कि आज तमाम हिन्दू स्वेच्छा से शूद्र नाम धारण कर लें। ब्राह्मणपन में रहने वाली सच्चाई का दुनिया को दर्शन कराने और वर्ण धर्म का सच्चा स्वरूप जिन्दा करने का यह एक ही रास्ता है। सब हिन्दुओं के शूद्र माने जाने से ज्ञान, शक्ति और सम्पत्ति मिट नहीं जायगी, बल्कि वे सब एक सम्प्रदाय की सेवा में काम आयेंगी। कुछ भी हो, अछूतपन के खिलाफ लड़ाई चलने में और इस लड़ाई में अपने को होम देने में मेरी महत्वाकांक्षा सारे मनुष्य समाज की काया-पलट देखने की है। यह निरा सपना हो सकता है, सीप में चांदी देखने जैसा कोरा भ्रम भी हो सकता है। जब तक यह सपना चल रहा है, तब तक मेरे मन में वह खाली भ्रम नहीं है। और रोमां रोलां के शब्द में कहूं, तो जीत ध्येय तक पहुंचने में नहीं, बल्कि उसके लिये अथक साधना करने में है।

हरिजन बन्धु, २६ अप्रैल, १९३३ ई०

ब्राह्मण और पंचम

बिलकुल संयोगवश मुझे अपने पंचम भाइयों से अभिनन्दन-पत्र प्राप्त करने की प्रसन्नता हुई। अभिनन्दन-पत्र में उन लोगों ने कहा है कि हम लोगों के लिये पीने के पानी का सुभीता नहीं है, जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थों का सुभीता नहीं है और हम लोग जमीन खरीद या रख नहीं सकते। उन लोगों के लिये न्यायालयों तक पहुंचना भी कठिन है। सम्भवतः उनके न्यायालयों तक न पहुंच सकने का कारण उनका भय है, लेकिन अवश्य ही वह भय स्वयं उनका नहीं है अर्थात् दूसरों के द्वारा उत्पन्न किया हुआ है। तब इन सब बातों का उत्तरदायित्व किस पर है? क्या हम लोग यह चाहते हैं कि ये सब बातें

स्थायी रूप से बनी रहें? क्या यह हिन्दुत्व का कोई अंग है? यह मैं नहीं जानता। अब मुझे इस बात का ज्ञान प्राप्त करना है कि वास्तव में हिन्दुत्व क्या है? भारत के बाहर रह कर मैंने यही समझा कि सच्चे हिन्दू धर्म का यह कोई अंग नहीं है कि जिन लोगों को हम अस्पृश्य कहें उन्हें भी वह अपने अन्तर्गत ही रखे। यदि मेरे सामने कोई यह बात प्रमाणित कर दे कि यह हिन्दू धर्म का एक आवश्यक अंग है, तो मैं खुले आम कह दूंगा कि मैं स्वयं हिन्दू धर्म का द्रोही और विरोधी हूं।

क्या मायावरम् के ब्राह्मणों का पड़िया लोगों के संबंध में समभाव है? क्या वे ब्राह्मण मुझे बतला देंगे कि उनमें समभाव या समदर्शिता है और यदि है, तो क्या और लोग भी उनका अनुकरण करेंगे? यदि वे ब्राह्मण यह भी कह दें कि हम तो समभाव रखने के लिये तैयार हैं, पर और लोग हमारा अनुकरण न करेंगे तो भी जब तक मैं हिन्दू धर्म के संबंध में अपने भावों या विचारों को दोहरा न लूं तब तक मैं उन पर विश्वास नहीं कर सकता। यदि ब्राह्मण लोग यह समझते हों कि अपनी तपस्या तथा उच्च कुल में जन्म ग्रहण करने के कारण हम लोग उच्च हैं, तो उन्हें अभी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है और देश को नष्ट तथा दुर्दशा-ग्रस्त करने वाले भी वे ही हैं।

मायावरम २६ मई, १९१५ ई०

हरिजनों और सवर्णों का ब्याह

अगर कोई पढ़ी-लिखी हरिजन लड़की किसी सवर्ण की साथ शादी करे, तो दोनों को हरिजन सेवा का इकरार करना ही चाहिये। ऐसा ब्याह मनमानी मौज उड़ाने के लिये नहीं हो सकता। मैं तो ऐसा ब्याह कर ही नहीं सकता। अच्छे इरादे से किये हुए ब्याह का भी नतीजा बुरा निकल सकता है। मगर इस पर हमारा कोई बस नहीं। एक भी हरिजन लड़की किसी अच्छे सवर्ण से शादी करे तो इससे हरिजन समाज और सवर्ण समाज का फायदा ही है। वे एक अच्छी मिसाल पेश करेंगे। हरिजन लड़की जहां जाय वहां अपनी खुशबू फैलाये, तो ऐसी दूसरी शादियां होने में मदद मिल सकती है। छुआछूत का डर भाग जायगा। समाज समझने लगेगा कि इस तरह की शादी करने में कोई बुराई नहीं है। ऐसी शादी से जो बच्चे पैदा होंगे, वे अगर अच्छे निकले तो, छुआछूत को दूर करने में मदद करेंगे। हर एक सुधार आहिस्ता-आहिस्ता ही होता है। धीमी गति रफ्तार से बेसब्र होना सुधार की गति रफ्तार के कानून को न समझने की निशानी है।

सवर्ण लड़की हरिजन से शादी करे, यह करने लायक चीज है। यह ज्यादा अच्छा है, ऐसा कहते हुए मुझे हिचकिचाहट होती है। ऐसा कहने में यह बात आ जाती है कि औरतें मर्दों से नीची हैं। यह तो मानना पड़ेगा कि

आज औरतें आमतौर पर नीची मानी जाती हैं। इस वजह से मैं कबूल कर सकता हूं कि सवर्ण लड़की का हरिजन से शादी करना हरिजन लड़की के सवर्ण से शादी करने से ज्यादा अच्छा है। मुझसे बन पड़े तो अपने असर की तमाम सवर्ण लड़कियों को अच्छे हरिजनों से शादी करने को ललचाऊं। मैं तजरबे से जानता हूं कि यह कितना मुश्किल है। पुरानी नापसन्दगी निकालनी कठिन होती है। यह नापसन्दगी ऐसी भी नहीं कि हंस कर टाल दी जा सके। यह तो धीरज से ही दूर हो सकती है। और अगर सवर्ण लड़की यह मान ले कि हरिजन से शादी करने से ही सारा काम पूरा हो जाता है और पीछे मनमानी मौज शौक में फंस जाय, तो उसका घर और घाट दोनों बिगड़े। हरेक इन्सान में सेवा भाव कितना है, आखिर इसी पर तो ऐसी शादियों की कसौटी होगी। सेवा भाव के आधार पर हुई हरेक शादी से हरिजन सवर्ण ब्याह की तरफ तिरस्कार हिकारत कम होगा। आखिर में एक ही जाति रह जायगी, जिसका खूबसूरत नाम होगा भंगी, यानी सुधारक—हरेक किस्म की गन्दगी दूर करने वाला। हम सब चाहते हैं कि वह शुभ दिन जल्द आवे।

सवाल पूछने वाले को यह समझना चाहिये कि मेरी अच्छी से अच्छी ख्वाहिश भी, ख्वाहिश करते ही पूरी नहीं हो सकती। अपना इरादा ज़ाहिर करने के बाद में अभी तक एक भी हरिजन लड़की की शादी किसी सवर्ण से करा नहीं सका। एक सवर्ण लड़की की एक हरिजन से शादी कराने का मौका मेरे हाथ आया है सही। ईश्वर की मरज़ी होगी तो वह काम पूरा होगा।

छुआछूत और क़ौमी सवाल

[सुप्रसिद्ध अमेरिकन पत्रकार श्री लुई फिशर और गांधी जी के बीच निम्न वार्तालाप हुआ। गांधी जी ने यह बात कह कर श्री फिशर को चौंका दिया कि हिन्दू-मुसलिम समस्या आखिर तो छुआछूत के सवाल का ही एक अंग है। जब हिन्दू धर्म पूरी तरह सुधर जायगा और छुआछूत की आखिरी निशानी भी मिटा देगा, तब कोई क़ौमी सवाल नहीं रह जायगा।]

श्री फिशर ने कहा, "मैंने सुना है कि अगरचे चुनाव में कांग्रेसी हरिजनों की ग़ैर-कांग्रेसी हरिजनों के खिलाफ जीत हुई है, मगर ऐसा हिन्दू वोटों की मदद से ही हो सका है।"

गांधी जी ने जवाब दिया—सवर्ण हिन्दुओं को प्राथमिक चुनाव में जीते हुए हरिजन उम्मीदवारों में से कुछ को चुनने का हक देने के सिवा मुश्तरका चुनाव का और क्या मकसद हो सकता था? पहले चुनावों में हारा हुआ कोई भी उम्मीदवार मुश्तरका चुनाव के लिये खड़ा नहीं हो सकता था।

इसके अलावा यह कहना सही नहीं है, जैसा कि दावा किया गया है कि अधिकांश कांग्रेसी हरिजन ग़ैर-कांग्रेसी हरिजन उम्मीदवारों के खिलाफ सवर्ण हिन्दुओं के वोट के बल पर ही जीत सके। मद्रास में प्रायः सबके सब ग़ैर-कांग्रेसी हरिजनों को जहां-जहां भी वे पहले चुनावों के लिये खड़े हुए थे, मुंह की खानी पड़ी। ज्यादातर कांग्रेसी हरिजन बिना विरोध के चुन लिये गये।

श्री फिशर ने कहा, "उनमें से कुछ जुदागाना चुनाव (पृथक निर्वाचन) चाहते हैं?"

हां, लेकिन हमने इसका विरोध किया है। जुदागाना चुनाव के जरिये वे अपने आपको हिन्दू धर्म के दायरे से बाहर रखते हैं, और अमंगलकारी बदशकुन वाले वर्ण-भेद जारी रखते हैं।

यह सच है। मगर वे कह सकते हैं कि हिन्दुओं ने उन्हें किसी तरह अपने दायरे से पहले ही बाहर कर रखा है।

लेकिन आज तो हिन्दू अपने इस पाप का प्रायश्चित कर रहे हैं।

क्या उनका यह प्रायश्चित (पछतावा) काफी है?

मुझे यह कहते हुए दुःख है कि उनका प्रायश्चित अभी काफी नहीं हुआ है। अगर उन्होंने उचित प्रायश्चित किया होता, तो जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं आज छुआछूत और कौमी सवाल का नाम-निशान मिट गया होता।

हरिजनों की तकलीफ़

हरिजनों के सेवक प्रोफेसर रामचन्द्र राव ने अंग्रेजी में एक बयान भेजा है, जिससे पता चलता है कि दक्खिनी हिन्दुस्तान के जिस कृष्णा जिले में वे हरिजनों की सेवा का काम करते हैं, वहां हरिजनों को पानी की तकलीफ रहती है। अगरचे कानून उनके हक में है, तो भी सवर्ण यानी ऊंची जाति के हिन्दू हरिजनों को आम कुओं से पानी नहीं भरने देते। प्रोफेसर रामचन्द्र राव ने लोगों से मिन्नत की, मगर वे न माने। बाद में उन्होंने कानून की मदद ली। तब सवर्ण लोग कुछ ठंडे पड़े। यह सब तो वे कृष्णा जिले के कुछ गांवों में ही करवा सके हैं। शरम की बात तो यह है कि इतने वर्षों के बाद भी हरिजनों की ये मुसीबतें दूर नहीं हुई। इसीलिये कानून की मदद लेनी पड़ती है। अब तो कई सूबों में कांग्रेसी वजीरों के हाथ में हुकूमत की बागडोर है, इसलिये उम्मीद की जाती है कि हरिजनों की तकलीफें जल्दी ही दूर हो जायेंगी।

नई दिल्ली, १० अक्टूबर, १९४६ ई०

शिमले के बाल्मीकि

बाल्मीकि के मानी भंगी हैं, सो तो पाठक जानते ही होंगे। उनके रहने के घर बहुत ही खराब जगह में हैं। उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। राजकुमारी जी अमृतकौर ने मेहनत की है, लेकिन अकेली वे क्या कर सकती हैं। मैं तो वहां तक जा नहीं सका हूं। बादशाह खान, जो मेरे साथ रहते हैं, उनको जाने की विनती की थी। उनका अहवाल बताता है कि इन भाई-बहनों को बुरी तरह रखा जाता है। उन भाइयों में से कई मेरे पास आ गए थे। अपने दूसरे दुखों की कथा भी उन्होंने सुनाई। मेरा ख्याल है कि अगर उनकी रहने की हालत में दुरुस्ती हो जाय, तो बाकी सुधार हो ही जायगा। शिमला के लोगों का और म्युनिसिपैलिटी का धर्म है कि इस गन्दगी के बारे में जो हो सकता है, सो जल्दी ही करें। हम उतने ही शुद्ध हो सकते हैं, जितने हममें से छोटे से छोटे शूद्र हैं।

शिमला, १३ मई, १९४६ ई०

हरिजनों के लिए क्यों ?

एक पत्र के उत्तर में गांधी जी लिखते हैं :—

यह एक अजीब सवाल है। इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं कि सरकार हरिजनों पर कृपा करती है। कारण कुछ भी हो, अगर इस कृपा से वाकई उनका कोई खास फायदा होता है, तो इस चीज के लिये दुख नहीं होना चाहिये। सरकार की सारी कृपाएं ऐसी नहीं होती। मुझे लगता है कि इसमें सवर्ण कहे जाने वाले हिन्दुओं से उन्हें अलग कर देना ही सरकार का हेतु है। सरकार का यह हेतु सिद्ध होता, क्योंकि सवर्ण हिन्दू उसे इस बात का मौका देते हैं। अगर सवर्ण हिन्दू खुद दुराचार न करते, तो अवर्ण और सवर्ण का यह भेद मुमकिन ही न होता। हालांकि कांग्रेस इतने सालों से बराबर हरिजनों के लिये लड़ती आ रही है फिर भी क्या सवर्ण हिन्दू जनता ने अपने आचार-व्यवहार में कोई सुधार किया है ? अगर यह मानें कि काफी सुधार हुआ है, तो भी इस सवाल का जवाब तो नहीं ही रहेगा। विदेशी हुकूमत को खत्म करने की दृष्टि से कांग्रेस का प्रभाव बहुत ज्यादा है, लेकिन सामाजिक मामलों में उसका प्रभाव बहुत कम है। इसलिये विदेशी हुकूमत के साथ अपवित्र स्पर्द्धा में न पड़ कर सुधारकों के लिये जरूरी है कि जब तक छुआछूत का यह भूत पूरी तरह से दूर न हो जाय, तब तक हरिजनों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते रहें। जहां तक सवर्ण गरीबों का सवाल है, उनकी देखभाल करने वाले काफी लोग हैं। कुछ लोग तो उनके लिये इतना तक करते हैं कि उनके हाथ-पैर भी न हिलें और उन्हें सब कुछ मिल जाय।

बम्बई, १६ मार्च, १९४६ ई०

हरिजनों के हक़

मेरे पास कुछ ख़त आकर पड़े हैं। कुछ हरिजन भाई भी मुझसे मिलने आए थे। वे कहते हैं कि अब तो सारे हिन्दुस्तान की हुकूमत लोगों के हाथ में आ गई है, इसलिये हरिजनों की आबादी के हिसाब से उनके एक से ज्यादा मंत्री लिये जाने चाहिए। आबादी के ख्याल से केन्द्र या मरकज़ में उनके कम से कम तीन मंत्री तो होने ही चाहियें। दूसरे मुहकमों में भी इसी हिसाब से काम का बटवारा होना चाहिये। यह कहना ग़लत है कि हरिजनों में काफी लायक आदमी नहीं हैं। फिर, यह भी नहीं कि सब सूबों में लायक आदमी ही चुने जाते हों। सिफारिश से चुने गए लोगों की कई मिसालें दी जा सकती हैं।

मैं यह कहने को तैयार नहीं कि ऊपर जो कुछ कहा गया है सो सब सच ही है। ऐसे मामलों में मेरा मन दूसरे ही ढंग से काम करता है। आदमी अपने फ़र्ज़ या धर्म का मालिक है। फ़र्ज़ अदा करने से जो हक पैदा होता है वही सच्चा हक है। वही शोभा देता है और वही टिकता है। हरिजनों के अलावा भी बहुत से लायक आदमी हैं। अगर उन सबके दिल में अपना हक भोगने की इच्छा पैदा हो जाय, तो समाज में खलबली मच जाय। अपने धर्म का पालन करने की सहूलियत सब किस को है। सेवा का दायरा बहुत बड़ा है। मालिक तो कुछ ही लोग बन सकते हैं, और जो मालिक या सरदार बनते हैं, वे पिछड़ जाते हैं। मैं जानता हूं कि आम तौर पर लोग इस तरह नहीं चलते। हकों के लिये हाथा-पाई होती है, और बहुतों को नाउम्मीद होना पड़ता है।

मेरे अपने विचार बन चुके हैं। पचास साल से मैं उन पर अमल करता करवाता रहा हूं। इसलिये मुझे अपने निज के हक के लिये लड़ने में कोई दिलचस्पी नहीं रही। चुनांचे हरिजनों को मेरी यह सलाह है कि वे अपने धर्म का ही विचार करें। मैं जानता हूं कि जो अपने धर्म का पालन करता है, हक उसके पीछे दौड़े चले आते हैं।

नई दिल्ली, २७ अक्टूबर, १९४६ ई०

हरिजनों के लिए क्या कीजिएगा ?

एक भाई ने नीचे लिखा करुणाजनक, रहम पैदा करनेवाला ख़त भेजा है—

"छुआछूत दूर करने के बारे में लोगों ने हमारी बात जितनी अपनानी चाहिये, उतनी नहीं अपनाई। उसकी वजह या तो यह है कि यह काम सबसे ज्यादा मुश्किल है, या फिर हमारे काम करने के तरीक़े में कुछ फेर-फार करने की जरूरत है।

"हरिजन भंगी इतने गिरे हुए और इतने दबे हुए हैं कि उन्हें उठाने के लिये सवर्णों को और हुकूमत को बहुत कुछ करने की जरूरत है।

"काठियावाड़ के कई गांवों और शहरों में उनकी हालत कंगाल और करुणाजनक है। अक्सर उनकी तनख्वाह इतनी कम होती है कि पकाया हुआ, बचा हुआ, अच्छा या जूठा खाना उन्हें न मिले, तो वे जरूर भूखों मर जायं।

"उनके बदन पर कपड़ों की जगह पर चिथड़े होते हैं। उनके रहने के घर भी रोग और गन्दगी से भरे रहते हैं। कोई सहायक धंधा या रोजगार उन्हें मुश्किल से ही मिलता है। ऊंची जाति वाले उनके साथ कोई व्यवहार रखना ही नहीं चाहते। हरिजन भंगी खुद भी आलसी, अहदी, व्यसनी और पामर बन गए हैं। इन सब बुराइयों को मिटाने के लिये जबरदस्त कोशिश की जानी चाहिये।

"कार्यकर्ता भी इस ख्याल से परेशान रहते होंगे कि इस मुश्किल काम को कैसे आगे बढ़ाया जाय। मगर इस काम में तेजी लाने के लिये हमें क्रान्तिकारी या इन्किलाबी कदम उठाने की सख्त जरूरत है।

"आप हरिजन बन्धु में यह बताने की मेहरबानी करें कि हरिजनों के लिये पीने के पानी का, सहायक धंधों का और शिक्षा व संस्कार वगैरह का इन्तजाम करने के लिये हमें अपनी नीति और काम करने के तरीकों में क्या फेर-फार करने की जरूरत है।"

बात सच है। स्वतः लिखने वाले खुद एक हरिजन सेवक हैं। जब धर्म के नाम पर पाखंड चलता है, तब सुधार करना बहुत मुश्किल हो जाता है। जिसने सच को देख लिया है, वह खुद अपने आचरण या अमल से उसे बराबर प्रगट करता रहे, और साथ ही विरोधी की तरफ उदारता रखे, धीरज न छोड़े और अपना काम करता हुआ आनन्द में मगन रहे।

डोली-पालकी

गढ़वाल जिले में हिन्दू लोग इतने अनजान हैं कि वे हरिजन वरराजा दूल्हा को डोला-पालकी में या दूसरी किसी सवारी पर बैठ कर मन्दिरों, चौराहों या अपने को ऊंचा मानने वाले हिन्दुओं के मोहल्लों से नहीं जाने देते। अब तो ऐसा बुरा रिवाज बरदाश्त नहीं किया जाना चाहिये। एक भाई ने मुझे कानून का मसविदा भी भेजा है। जिसे पास करने पर शायद वे अनजान लोग समझ जायं। और ऐसा करना ही चाहिये। हर हालत में जब कभी ऐसा वरघोडा यानी बारात का जुलूस निकाला जाय, तो उसके साथ इन गरीब लोगों की हिफाजत के लिये एक पुलिस पार्टी

रहनी चाहिये। सरकार की तरफ से इश्तहार भी बांटे जाने चाहिये कि डोला पालकी या दूसरी किसी सवारी पर बैठने से किसी को रोका न जाय। रूकावट डालने डलवाने वालों को सजा दी जायगी।

नई दिल्ली, ६ अक्टूबर, १९४६ ई०

आख़िरी निदान और इलाज

सवर्ण हिन्दुओं के जरिये हरिजनों के उद्धार का काम कराने की नीति या पालिसी के लिये मैं जिम्मेदार हूं। उन्हें प्रायश्चित करना है। जरूरी काबिलियत के न होने से सब हिन्दू हरिजनों की सीधी सेवा चाहे न कर सकें, मगर पैसे देकर तो वे इस काम में मदद कर ही सकते हैं। मिसाल के तौर पर वे खुद चाहे पढ़ाने का काम न कर सकें, लेकिन हरिजन बच्चों को पढ़ाने के लिये काबिल शिक्षक तो जरूर रख सकते हैं। प्रायश्चित करने का यह एक तरीका है। हरिजन समाज में घुल-मिल कर उसकी तरक्की में वे मदद कर सकते हैं। क्या इस तरह के काम से कभी छुआछूत जड़ से मिट सकती है? ऐसी शंका करने वाले टीकाकार भी हमारे यहां मौजूद हैं। किसी वक्त मुझे भी यह शंका थी। लेकिन बाद में मैं अपनी गलती समझ गया। इसके लिये मैं स्वर्गीय श्री देवधर का अहसानमन्द हूं, जिनके काम को एक वक्त में शक की नजर से देखता था, और जिनकी मैंने टीका भी की थी। लेकिन साल भर के तजरबे ने मेरा सारा घमंड मिटा दिया और मुझे नम्रता सिखाई। मैंने यह महसूस किया कि अगर मैं सवर्ण हिन्दुओं का मन पलटने के लिये सिर्फ उनमें प्रचार कार्य या प्रोपेगेंडा ही करता रहता, तो उसमें मैं कयामत तक भी कामयाब न होता, तो उस दरमियान हरिजन उद्धार का असल काम जैसा का तैसा ही पड़ा रहता। अपने बाद के तजरबे से मुझे यह विश्वास हो गया है कि अगर हरिजनों में काम करने के लिये जरूरी चरित्र-बल, श्रद्धा एतकाद और त्याग की भावना वाले कार्यकर्ता काफी तादाद में मिल जायं, तो सवर्ण हिन्दुओं को बिल्कुल अकेले छोड़ कर भी छुआछूत को जड़ मूल से मिटाया जा सकता है। लेकिन क्या हरिजन सेवक संघ के मेम्बर ईमानदारी से यह दावा कर सकते हैं कि उन्होंने अपने दिलों से छुआछूत का नाम मिटा दिया है? क्या उनकी अपनी कथनी और करनी में पूरा-पूरा मेल पाया जाता है?

· · आप समझेंगे कि हरिजन सेवक सवर्ण हिन्दुओं के दिलों को क्यों नहीं हिला पाते। इसकी वजह यह है कि कार्यकर्ताओं के दिलों में न तो श्रद्धा की यह आग है और न सेवा की कभी न मिटने वाली वह भूख है, जो लोगों पर असर डालने वाली अपील की पहली शर्त है। मुट्ठी भर सवर्ण हिन्दू भी सच्ची मिशनरी स्पिरिट से इस क्षेत्र में कूद पड़ें, तो वे सारे हिन्दू समाज को बदल सकते हैं। लेकिन नामधारी सेवकों की पूरी फौज भी उन पर कोई

असर नहीं डाल सकती। इस तरह की सेवा के लिये मालवीय जी जैसे आदमी चाहिए। मैं तो अपनी बहन का भी मन पलट न सका। जब मैं खुद इस काम में सफल न हो सका, तो दूसरों को क्या दोष दूं। यह इस बात का सबूत है कि यह रास्ता कितना मुश्किल और कटीला है। फिर भी अगर आप यह मानते हैं कि आप में जरूरी काबिलियत है तो आप अपनी-अपनी जगहों में यह प्रयोग कर सकते हैं।

···किसी हद तक इस नाकामयाबी की यह वजह है कि हरिजन सेवक संघ के ज्यादातर मेम्बरों या सेवा या मिशन में राजनीतिक ध्येय (सियासी मकसद) भी मिला रहता है। अगर सचमुच ही उन्हें सवर्ण हिन्दुओं के दिलों में जगह करनी हो, तो उन्हें शुद्ध धार्मिक भावना से ओतप्रोत (सराबोर) होना चाहिये। इस तरह के काम के लिये कोरी बहस से कुछ हासिल नहीं होगा। आज तो हम में काहिली, लापरवाही और मानसिक कठोरता बुरी तरह पैठ गई है।

····दूसरा तरीका ज्यादा डरावना और जोखिम से भरा हुआ है। वह उपवास (फाके) का तरीका है। जब कभी वह मुझे ग़लत और नैतिक दृष्टि से ग़ैरवाजिब मालूम हुआ, मैंने खुद उपवास की निन्दा की है। लेकिन जब उपवास के लिये नैतिकता का तकाजा हो, उस वक्त उससे पीछे हटना अपने कर्तव्य या फर्ज से मुंह मोड़ना है। ऐसा उपवास खालिस सचाई और अहिंसा के आधार पर किया जाना चाहिये।

पंचगनी, २० जुलाई, १६४६ ई०

अछूतपन का नाश कैसे हो ?

मद्रास के एक हरिजन भाई के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए गांधी जी ने लिखा :—

यह कहना अच्छा लगता है कि हरिजनों के लिये अलग बस्तियों का न रहना अछूतपन के नाश की निशानी होगी। आज भी, जहां तक मुझे इल्म है, ऐसा कोई आम कानून नहीं है, जिससे हरिजनों को अपने लिये बनी बस्तियों में ही रहना पड़ता हो। दुष्ट रिवाज ने ऐसी हालत पैदा कर रखी है। यह रिवाज नाबूद हो रहा है, लेकिन धीरे-धीरे। सबका धर्म है कि वे इस रिवाज को तोड़ें। यह लोगों के दिलों को हिलाने की बात है। ऐसा काम बड़ी तपश्चर्या से ही हो सकता है। तुलसीदास जी कहते हैं :

> तप बल रचइ प्रपंच विधाता।
> तप बल विष्णु सकल जग त्राता।।

तप अधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाइ तप अस जिय जानी॥

जब कोई ऐसी ताकत रखनेवाला पैदा होगा, तब काम आसान हो जायगा। धर्म बच जायगा।

नई दिल्ली, ५ अक्टूबर, १९४६ ई०

आन्ध्र में जाग्रति

गन्तूर में सरकार की ओर से दमन की खूब सशस्त्र तैयारियां हो रही हैं। मेरे ख्याल में तो सरकार को दमन के इन सब उपायों से काम लेने का पूरा हक है। उसे तो यह भी अधिकार है कि यदि उसको कहीं कर देना बन्द होने की भीति हो तो वह साधारण कानूनों को भी स्थगित करदे। हां, यह तो सत्य ही है कि कोई भी समझदार सरकार लोकमत को यहां तक तो कभी क्षुब्ध नहीं करेगी कि जनता कर देने से भी इन्कार करने लग जाय। किन्तु हमें ऐसी आशा न करनी चाहिये कि जो सरकार लोकमत की इतनी अवमानना करती है वह बगैर कठिन प्रयत्न किये ही नष्ट कर दी जा सकेगी। वह कम से कम अपने कर लेने का बन्दोबस्त तो अवश्य करेगी। और कर न देने वाली जनता की जमीन को वह जो पतित जातियों को दे देने की आयोजना कर रही है उसमें भी उसे दोष देने लायक कोई बात नहीं दिखाई देती। यह तजवीज तो दोनों पक्षों को ठीक मालूम होनी चाहिये। असहयोगियों ने तो अहिंसा का व्रत ही धारण कर लिया है। उन्होंने तो अपने ध्येय की सिद्धि के लिये अपने सर्वस्व तक का त्याग करने पर कमर कस ली है। अतः वे तो अपनी जायदाद खुशी-खुशी से नीलाम होने देंगे। और विपक्ष में सरकार, यदि कर पावे, तो इस कर न देने की हलचल को नष्ट-भ्रष्ट कर देने का तथा कर वसूल करने के लिये हर तरह के उद्योग करने का प्रयत्न अवश्य करेगी। जब्त की गई जमीनें अछूत जाति को दे दी जाने और उनके खरीदे जाने का प्रस्ताव है तो एक आदर्श बात। इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है कि जिन लोगों को हम बुरी स्थिति से उठा कर उन्नत बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, ये जब्त की गई जमीनें कुछ समय के लिये उन्हीं के कब्जे में रहें।

मैं कुछ समय के लिये इस लिये कह रहा हूं कि उन जमीनों पर जिनका अधिकार है उनको अपने अंगीकृत कार्य में पूरा विश्वास होना चाहिये कि हर हालत में हमें स्वराज्य लेना है। और स्वराज्य मिलने पर उन्हें फिर अपना पद सम्मान से भूषित करके सौंप दिया जायगा और अगर पुराने मालिकों को उनकी जमीन फिर लौटा दी गई तो इससे उन पतित जातियों को, जिनका कि सरकार इस समय शतरंज की प्यादियों का सा उपयोग मात्र कर रही है, कुछ भी बुरा मालूम न होगा। क्योंकि स्वराज्य होते ही पहले उनको आबाद और सुखी तथा संतुष्ट करना सरकार का प्रथम कर्तव्य होगा।

सरकार जो दमन की नई योजनायें बना रही है उसके लिये इतना ही कहना काफी होगा। किन्तु इन उपायों के करने में उसे जो डर और घबराहट मालूम हो रही है यह उसके दिल के पाप का ही दृश्य स्वरूप है। कर वसूल करने के लिये उसे अपनी लोकप्रियता पर तो जरा भी तो विश्वास नहीं। इसके लिये तो उसे संगीन की नोक तथा ऐसे ही दूसरे उपायों का आश्रय लेना पड़ता है। वह लोकमान्य नेताओं को गिरफ्तार कर रही है और इस प्रकार लोगों को हिंसा कांड के लिये भड़का रही है, जिससे उसे अपने इन खूनी उपायों के समर्थन करने का मौका मिले।

और इसी में आन्ध्र की परीक्षा है। वे अभी तक तो बड़ी बहादुरी से काम करते आये हैं। त्याग भी उन्होंने खूब किया है। उनके चुने-चुने सब नेता जेल चले गये हैं। उनके मवेशी भी उनसे छीन लिये गये हैं। किन्तु अब भी वे शान्त हैं, पर सबसे बुरा दृश्य तो अभी देखना ही बाकी है। जब सरकार की फौज उन पर गोलियों की बौछार शुरू करेगी तब वे उसे कैसे झेलेंगे? धैर्य और हर्ष के साथ अपनी बढ़ी हुई छातियों पर, न कि कायरों की तरह अनिच्छा से अपनी पीठ पर और यह भी प्रतिहिंसा की अथवा रोष की छाया तक अपने दिल में न आने देते हुये। उन्हें चाहियें कि वे अपनी थालियों, लोटे आदि खुशी से ले जाने दें और खुद द्रौपदी और प्रहलाद की तरह उस परमात्मा की प्रार्थना करते रहें और उसके प्रति अपनी श्रद्धा को अटल सिद्ध करते रहें।

कर न देना हमारा स्वत्व है। इसका उद्देश्य यह नहीं कि उससे असहयोगी श्रीमान हो जायं। बल्कि उसका उद्देश्य तो इच्छापूर्वक स्वयं गरीब बनकर देश को धनवान करना है। और वे इस अधिकार के पात्र तो आत्म-शुद्धि करने से ही हो सकते हैं। यह सौभाग्य पाने की पात्रता तो विदेशी कपड़ा छोड़कर हाथ से कती बुनी खादी पहनने से और अस्पृश्यता का धब्बा धोकर पतित भाई को अनिच्छा से नहीं छूना चाहिये। उसे तो प्रेम से अपना कर आलिंगन देना चाहिये और उसकी सेवा करनी चाहिये, और वह भी उसके प्रति अपने पिछले व्यवहार के हृदय से प्रायश्चित करते हुये, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि हम सरकार से उसके द्वारा अपने ऊपर किये गये अन्याचारों के लिये चाहते हैं। आवश्यक कर्तव्य का अनिच्छापूर्वक पालन करने से परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता। हमें तो अपने हृदय में ही पूरा परिवर्तन करना चाहिये। हमें उनके साथ पाठशालाओं में सम्मिलित होना चाहिये और सार्वजनिक स्थानों में भी उन्हें भाग लेने देना चाहिये। उनकी रुग्णावस्था में हमें अपने भाई की तरह उनकी सेवा करनी चाहिये। हमें उनके खिलाफ अपने धार्मिक ग्रंथों की दुहाई न देनी चाहिये। जिन प्राचीन ग्रंथों के रचयिता का ठीक-ठीक पता न हो तथा जिनका अर्थ पतित जातियों के मनुष्योचित स्वत्वों के खिलाफ लगाया जा सकता हो, उन सब का संशोधन कर डालना चाहिये। ऐसी प्रथाओं को भी प्रसन्नता-पूर्वक उठा देना चाहिये जो युक्तियुक्त न्याय और मानवी हृदय के स्वाभाविक

धर्म के खिलाफ हों। हमें किसी भी कुप्रथा का इतना गुलाम न बन जाना चाहिये कि आखिर को जब हमें किसी दबाव के कारण अथवा अनिवार्य प्रसंग के उपस्थित होने पर उसे छोड़ने के लिये मजबूर होना पड़े तभी एक कृपण की तरह, अपनी बुरी कमाई के धन को लाचार होकर छोड़ें. फिर चाहे वह अज्ञानपूर्वक हो या किसी अन्य भ्रम-मूलक विचार से हो।

अस्पृश्यता के सम्बन्ध में मुझे यहां इतना इसलिये लिखना पड़ा कि मुझे आपके वहां की महासभा समिति के अस्पृश्यता विषयक आश्वासनों पर विश्वास न रखना चाहिये, इस आशय के कई तार मिले हैं। वे मुझे कह रहे हैं कि आन्ध्र अभी अस्पृश्यता को छोड़ने के लिये तैयार नहीं है। मैं वहां के नेताओं से यह आग्रह करता हूं कि आप इस बात का पूरा ख्याल रखें। महासभा की आज्ञानुसार आपके कर्तव्य में जरा भी गलती न रहने पावे। उसके बताये हुये सीधे रास्ते को जरा भी छोड़ने से हम अपने स्वीकृत कार्य में इतनी भयंकर हानि पहुंचावेंगे कि जिसे हम फिर कभी सुधार ही नहीं सकेंगे। अत्यन्त पवित्र बलिदान ही परमात्मा को प्रसन्न कर सकता है। ईसाई धर्म तथा इस्लाम के साथ-साथ हिन्दू धर्म की भी परीक्षा का यह समय है। हिन्दू लोग अपने धैर्य और उपनिषदों के झूठे प्रतिनिधि कहे जायेंगे, क्योंकि वे तो मनुष्य की योग्यता को छोड़कर दूसरे के अधिकार को स्वीकार ही नहीं करते और जो बात हृदय तथा बुद्धि को युक्तियुक्त नजर नहीं आती उसे मानते ही नहीं।

आन्ध्र के लोग बहादुर और अपने प्राचीन गौरव के अभिमानी हैं। वे बड़े धार्मिक हैं और बलिदान की क्षमता रखते हैं। देश उनसे बहुत भारी उम्मीद रखता है और मुझे विश्वास है कि वे उसे अवश्य पूरा करेंगे। अगर उन शर्तों को पूरी तरह से पालन करने को वे अभी पूर्णतया तैयार न हों, तो जरा ठहर जाने में उनकी कुछ भी हानि न होगी। किन्तु अगर वे पूरी तरह तैयार न होने पर भी लड़ाई छोड़ बैठेंगे, तो अपना सर्वस्व खो बैठेंगे और देश को हानि पहुंचावेंगे।

२ फरवरी, १९२२ ई०

कहीं हम भूल न जायं

इस ख्याल से कि कहीं अपने भविष्य की चिन्ता में हम उन लोगों के तईं अपने फर्ज को भूल न जायं, जिनको हमने समाज के अन्दर हल्के से हल्का दर्जा दे रखा है, मैंने बादशाह खान से कहा था कि वे भंगी बस्ती में जाकर वहां की हालत देखें और मुझे बतायें। उन्होंने वहां जाकर जो कुछ देखा उससे उनको बहुत रंज हुआ और गुस्सा भी आया। मैं खुद वहां जाना पसंद करता, लेकिन कमनसीबी में अब इस लायक नहीं रह गया हूं कि पहाड़ी चढ़ाई चढ़ सकूं। इसलिये मैं खुद उनके पास इतनी दूर जाकर उन्हें देख नहीं सकता।

खास तौर पर भले-चंगे आदमियों का रिक्शा में बैठना मेरे नजदीक एक गुनाह है। मुझे तो मोटर में बैठना भी पसंद नहीं। मैं हमेशा अपने पैरों से काम लेना चाहता हूं, क्योंकि भगवान ने चलने-फिरने के लिये मुझको यही सवारी दी है। कल रात मैं पैदल चला था, लेकिन पहाड़ी रास्ता खतम ही नहीं होता था। अगर मेरा बस चलता, तो मैं यहां की हरिजन बस्ती में रहता। लेकिन आज यह मेरे लिये मुमकिन नहीं। मैंने पहले भी सुन रखा था और जो कुछ बादशाह खान ने कहा, उससे इस बात की ताईद होती है कि जिन बस्तियों में यहां हरिजनों को रहना पड़ता है, वे जानवरों के रहने लायक भी नहीं हैं, इन्सानों की तो बात ही क्या। यहां के कुछ हरिजन भाई आज सुबह मुझसे मिलने आये थे और वे अपनी मुसीबतों की रामकहानी मुझे सुना गये। शिमला वालों का यह फर्ज है कि वे यहां के हरिजनों की तकलीफों का पता लगायें और उन्हें दूर करें, करायें।

शिमला, १५ मई, १९४६ ई०

सवर्णों से अनुरोध

जिस प्रकार जरा सा संखिया समूचे दूध को विषैला बना देता है, उसी प्रकार अछूत प्रथा हिन्दू धर्म को विषैला कर रही है। दूध के गुण और संखिया के विषैलेपन को जानते हुये हम दूध के पास संखिया का एक कतरा भी नहीं आने देंगे। ठीक इसी प्रकार मैं हिन्दू धर्म और अछूत प्रथा का संबंध मानता हूं और एक क्षण के लिये भी इस प्रथा को जारी रखना घातक समझता हूं। एक हिन्दू होने के नाते से इस विषय में धैर्यशीलता को शनैःशनैः प्रगति करने के भाव को हानिकर समझता हूं। इसीलिये मैं निस्संकोच यह सलाह देता हूं कि ट्रावनकोर की रियासत एक क्षण में इस कलंक को मिटा दे। किसी दूषण को धैर्यपूर्वक सहना उसके और अपने साथ खिलवाड़ करना है। पर यह मैं जानता हूं कि किसी हिन्दू रियासत के लिये भी इस प्रकार का सुधार करना तब तक संभव नहीं, जब तक राज्य की हिन्दू प्रजा स्वयं इस विषय में आगे न बढ़े। इसलिये राज्य के प्रधान के स्थान पर ज्यादातर मैं इस सभा में उपस्थित प्रत्येक सवर्ण हिन्दू से ही निजी तौर पर अनुरोध करना चाहता हूं। अछूत कहलाने वाले भाइयों के प्रति हम आप बहुत समय से अपने कर्तव्य की अवहेलना करते आ रहे हैं। इस प्रकार हम लोग वास्तव में हिन्दू धर्म के झूठे प्रतिनिधि हैं। बिना लेशमात्र संकोच के मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि आप इस कुप्रथा के किसी भी समर्थक की कोई बात सुनने से इनकार कर दें। इस युग में किसी एक व्यक्ति या समुदाय का कोई कार्य छिपा नहीं रह सकता। जब तक हम लोगों के हृदय में इस कुप्रथा का भाव वर्तमान रहेगा, हमारी परीक्षा का परिणाम हमारे प्रतिकूल सिद्ध होता रहेगा और हमारी दुर्बलता प्रकट होती रहेगी। यह तो आपको स्मरण ही रखना चाहिये कि इस समय संसार के सभी धर्मों का रूप शीघ्रतापूर्वक परिवर्तित हो रहा है। ऐसी दशा में अगर हम शुतुर्मुर्ग की तरह अपना चेहरा छिपा कर सामने आने वाली मुसीबत को भुला देना चाहें, तो

इससे कोई लाभ नहीं होगा। होनी होकर रहेगी । इस विषय में मुझे किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान हलचल के युग में या तो अछूत प्रथा ही नष्ट हो जायेगी, या हिन्दू धर्म ही नष्ट हो जायगा।

किन्तु मैं इतना जानता हूं कि हिन्दू धर्म नहीं मर रहा है, न मरने वाला है, न इसकी कोई संभावना है, क्योंकि अछूत प्रथा एक मुर्दे के रूप में ही इस समय दिखाई पड़ रही है। वास्तव में यह प्रथा अपनी अन्तिम सांसें ले रही है और मुर्दा हो जाने पर भी जो उठने की निरर्थक चेष्टा कर रही है।

सुधारकों से

सुधार में सुधारक के प्राण हों

समाज को फिर से बनाने की योजना में मैंने अछूत जातियों का जिक्र नहीं किया, क्योंकि वर्ण धर्म में या हिन्दू धर्म में अछूतपन की गुंजाइश नहीं देखता। ये वर्ग दूसरे सबके साथ शूद्रों की जमात में मिल जायंगे। इस शूद्र वर्ग में से पवित्र या पाक होकर धीरे-धीरे दूसरे तीन वर्ण पैदा होंगे। इनके पेशे अलग-अलग होते हुये भी इनका दरजा बराबर होगा। ब्राह्मण बहुत थोड़े होंगे। क्षत्रियों का वर्ग इससे भी थोड़ा होगा और वे आजकल की तरह भाड़े के टट्टू या बेलगाम राजा न होंगे, बल्कि कौम के सच्चे रक्षक और हवलदार होंगे और राष्ट्र की सेवा में जान देने वाले होंगे। सबसे छोटा वर्ग शूद्रों का होगा, क्योंकि अच्छे बन्दोबस्त वाले समाज में इन्सान भाई-बहनों से कम से कम मजदूरी कराई जायगी। बड़ी से बड़ी तादाद वैश्यों की होगी। इस वर्ण में तमाम धंधे, किसान, व्यापारी, कारीगर वगैरह सब शामिल होंगे। यह योजना ख्याली पुलाव पकाने जैसी लग सकती है। लेकिन आज मैं जिस समाज को तितर-बितर होता देख रहा हूं, उसके बेलगाम और मनमाने व्यवहार के माफिक जीने के बजाय मैं अपने ख्याल के इस मनोराज्य में विचरना ज्यादा पसंद करता हूं। किसी शख्स का मनोराज्य समाज के हाथों मंजूर न हो, तो भी उसे उसमें रहने और विचरने की छूट है। हरेक सुधार की शुरुआत व्यक्ति से ही हुई है। जिस सुधार में सुधारक के प्राण हों और जिसे शूरवीर आत्मा का सहारा हो, उसे सुधारक का समाज स्वीकारे बिना नहीं रहता।

२७ नवम्बर, १९२७ ई०

न कोई ऊंचा हो, न नीचा

....हमें हिन्दू धर्म में क्रान्तिकारी परिवर्तन करना होगा। हमारे ऊपर अछूतों का कलंक लगाया जाता है और वह हमारी कमजोरी जरूर है : पढ़ने में आता है कि मुस्लिम लीग के नेता आज अछूतों को यह झांसा दे रहे हैं कि पाकिस्तान में उन्हें अलग चुनाव का हक मिलेगा। क्या यह पाकिस्तानी इस्लाम में शामिल होने की दावत है? जबर्दस्ती से जो हाल में लोगों से मजहब बदलवाया, ऐसी और बात चली है, उसके बारे में मैं कुछ नहीं कहना चाहता। चूंकि मैंने अछूत भाइयों से खुद ऐसी बातें सुनी हैं, मुझे जरूर डर है कि क्या होने वाला है। इस डर या डरने का जवाब एक ही हो सकता है, वह यह कि हिन्दू धर्म में से छूत छात का भूत बिलकुल निकल जाय, हिन्दुस्तान में कोई अछूत न हो। हिन्दू सब एक हों। कोई ऊंचा, कोई नीचा नहीं। जिन गरीब लोगों की ओर मसलन अछूत या आदिवासी, हम आज तक बेदरकार रहे हैं, उनकी हम खास देख-भाल करें। उन्हें पढ़ायें, उनके रहन-सहन को देखें। वोटरों की फेहरिस्त में सब एक ही हों। आज की हालत न रहे, इससे कई दर्जे बेहतर हो। क्या

हिन्दू धर्म इतनी ऊंचाई तक चढ़ सकेगा या झूठे आडम्बरों से और दूसरों को खराबी का अनुकरण या नकल करके अपना आत्माघात करेगा ? सवाल तो हमारे सामने यही है ।

नई दिल्ली, २३ जून, १९४७ ई०

सेवा में सौदे की गुंजाइश नहीं

वर्ण एक धर्म है, अधिकार नहीं । इसलिये वर्ण सिर्फ सेवा के लिये ही हो सकता है, स्वार्थ के लिये नहीं हो सकता । इस तरह न कोई ऊंचा है, और न कोई नीचा । जो ज्ञानी अपने को ऊंचा माने, वह मूर्ख से भी बुरा है । वह वर्ण से गिर जाता है । यहां यह भी समझना जरूरी है कि वर्ण धर्म में कोई ऐसी बात नहीं कि शूद्र ज्ञान न हासिल करे या रक्षा का काम न करे । हां, शूद्र ज्ञान देकर या रक्षा का काम करके रोजी न कमाये या क्षत्रिय सेवा न करे, ऐसी बात भी नहीं, लेकिन सेवा से रोटी न कमाये । इस सीधे सहज धर्म का सब पालन करें, तो जो झगड़े आज होते हैं, जो रस्साकशी एक दूसरे के साथ होती है, धन इकट्ठा करने के लिये जो होड़ चलती है, जो झूठ चलता है, जो कलह और लड़ाई मचती है वह सब मिट जाय । इस नीति का पालन सारी दुनिया करे या न करे, सब हिन्दू करें या न करें, जितना करेंगे, उतना संसार का लाभ होगा । मेरा यह विश्वास बढ़ता जाता है कि वर्ण धर्म से ही संसार का उद्धार होगा । वर्ण धर्म का सच्चा अर्थ सेवा धर्म है । जो कुछ किया जाय, वह सेवा भाव से किया जाय, सेवा में सौदे की गुंजाइश नहीं ।

जाति बाहर

जिस समाज के पंच बिना विचारे के, सिर्फ मोह, वहम के, अज्ञान के या ईर्ष्या के वश में होकर वहिष्कार करते हैं, उस समाज में रहने से निकल जाना बेहतर है, क्योंकि जहां एक भी सच्चे आदमी को समाज छोड़े वहां दूसरे सच्चे लोग कहां रह सकते हैं ?

यह तो हुई उसूल की बात । इस पर अमल सदा न हो सके, तो भी यह याद रखना जरूरी है । देखा जाता है कि आजकल पंचों की तकलीफ बढ़ती जा रही है । अछूत को खिलाना जुर्म समझने वाले पंच भी मौजूद हैं । अछूत को एक पंक्ति में बैठाने और उसकी राय देने वाले हिन्दू पापी माने जाते हैं । ऐसे पापियों के समाज में हममें जो भी पुण्यात्मा हों, वे सभी शामिल हो जायं ।

लेकिन वहिष्कार कैसे बर्दाश्त हो ? खाना न मिले, धोबी को बन्द करे, हज्जाम को बन्द करे । डाक्टर को बन्द क्यों न करें ? आखिर में मार डालना ही तो बाकी रहा ना ? वहिष्कृत सुधारक में मरने तक अटल रहने की शक्ति होनी चाहिये । अछूतों की ठेठ सेवा तो शुद्ध हुये हिन्दू मर कर ही करेंगे ।

जाति में खाने की जरूरत भी क्या? घर बैठे खुद पकाकर शान्ति से क्यों न खाया जाय? धोबी कपड़े न धोये, तो हाथ से धोकर पैसे बचाने चाहिये। हजामत हाथ से करनी तो आज मामूली बात है। लेकिन लड़की कहां ब्याही जाय? और लड़के के लिये लड़की कहां ढूंढें? अगर जाति में ही लड़का या लड़की देखना है और वह न मिले तो संयम पाला जाय। इतने संयम की शक्ति न हो, तो दूसरी जाति में ढूंढा जाय। उसमें भी न मिले तो जो न हो सके उसके बारे में उदासीन रहा जाय। वर्ण तो चार ही हैं। जातियां भले ही चार सौ या चालीस हजार। उपजातियों को तो मिटा देना ही ठीक है। छोटे-छोटे बाड़ों से हिन्दू धर्म का बहुत नुकसान हुआ है। जो वैश्य हैं वे सारे हिन्दुस्तान के वैश्यों में से किसी से भी नाता क्यों न जोड़ें? गुजराती ब्राह्मण अपने जैसे आचार विचार वाले किसी भी ब्राह्मण के यहां वर-कन्या क्यों न ढूंढें? इतना सुधार करने की भी हमारी हिम्मत न हो, तो हिन्दू धर्म के बहुत तंग हो जाने का डर है। बंगाल की लड़की गुजरात में आये और गुजरात की बंगाल में जाय, तो बिल्कुल बुरी बात नहीं है। वर्ण को बचाने वाले अगर उपजातियों को रखने चलेंगे, तो उपजातियां तो बची ही रहीं, वर्ण को खो बैठेंगे।

आज वर्ण भी छिन्न-भिन्न तो हो ही गया है। विचारवान स्त्री-पुरुषों को इस विषय का मंथन करने की पूरी जरूरत है। पहले तो गुजरात के वर्ण मिलकर अपना व्यवहार फैलायें, तो कितने आगे बढ़े समझे जाय? आज वर्ण अपनी बहुत-सी उपजातियों को एक नहीं कर सकते। अगर विचार करके उतना उत्साह भी उपजातियों के पंचों में न रहा हो, तो व्यक्तियों को पहल करनी चाहिये।

लेकिन बात तो मुझे बहिष्कार की करनी थी। उपजातियों के बारे में मैंने जो विचार किया है, वह बहिष्कृतों की शान्ति के लिये किया है। जुल्म घर का हो या बाहर का, उसे मिटाने का उपाय एक ही है। बहिष्कृत का रास्ता अभी तो सीधा है। लेकिन मान लीजिये कि हमारे मौजूदा वातावरण में उप-जाति से निकाला हुआ मनुष्य वर्ण से भी निकल जाय, तो? तो भी क्या हुआ। अकेले खड़े रहने की शक्ति जुटा लेने वाले सुधारक आजकल हिन्दुस्तान में हर जगह देखे जाते हैं।

लेकिन अकेले खड़े रहने की हिम्मत वाले जो शुद्ध आदमी हों, उनमें गुस्सा न होगा, द्वेष न होगा, बर्दाश्त होगी। वे जालिम का तिरस्कार न करेंगे, वे जालिम का भी भला चाहेंगे, और मौका मिलने पर उसकी सेवा करेंगे। सेवा करने का धर्म कोई भी न छोड़े। सेवा लेने का हक तो है ही कहां? धर्म तो कहता है मैं सेवा ही हूं। मुझे विधाता ने अधिकार दिया ही नहीं। जिसे मिला नहीं वह खोये क्या? बहिष्कृत को सेवा लेने की इच्छा ही छोड़ देनी चाहिये। यह अजीब कानून है जरूर, कि ऐसे लोगों को सेवा मिल ही

जाती है। लेकिन सेवक को इससे कोई सरोकार है। सेवा मिलने की आशा से जो सेवा छोड़ने का दावा करते हैं, वे तो डाकू हैं और वे नाउम्मीद ही रहेंगे।

अछूतों की सेवा करने वालों, रेत की तरह न नम्र रह कर, जो तुम्हें रौंदे उसे रौंदने दो। धरती भी पैरों तले कुचली जाती है, फिर भी हमें अभय दान देती है। इसीलिये हम उसे मां कहते हैं और रोज सुबह उठकर उसकी स्तुति करते हैं। समुद्र जिसका कपड़ा है, पहाड़ जिसकी छातियां हैं, विष्णु जैसे रक्षक जिसके पति हैं, उसे करोड़ों नमस्कार हों। हे माता, हमारे पैर तुम्हें छूते हैं, इसके लिये हमें माफ करना। जिन सेवकों ने ऐसी माता से बढ़िया से बढ़िया नम्रता सीखी है, उनका वहिष्कार हो तो उसमें उनका कोई नुकसान नहीं।

११ अक्टूबर, १९२५ ई०

इस महान आंदोलन की ओर ध्यान दो

मैं तो भारत का एक नम्र सेवक हूं, और भारत की सेवा करने के प्रयत्न में मैं समस्त मानव जाति की सेवा कर रहा हूं। मैंने अपने जीवन के आरम्भ-काल में ही यह देख लिया था कि भारत की सेवा विश्व-सेवा की विरोधिनी नहीं है, और फिर ज्यों-ज्यों मेरी उम्र बढ़ती गई और साथ ही साथ समझ भी, मैं त्यों-त्यों देखता गया कि मैंने यह ठीक ही समझा। ५० वर्षों के सार्वजनिक जीवन के बाद आज मैं कह सकता हूं कि राष्ट्र की सेवा और जगत की सेवा परस्पर विरोधी नहीं है। इस सिद्धांत पर मेरी श्रद्धा बढ़ती ही जाती है। यह एक श्रेष्ठ सिद्धान्त है। इस सिद्धांत के स्वीकार करने से ही जगत में शांति स्थापित हो सकती है और पृथ्वी पर बसी हुई मनुष्य जाति का द्वेष-भाव शान्त हो सकता है।

अस्पृश्यता के विरुद्ध मैंने जो यह युद्ध छेड़ा है, उसमें मेरी दृष्टि सिर्फ हिन्दू धर्म पर ही नहीं है। मैंने यह अनेक बार कहा है कि हिन्दुओं के हृदय से अस्पृश्यता यदि जड़-मूल से नष्ट हो जाय, तो इसका अर्थ होगा करोड़ों मनुष्यों का हृदय-परिवर्तन और इससे बड़ा विशद् परिणाम निकलेगा। अगर सचमुच अस्पृश्यता हिन्दुओं के हृदय से दूर हो जाय, अर्थात् सवर्ण हिन्दू इस भयानक काले दाग को धोकर बहा दें, तो हमें थोड़े ही दिनों में मालूम हो जायगा कि हम सब हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि एक ही हैं, अलग-अलग नहीं।

अस्पृश्यता का यह अन्तराय दूर होते ही हमें अपनी इस एकता का भान हो जायगा। मैं सैकड़ों बार कह चुका कि अस्पृश्यता एक सहस्रमुखी राक्षसी है, उसने अनेक रूप धारण कर रखे हैं। कुछ रूप तो उसके अत्यन्त सूक्ष्म हैं। मेरे मन में किसी मनुष्य के प्रति ईर्ष्या होती है, तो यह भी एक प्रकार की अस्पृश्यता ही है। मैं नहीं जानता कि मेरे जीवन-काल में यह अस्पृश्यता के नाश का स्वप्न कभी प्रत्यक्ष होगा या नहीं। जिन लोगों में धर्म बुद्धि है, जो धर्म के बाहरी विधि-विधान पर नहीं, किन्तु उसके वास्तविक जीवन-तत्व पर विश्वास रखते हैं, उन्हें इतना तो मानना ही पड़ेगा कि जो सूक्ष्म अस्पृश्यता मनुष्य जाति के एक बड़े समुदाय के जीवन को कलुषित कर रही है, वह अस्पृश्यता नष्ट होनी ही चाहिये।

हिन्दुओं का हृदय यदि इस पाप के कलंक से मुक्त हो सका, तो हमारे ज्ञान-नेत्र अधिक से अधिक खुल जायंगे। अस्पृश्यता का वस्तुतः जिस दिन नाश हो जायगा, उस दिन मनुष्य जाति के अपार लाभ का अनुमान कौन कर सकता है?

मेरा जीवन धर्म के सहारे चल रहा है। मैं कह चुका हूं कि मेरी राजनीति का उद्गम स्थान धर्म ही है। मेरी राजनीति और धर्मनीति में कोई अन्तर नहीं, राजनीति में जहां मुझे माथापच्ची करनी पड़ी, वहां भी मैंने अपनी जीवन-धार धर्म-तत्व की कभी उपेक्षा नहीं की। चूंकि यह एक दया धर्म का काम है, इसलिये विद्यार्थियों को अपने अवकाश का, अधिक नहीं, तो थोड़ा समय तो हरिजन-सेवा में देना ही चाहिये।

मैं देखता हूं कि अगर मुझे अपने अवकाश का समय देने वाले बहुत से सहायक मिल जायं, तो बहुत बड़ा काम पूरा हो सकता है। यह काम किराये के आदमियों से होने का नहीं। हरिजन बस्तियों में जाना, उनकी गलियों को साफ कराना, उनके घरों को देखना, उनके बच्चों को नहलाना-धुलाना, यह काम भाड़े के आदमियों के द्वारा नहीं कराया जा सकता। विद्यार्थी क्या सेवा कर सकते हैं, यह मैं बहुत बार कह चुका हूं। एक हरिजन सेवक ने मुझे बताया है कि यह कितना बड़ा भगीरथ कार्य है और उसे इसमें कितनी कठिनाइयां पड़ी हैं। मेरा ख्याल है कि हरिजन बालकों की अपेक्षा तो जंगली बालकों तक की दशा अच्छी होती है। हरिजन बालक जिस अधःपतन के वातावरण में दिन काट रहे है, उस वातावरण में जंगली बालक नहीं रहते। जंगली बालकों के आस-पास यह गन्दगी भी नहीं होती। यह सवाल भाड़े के टट्टुओं से हल नहीं हो सकता। चाहे जितना पैसा हमें मिल जाय, तो भी यह काम पूरा नहीं हो सकता। इस कार्य के करने में तो तुम्हें गर्व होना चाहिये। तुम्हें स्कूल, कालिजों में जो शिक्षा मिलती है, उसकी यह सच्ची कसौटी है। तुम्हारी कीमत इससे नहीं आंकी जाती कि तुम लच्छेदार अंग्रेजी भाषा में व्याख्यान दे सकते हो। अगर ६० रुपये मासिक या ६०० रुपया मासिक की तुम्हें कोई सरकारी नौकरी मिल गई, तो इससे भी तुम्हारी कीमत नहीं आंकी जायगी। दीनों की, दरिद्र नारायणों की तुम सेवा करोगे, उसी से तुम्हारी कीमत का पता लगेगा।

मैं चाहता हूं कि मैंने जो कहा है उसी भावना से तुम लोग हरिजन सेवा करो। मुझे आज तक एक भी कोई विद्यार्थी ऐसा नहीं मिला, जिसने यह कहा हो कि मैं नित्य एक घंटा अवकाश का नहीं निकाल सकता। तुम लोग अगर डायरी लिखने की आदत डालो, तो तुम्हें मालूम होगा कि साल में ३६५ दिनों में तुम कितने कीमती घंटे यों ही नष्ट कर देते हो। तुम्हें यदि अपनी शिक्षा सफल करनी है तो इस महान आन्दोलन की ओर ध्यान दो।

यह सेवा कार्य कठिन तो जरूर है। पर आनन्ददायी है। क्रिकेट और टेनिस से भी अधिक आनन्द तुम्हें इसमें मिलेगा। मैं बार-बार कहता हूं कि मेरे पास यदि सच्चे, चतुर और ईमानदार कार्यकर्त्ता होंगे, तो पैसा तो मिल ही जायगा। मैंने देखा कि यदि यथेष्ट सेवक हमारे पास हों तो पैसा तो अनायास ही मिल सकता है। सिर्फ पैसे से मुझे कभी भी सन्तोष नहीं होता, मैं तो तुम लोगों

और सतर्क रहना चाहती है, किन्तु बुद्धिमान सरकार ऐसे आन्दोलनों के दबाने के लिये हिंसात्मक दमन का प्रयोग करेगी । किन्तु वाइकोम सत्याग्रह के अपने निजी अनुभव से मैं यह कह सकता हूं कि तुम्हारे यहां एक ऐसी सरकार है, जो ऐसे आन्दोलन को सहन ही नहीं करेगी, किन्तु उसका इसलिये स्वागत करेगी कि ऐसा सुधार करने में उसी के हाथ मजबूत हो जायं। इसलिये वास्तविक कार्य तथा उसका श्रीगणेश ट्रावनकोर की जनता के हाथ में है, वह भी अछूत या अनुचित रूप से अवर्ण कहलाने वाले हिन्दू भाइयों के हाथ में नहीं । मेरे लिये तो अवर्ण हिन्दू का नाम ही गलत है, और हिन्दू धर्म के प्रति अपवाद है ।

अधिकांश दशाओं में इसका निदान या औसत श्रीगणेश तथा प्रारम्भ सवर्ण कहलाने वाले हिन्दुओं के हाथ में है, जिन्हें अछूत प्रथा के पाश से अपने को मुक्त करना है । किन्तु मैं तुमको यह बतला देना चाहता हूं कि निष्क्रिय रूप से केवल यह विश्वास मात्र ही पर्याप्त नहीं है कि अछूत प्रथा एक पाप है.... अपराध है, जो निष्क्रिय रूप से किसी अपराध को अपने सामने होते हुये देखता रहता है, कानूनन वह उसमें क्रियाशील रूप से भाग लेने वाला समझा जाता है । इसलिये आपको अपना आन्दोलन हर प्रकार से जायज तथा वैध रूप से चलाना चाहिये । यदि मेरी आवाज उन तक पहुंच रही है, तो उन्हें चाहिये कि मेरे संदेश को उन ब्राह्मण पुरोहितों के पास तक पहुंचा दें, जो इस आवश्यक तथा शीघ्र वांछनीय सुधार का विरोध कर रहे है । यह ऐतिहासिक सत्य होते हुये भी दुखद सत्य है कि वहां धर्म पुरोहित, जिनको धर्म का रक्षक होना चाहिये था, उसके भक्षक तथा विनाशक बन रहे हैं । ट्रावनकोर तथा अन्य स्थानों में मैं अपनी आंखों के सामने उन्हीं ब्राह्मण पुरोहितों को, जो धर्म की ध्वजा तथा रक्षक होते, अज्ञान या उससे भी बुरी वस्तु के कारण, धर्म का नाश करते देख रहा हूं। जब वे अपने समूचे पांडित्य का उपयोग एक भयंकर अंध-विश्वास तथा भीषण भूल के समर्थन के लिये करते हैं, उनकी विद्या धूल में मिल जाती है । इसलिये मैं आशा करता हूं कि समय रहते वे समय की गति पहचान लेंगे तथा वर्तमान स्थिति के साथ, जो इच्छा या अनिच्छा था सत्य के मार्ग की ओर हमें लिये जा रही है, चलने की चेष्टा करेंगे । संसार के सभी धर्म चाहे वे अन्य बातों में भिन्न हों, सर्वसम्मत रूप से यह घोषित करते हैं :

सत्यमेव जयते नानृतम्

सुधारकों से

किन्तु मैं सुधारकों को भी सावधान कर देना चाहता हूं कि उनका मार्ग तंग और दुर्गम है, अतएव यदि वे धैर्य छोड़ देंगे और न्याय-पथ से विचलित हो जायेंगे, तो वे अपनी ही हानि करेंगे, और सुधार के मार्ग में बाधा पैदा कर देंगे। मैं यह कहने का साहस करता हूं कि मैंने सुधारकों के हाथ में एक अमूल्य तथा अजेय अस्त्र सत्याग्रह के रूप में दे दिया है। यदि वह ईश्वर में विश्वास रखता है, उससे वह कभी हिंसात्मक न होगा । अपने अत्यन्त भयंकर शत्रु के प्रति, उस पर अन्याय, अज्ञान, हिंसा का दोष लगाते हुए भी

हिंसक भाव न धारण करेगा। मैं विरोध का भय किये बिना ही कह सकता हूं कि हिंसा द्वारा कभी सत्य का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है, इसलिये सत्याग्रही हिंसात्मक शक्ति द्वारा नहीं, प्रत्युत प्रेम और मत परिवर्तन द्वारा अपने कथित शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। उसकी विधि सदैव उदार होगी तथा वह उदारचेता होगा। वह कभी अतिशयोक्ति का अतिक्रमण न करेगा। और चूंकि अहिंसा का दूसरा नाम प्रेम है, उसका एकमात्र अस्त्र है आत्मपीड़ा और सर्वोपरि अछूत प्रथा उठाने के आन्दोलन में ''जो मेरी सम्मति में मूलतः एक धार्मिक तथा आत्मशुद्धि का कार्य है''घृणा, जल्दबाजी, अविचारशीलता तथा अतिक्रमण के लिये स्थान हो नहीं है। चूंकि प्रत्यक्ष कार्य में सबसे अमोघ अस्त्र सत्याग्रह है, इसलिये सत्याग्रह की शरण लेने के पूर्व सत्याग्रही अन्य हरएक उपाय का प्रयोग कर लेता है। इसलिये वह निरंतर तथा प्रायः वैध अधिकारियों के पास जायेगा, सर्वजन सम्मति को अपनाने की चेष्टा करेगा, शांत तथा व्यवस्थित चित्त से, जो सुनना चाहेगा उसके सामने अपना विचार प्रकट करेगा, और जब इन सब विधियों को असफल पावेगा, वह सत्याग्रह करेगा। पर जब उसकी अंतरात्मा उसे सत्याग्रह के लिये प्रेरित करेगी और वह उस पर उतारू हो जायगा, वह अपना सर्वस्व छोड़कर उस पर उतर पड़ेगा, और तब पीछे लौटना नहीं हो सकता, किन्तु मुझे आशा करनी चाहिये कि इस प्रांत में जनता के लिये इतने प्रत्यक्ष अपराध को मिटाने के लिये सत्याग्रह की आत्मपीड़ाएं न झेलनी पड़ेंगी।

ट्रावनकोर, १९२८ ई०

हिन्दू धर्म का अभाव

ट्रावनकोर में एक बार आने के बाद मैं इस मोहक भूमि में पुनः आने के अवसर की प्रतीक्षा करता रहता था। इसके अत्यन्त रमणीक दृश्य, ट्रावनकोर में कन्याकुमारी की पर्वत मालिका और ट्रावनकोर की स्त्रियों की सादगी तथा स्वाधीनता ने मेरे पहले आगमन के समय ही मेरा हृदय मोहित क लिया था। किन्तु इन भावों और अवस्थाओं के आनन्द को यह सोचकर गहरा धक्का पहुंचता है कि इस अत्यन्त प्राचीन हिन्दू राज्य में जिसे शिक्षा में प्रगति की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, अछूत प्रथा अत्यन्त भयंकर रूप में वर्तमान है। और इस दशा में मुझे सदैव सबसे अधिक पीड़ा इसीलिये होती है कि मैं अपने को पक्का हिन्दू समझता हूं, और अपने हृदय को हिन्दुत्व के भाव से ओत-प्रोत देखता हूं। हम आज अछूत प्रथा का जैसा पालन करते हैं, और उस पर जैसे विश्वास करते है, उसकी आज्ञा में ऐसे किसी भी ग्रंथ में नहीं पाता, जिसे हिन्दू शास्त्र कहते हैं। किन्तु जैसा मैंने अन्य स्थानों में बार-बार कहा है, यदि मुझे यह मालूम हो जाय कि हिन्दू धर्म में वास्तव में अछूत प्रथा है, मुझे हिन्दू धर्म को ही छोड़ने में कोई हिचक न होगी। क्योंकि मेरा विश्वास है वह धर्म नहीं है, जिसमें नैतिकता और कर्तव्य शास्त्र के मूल सत्यों का समावेश न हो, तथा उसका कोई सिद्धांत इनके विपरीत हो। किन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि

अछूत प्रथा हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। मैं हिन्दू बना ही हुआ हूं और दिन प्रति-दिन इस भयंकर पाप से छुटकारा पाने के लिये अधीर होता जा रहा हूं। इसलिये जब मैंने यह देखा कि यह आंदोलन ट्रावनकोर में प्रबल होता जा रहा है, तो मैं बिना किसी संकोच के इसमें कूद पड़ा। यदि मैंने इस प्रश्न को अपनाया है, तो इसलिये नहीं कि मैं किसी प्रकार इस रियासत को परेशान करूं, क्योंकि मेरा विश्वास है श्रीमती महारानी अभिभाविका अपनी प्रजा के कल्याण का पर्याप्त ध्यान रखती है। वह इन्हीं मार्गों पर सुधारक होने का भी दावा करती है और मैं सोचता हूं कि मैं यह कहने में कोई गुप्त बात नहीं बतला रहा हूं कि वह स्वयं निकटतम भविष्य में इस अन्याय को दूर करा देना चाहती है।

राज्य और प्रजा का कर्तव्य

किन्तु कोई भी सरकार सुधार के सामने में अगुआ नहीं बन सकती। प्रकृतितः सरकार अपनी शासित प्रजा की संगठित इच्छाओं और भावों का अर्थ निकालने वाली और उनको कार्य रूप में परिणत करने वाली हुआ करती है। और चाहे कितनी ही निरंकुश सरकार क्यों न हो, वह ऐसा सुधार नहीं करेगी, जो उसकी प्रजा हजम न कर सके। किन्तु इस एक बात का संतोष हो जाने पर मैं ग्राम-ग्राम में अपने प्रभु के सामने इस सुधार का संदेश ले जाने से नहीं रुकूंगा। सुनियोजित, निरंतर आन्दोलन ही स्वस्थ प्रगति की आत्मा होती है, और मैं तब तक सरकार को चैन न लेने दूंगा, जब तक वह सुधार न चालू हो जाय। पर सरकार को चैन न लेने देने का यह अर्थ कदापि नहीं होता कि सरकार न छेड़नेवालों का सामना। प्रत्येक सरकार ऐसे आन्दोलन की सहायता, समर्थन तथा प्रोत्साहन का स्वागत करती है, जिससे स्वयं वह सुधार चालू कर सके, जिसे वह चाहती है। मुझे मालूम है, जब मैं पिछली मर्तबा यहां पर आया था, मुझसे कहा गया था कि यहां सवर्ण या अछूत हिन्दू एक प्रकार से उत्सुक हैं कि इस रूप में यह सुधार चालू कर दिया जाय। पर मुझे कहते संकोच होता है कि सवर्ण हिन्दू अपनी इच्छा को दबाये सोते रहे, उन्होंने अपनी इच्छा को ठोस रूप नहीं दिया। मेरा विश्वास है कि राज्य के हर एक हिन्दू का यह आवश्यक कर्तव्य है कि वह अपने इस कर्तव्य के प्रति सचेत हो जाय, और अपने आलसी भाइयों को भी उनके कर्तव्य का ध्यान दिला कर उनकी तंद्रा दूर कर दे। मुझे जरा भी संदेह नहीं कि यदि सवर्ण हिन्दू एक आवाज से अपनी कामना प्रकट कर दें, इस अछूत प्रथा का भूत तुरन्त भाग जायगा। इसलिये हमें अपनी तंद्रा और आलस्य को सरकार के सिर मढ़ना अनुचित है।

पर हर समुदाय और देश में सुधारकों की संख्या इतनी थोड़ी है कि वे उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। और मैं यह भी जानता हूं कि इन सब सुधारों का भार उन्हीं थोड़े से सच्चे सुधारकों के सिर पड़ता है। इसलिये इतने समय की पुरानी कुप्रथा के सम्मुख सुधारक क्या करें? यही प्रश्न हल करना है। संसार के सभी सुधारकों ने निम्न उपायों में से एक या दो उपाय ग्रहण किये हैं। उनकी बहुत बड़ी संख्या सुधारकों के लिये तीव्र आन्दोलन करती और हिंसा

की शरण लेती थी। वे ऐसा आन्दोलन करते थे, जिससे सरकार और जनता तंग आ जाती तथा जनता के (नागरिकों के) शांत जीवन में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती थी। दूसरे प्रकार का सुधारक, जिसे मैं अहिंसात्मक श्रेणी का कहता हूं, अधिक उदार रूप से आन्दोलन करता है। वह मनसा वाचा कर्मणा हिंसात्मक कार्य द्वारा नहीं, अपितु आत्मपीड़ा द्वारा अपनी ओर ध्यान आकर्षित करता है। वह बाल बराबर भी सत्य से नहीं डिगता और बुराई दूर करने के लिये अधीर होते हुये भी बुराई करने वाले के प्रति भी बुरा भाव नहीं लाता। इसी के लिये मैंने एक छोटा सा नाम रखा है, और दक्षिण अफ्रीका के समान भारत के सामने भी मैं इसे सत्याग्रह कह कर उपस्थित करता हूं। अन्यथा सत्याग्रह और सिविल नाफर्मानी को मिलाइये नहीं। दूसरी चीज सत्याग्रह की ही एक शाखा है, इसमें कोई संदेह नहीं, पर वह प्रारम्भ में नहीं, एक दम अंत में आती है। उसके लिये आत्मनियन्त्रण अनिवार्य है। सत्याग्रह दानशीलता पर निर्भर करता है। सत्याग्रही अपने शत्रुओं के कार्यों और भावों का भी मनमाना या अनुचित अर्थ नहीं लगाता, क्योंकि वह दबाव डाल कर नहीं, मत परिवर्तन करा कर उसे अपनी ओर मिलाना चाहता है। इसलिये आप इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि जब [illegible] में मेरे एक मित्र ने मुझसे भेंट कर मेरे समूचे सिद्धान्तों का गलत अर्थ लगाया, तो मुझे कितना दुखद आश्चर्य हुआ। उन्होंने त्रिवेन्द्रम एक्सप्रेस में मेरे साथ अपनी बातचीत की रिपोर्ट छपवाई थी, जिसे मैंने देखा है। मेरी उसके साथ जो बातचीत हुई थी, उसका शुरू से आखिर तक गलत और उलटा रूप दिया गया है। एक आवाज धिक्कार-धिक्कार। पर आपको धिक्कार कहने का अधिकार नहीं है। जिन सज्जन ने धिक्कार कहा है, वह दानशीलता या उदारता का गुण या अर्थ ही नहीं जानते, क्योंकि एक क्षण के लिये भी मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि जो सज्जन मुझसे मिले थे उन्होंने जानबूझ कर अर्थ का अनर्थ किया है। आज प्रातःकाल उन्होंने मुझे जो सफाई दी, मैं उसका विश्वास करने के लिये तैयार हूं। किन्तु मैंने आपका इसकी ओर इतना ध्यान इसीलिये आकर्षित किया है कि मैं आपको सत्याग्रह का अर्थ समझा सकूं, और साथ ही जो लोग इस अस्त्र को चलाना नहीं जानते, उनके ऐसा करने में जो खतरे हैं, वे भी दिखला दूं। मैं यह उदाहरण इसीलिये दे रहा हूं कि भावी सुधारक को ऐसा पथ अपनाने का खतरा समझा दूं और सचेत कर दूं कि जब तक उसे यह विश्वास न हो जाय कि जिस पथ पर वह खड़ा है वह मजबूत है या नहीं, जब तक उसे साधारण से अधिक आत्मनियन्त्रण प्राप्त नहीं हो गया है। मेरे लिये सत्याग्रह बड़ा प्रिय और अमोघ अस्त्र होते हुये भी मैं यह नहीं चाहता कि अपने भरसक इसका दुरुपयोग या अनुचित उपयोग होने दूं। इसीलिये मैंने इस मित्र को सलाह दी कि वह इस प्रश्न को तब तक न अपनावे जब तक वह सत्याग्रह का पूरा मर्म समझ कर उसका तथ्य न ग्रहण कर सके।

पर ऐसा कह कर मैं एक भी सुधारक का उत्साह ठंढा नहीं करना चाहता। इस समय का मैं इतने विस्तार के साथ इसलिये पर्यालोचन कर रहा हूं कि मैं शीघ्रतम रूप से इसको हल करने के लिये इससे काम लेना चाहता हूं।

इसलिये मैं विनम्रतापूर्वक यह सलाह देता हूं कि आप में से, जिसको भी सार्वजनिक जीवन का कुछ अनुभव है, इस आन्दोलन को अपने हाथ में लेकर, अपना बनाकर उन युवकों की दृढ़ता तथा क्रिया शक्ति का सारथ्य करें, जो इसमें रुचि रखते हैं, पर कार्य करना नहीं जानते, और मैं आपको यह भी सलाह देता हूं कि आप अधिकारियों के सम्पर्क में भी आवें, और जब तक यह सुधार चालू न हो जाय उनको चैन न लेने दें। क्योंकि मैं स्वतंत्रतापूर्वक आपसे यह कह सकता हूं कि केवल महारानी ही नहीं, पर दीवान साहब भी इस सुधार के पक्षपाती हैं। पर चूंकि वह दूसरे धर्म के हैं, हम और आप हिन्दू यह जानते हैं कि वह किस सीमा तक जा सकते हैं। मेरी सम्मति में जहां तक सरकार का सम्बन्ध है वह सुधार के पक्ष में है, पर उसका श्रीगणेश आपकी ओर से होगा, उसका प्रोत्साहन आप करेंगे, न कि सरकार। आप मुझे इस बात के लिये क्षमा करेंगे कि मैंने बड़े विषय तथा तार्किक रूप में इस समस्या पर विचार किया है। मैं और करता ही क्या, क्योंकि मेरे पास इतना समय नहीं था कि मैं नेताओं को बुला कर उनके साथ इसके हर पहलू पर विचार करता। इसलिये मैं समझता हूं कि अछूत प्रथा के विरोध में इतनी बड़ी सभा के सम्मुख आप मेरे व्याख्यान की विषमता का ध्यान न करेंगे।

त्रिवेन्द्रम्, १९२८ ई०

अहंमन्यता

ट्रावनकोर से एक महाशय लिखते हैं :—

"ब्राह्मण और उनके रीति-रिवाजों तथा आचारों के संबंध में कुछ गलतफ़हमी मालूम होती है। आप अहिंसा की प्रशंसा करते हैं, पर केवल हम ब्राह्मण ही धार्मिक रूप से इस वस्तु का पालन करते हैं। जो व्यक्ति इसकी अवज्ञा करता है, उसे हम जाति बाहर कर देते हैं। जीवहत्या करने वाले या मांस खाने वाले के सम्पर्क को ही हम पापपूर्ण मानते हैं। कसाई, मछये, ताड़ी निकालने वाले के आगमन मात्र से ही या मांस खाने वाले, मदिरा सेवन करने वाले अथवा अधार्मिक लोगों के स्पर्श मात्र से ही भौतिक वायु मंडल दूषित हो जाता है। तपस्या नष्ट होकर शुद्ध आकर्षण शक्ति नष्ट हो जाती है।

"इसी को हम गंदा होना समझते हैं। इन्हीं नियमों के पालन के कारण ब्राह्मण इतने युग से अपने परम्परागत सदाचार को निभाते आ रहे हैं। तब से उनका समय, उनका भाव्य बहुत बदल गया है, पर ब्राह्मण न बदले। यदि इन्हें बिना रोक-टोक के हर एक के साथ स्वतंत्रतापूर्वक मिलने दिया जाय, तो ब्राह्मण गई गुजरी अत्यन्त गिरी जातियों से भी हीन दशा को प्राप्त होंगे, वे खराब से खराब पाप आसानी से करने लगेंगे, वे छिपे-छिपे सभी दुर्व्यसनों का सेवन कर सकेंगे, जिसे छुआछूत के कारण गुप्त रखना बहुत कठिन होगा, और ऊपर से पवित्रता का आडम्बर बनाये रहेंगे। हमें मालूम है कि आजकल नाम मात्र के बहुत से ब्राह्मण ऐसे ही हैं, और वे दूसरों को भी अपनी गिरी दशा में मिलाने के लिये दीन-दुनिया एक कर रहे हैं।

"एक ऐसे देश में जहां समुदायों की विभिन्नता आचार-विचार की विभिन्नता पर निर्भर है पश्चिम की तरह रंग, धन या शक्ति की विभिन्नता पर नहीं, और भिन्न केन्द्रों पर व्यावसायिक, सामाजिक तथा पारिवारिक सुविधाओं के विचार से रहती है, जैसा कि हमारे देश में उनके बीच की स्पष्ट भिन्नता से प्रतीत होता है। यदि कोई समुदाय या व्यक्ति अपने आचार-विचारबदल दे, तो वह बहुत समय तक छिपा नहीं रह सकता।

"इस दशा के विपरीत, यदि किसी को कसाई, मांसाहारी और मद्यप के बीच रहने दिया जाय, तो उसके लिये यह असंभव होगा कि वहां वह अपने उन गुणों का पालन कर सके, जो उस समुदाय के लिये नये, अनोखे तथा अज्ञात हैं। यह तो स्वाभाविक बात है कि हर एक व्यक्ति अपनी रुचि तथा प्रकृति के अनुकूल वातावरण में रहना चाहता है। इसीलिये यह आवश्यक है कि भौतिक, नैतिक और धार्मिक रूप से ब्राह्मणों के निवास-स्थान को कसाई, मछुये, ताड़ी निकालने वाले आदि के प्रवेश से मुक्त रखा जाय।

"भारत में व्यवसाय और जाति प्रथा का अविभक्त संबंध है। इसीलिये यह स्वाभाविक बात है कि जिस जाति का व्यक्ति होगा, उसी जाति के व्यवसाय का पालन करता होगा।

"इन्हीं कारणों से हमारे लिये अछूत का स्पर्श या उसे छूना, दोनों मना किया गया है। इससे हमारा समुदाय केवल दूषित होने से ही नहीं बचता, प्रत्युत ऐसे पापकर्ता को समाज बाहर निकालने या धार्मिक दंड देने की व्यवस्था करता है, और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से उन लोगों को बुरे आचरण के परित्याग की सीख देता है, जो हमसे स्वतंत्रतापूर्वक मिलना चाहते हैं।

"इसलिये आप उनसे सार्वजनिक रूप से पाप के परित्याग तथा नित्य स्नान, ध्यान, व्रत, पाठ आदि के साथ चर्खा और बुनना को अपनाने की सलाह दें और बतला दें कि यदि वे कुछ वर्षों में अपने को सब के सामने जाने लायक बनाना चाहते हैं, तो यही एक मात्र उपाय है। साथ ही, वे उन लोगों का सम्पर्क छोड़ दें, जो उन्हीं के समुदाय के होते हुये भी अपनी आदत नहीं बदलने को तैयार हैं। शास्त्रों ने भी उनके उद्धार की यही विधि बतलाई है। चूंकि मनुष्य के गुणावगुण की परख का कोई उपाय नहीं है, इसलिये किसी की मानसिक पवित्रता-अपवित्रता की बात करना व्यर्थ है। सार्वजनिक आचार से ही किसी व्यक्ति का निजी गुण जान लेना चाहिये। इसलिये जो व्यक्ति हमारा आपका अहिंसा धर्म कम से कम इस सीमा तक अपनाने के लिये तैयार नहीं है कि जीव वध, मछली या मांस खाना छोड़ दें, वह इस योग्य नहीं है कि परम्परा से उसके दर्शन मात्र का निर्धारित दोष दूर कर दिया जाय।"

मैंने संवाददाता के प्रश्नों का कई बार उत्तर दिया है। फिर भी उसके तर्क की निस्सारता को जाहिर कर देना उचित है। पहले तो ब्राह्मणों का निरामिषता का दावा बिलकुल ठीक नहीं है। यह बात केवल दक्षिण के ब्राह्मणों में ही लागू हो सकती है। पर अन्य स्थानों में—काश्मीर, बंगाल

आदि प्रांतों में—मछली और मांस का आजादी से उपयोग होता है। इसके अलावा सभी मांसाहारी को देखना दोष नहीं माना जाता। पर पूर्ण पवित्र होने पर भी अस्पृश्य परिवार में जन्म लेने के कारण ही अछूत को छूना, देखना या उसका पास आना पाप समझा जाता है। क्या ब्राह्मण मांसाहारी अधिकारारूढ़ सरकारी अब्राह्मणों से कंधा नहीं मिलाते ? क्या वे मांस-भक्षी देशी नरेशों का अभिवादन नहीं करते ?

संवाददाता ऐसे संभ्रांत तथा संस्कृत व्यक्ति का एक तर्कहीन तथा विनष्ट-प्राय प्रथा के समर्थन में यह अंध उत्साह देख कर आश्चर्य होता है। संवाददाता स्वयं अपने तर्क की स्पष्ट विषमताओं को भूल जाता है। संवाददाता मांस भक्षण के एक मच्छड़ के समान तर्क को इतना तूल देता है, पर एक ख्याली पवित्रता की रक्षा के लिये जानबूझ कर करोड़ों भाइयों को दबाने की चेष्टा में जो तिगुनी हिंसा होती है, उसके ऊंट को सरलतापूर्वक निगल जाता है। संवाददाता को मेरी सलाह है कि ऐसी निरामिषता से क्या लाभ, जिसकी रक्षा के लिये अपने भाइयों को जाति बाहर करना पड़े। इस प्रकार से जिस चीज की रक्षा की जायगी, वह जरा से हवा के झोंके से उड़ जायगी। मैं स्वयं निरामिषता को बहुत बड़ी चीज समझता हूं। मैं यह मानता हूं कि अपनी अन्य संयमशीलता के साथ घोर निरामिषता के कारण ही ब्राह्मणों की इतनी आध्यात्मिक उन्नति हुई है। जिस समय वे अपनी उन्नति की चरम सीमा पर थे, उनको बाहरी संरक्षण की आवश्यकता नहीं होती थी। जो गुण बाहरी प्रभाव से अपनी रक्षा नहीं कर सकता, उसकी जीवनी-शक्ति नष्ट हो जाती है।

इसके अतिरिक्त अब वह समय नहीं रहा कि संवाददाता जिस प्रकार का संरक्षण चाहता है, वह ब्राह्मणों को प्राप्त हो सके। सौभाग्य से ऐसे ब्राह्मणों की संख्या नित्य बढ़ती जा रही है, जो अपने साथियों की नित्य की कटुता तथा विरोध की लेशमात्र भी परवा न कर सुधार आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे हैं, और ऐसे संरक्षण से घृणा करते हैं। और उन्हीं के हाथों सुधार की प्रगति की सबसे अधिक आशा है।

संवाददाता की इच्छा है कि मैं दलित जातियों को पवित्रता की शिक्षा दूं। अवश्य वह यंग इंडिया नहीं पढ़ते, अन्यथा उन्हें मालूम हो गया होता कि मैं उन्हें नित्य ऐसी सीख देता हूं। मुझे उन्हें सूचित करते हर्ष होता है कि वे मेरी प्रार्थना के अनुसार बड़ी सन्तोषजनक उन्नति कर रहे हैं। मैं संवाददाता को निमन्त्रण देता हूं कि वे भी उन व्यक्तियों में शामिल हो जायं, जो इन सदियों से पीड़ित स्त्री-पुरुषों में सच्चे मित्र के समान न कि संरक्षकों के समान, सेवा कर रहे हैं।

भुसावल ताल्लुके में हरिजन-कार्य

श्री ठक्कर बापा को एक पत्र के उत्तर में गांधीजी लिखते हैं :—

यह बात ठीक है। अच्छी निशानियों में सबसे पहले तो शायद कांग्रेस मिनिस्ट्रियों का होना ही है। इसका यह अर्थ नहीं कि अब जबर्दस्ती से काम

लिया जायगा। ऐसे कामों में जबर्दस्ती की कम से कम गुंजाइश होती है। जो चीज लोगों की हड्डियों में घुस गई है और जिसने धर्म का बाना पहन रखा है, उसे जबर्दस्ती से निकाला नहीं जा सकता। मगर जब राज विरुद्ध, (मुखालिफ) होता है, तो उसकी ताकत दबे हुओं को और दबाने में खर्च होती है और अगर दबी हुई रिआया की मदद भी की जाती है, तो वह भी या तो ताकत के जोर से की जाती है या अपना स्वार्थ साधने के लिये। ऐसी सरकार जो कुछ करती है, जबर्दस्ती से ही करती है। कांग्रेस ने गद्दी जोर आजमाई से नहीं पाई। उसकी बुनियाद लोकमत पर टिकी हुई है। इसलिये हम उम्मीद रखें कि कांग्रेसी प्रधान लोगों को समझ कर उनकी मदद से ही अपना काम आगे बढ़ायेंगे। इसका नतीजा यह होना चाहिये कि उनके इलाके में हरिजन-सेवा और ऐसे दूसरे काम ज्यादा जोर से चलें और उनमें रुकावट डालने वाली ताकतें अपने आप बैठ जायं। भुसावल जैसे छोटे से इलाके में भी काम पक्की तरह चले, तो फल ज्यादा निकलेगा। सारे देश में एक ही साथ सब जगह काम हाथ में नहीं लिया जा सकता। जहां काम करने वाले ज्यादा होशियार और असर वाले होंगे वहां काम ज्यादा तेजी से चलेगा। एक छोटे से इलाके में खूब अच्छा काम हो सके, तो दूसरे भी उसकी नकल करने लग जायेंगे और सफलता जल्दी मिलेगी। हम उम्मीद रखें कि भुसावल ताल्लुका में ऐसा ही होगा।

मसूरी, २६ मई, १९४६ ई०

और भी कठिनाइयां

राष्ट्रीय स्कूलों में अछूत जातियों के बालक भर्ती करने की मि० एन्ड्रयूज ने जो बात उठाई है उस सम्बन्ध में गुजरात के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की सिनेट ने एक प्रस्ताव पास किया है। इससे अहमदाबाद में सनसनी फैली है, जिससे टाइम्स आफ इंडिया का संवाददाता केवल सन्तुष्ट ही नहीं हुआ है, बल्कि उसे सिनेट की रचना में एक दूसरी त्रुटि देखने का अवसर मिला है। वह यह कि सिनेट में एक भी मुसलमान मेम्बर नहीं है। इस त्रुटि से यह न समझना चाहिये कि विश्वविद्यालय के राष्ट्रीय चरित्र में अभाव है। हिन्दू-मुसलमानों की एकता मौखिक बात नहीं है। इसलिये कृत्रिम प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय शिक्षा में तन, मन से अपना समय लगाने को अभी तक कोई योग्य शिक्षित मुसलमान नहीं मिला है। मैं यह बात इसलिये कहता हूं कि यह भी जानना चाहिये कि कुछ आदमी इस आन्दोलन को अप्रतिष्ठा करने के लिये भ्रमोत्पादक बातें किया करते हैं। यही एक बाहर की कठिनाई है, जिसका वर्णन सुगमता से किया जा सकता है।

अछूत जाति सम्बन्धी कठिनाई भीतरी है और इसलिये बहुत बड़ी है, क्योंकि इससे फूट पैदा हो सकती है, जिससे उद्देश्य को धक्का पहुंच सकता है। यदि भीतरी कठिनाइयां बराबर बढ़ती रहें, तो कोई उद्देश्य कभी सिद्ध नहीं हो सकता। तो भी फूट से बचने के लिये सिद्धांत में किसी बात का परित्याग नहीं करना चाहिये; यदि आप किसी उद्देश्य के कुछ महत्वपूर्ण अंशों का परित्याग करें तो आप उसकी

उन्नति नहीं कर सकते। अछूत जाति की समस्या इस उद्देश्य का बड़ा भारी अंग है। अछूत जातियों के मिलाये बिना स्वराज्य उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमानों की एकता के बिना। मेरी तो यह सम्मति है कि हम साम्राज्य के लिये गुलाम बन गये हैं कि हमने अपने मध्य में गुलामों की सृष्टि की है। गुलाम के मालिक को गुलाम की अपेक्षा अधिक धक्का पहुंचता है। जब तक हम भारत की जनता के पांचवें भाग को गुलामी में रखेंगे तब तक हम स्वराज्य पाने के योग्य नहीं होंगे। क्या हमने गुलाम को पेट के बल नहीं रेंगाया है? क्या हमने उसे गुलाम नहीं कर दिया है? यदि उस गुलाम के साथ ऐसा व्यवहार करना हमारा धर्म है, तो हमें अलग कर देना भी गोरी जाति का धर्म है। गोरों का यह कहना कि हिन्दुस्तानी अपनी वर्तमान अवस्था से सन्तुष्ट हैं, यदि यह ठीक नहीं है,तो हमारे लिये तो यह कहना कभी ठीक हो ही नहीं सकता कि गुलाम अपनी वर्तमान अवस्था से सन्तुष्ट है। जब हम गुलामी को बढ़ाते हैं तो वह हममें पूर्ण रूप से और लिपट जाती है।

गुजरात सिनेट ने कुछ सोच-विचार कर ही लोगों की चिल्लाहट की ओर ध्यान नहीं दिया। यह असहयोग आत्म-परिष्कृति का मार्ग है। हमें चाहिये कि हम पुरानी रद्दी रीति-रस्म में न लटक कर स्वराज्य के उज्ज्वल फल के लिये चेष्टा करें। रीति-रस्म के कारण ही कुछ जातियों को अछूत समझने की परिपाटी पड़ गई है। अछूत जातियां हिन्दू समाज से पृथक् हैं यह कोई बात नहीं है। संसार भाव में अग्रसर हुआ है, यद्यपि कार्य में यह बर्बर बना हुआ है। जो धर्म वास्तविक तत्वों की नींव पर नहीं खड़ा किया गया है, वह कभी ठहर नहीं सकता। भूल की प्रतिष्ठा करना धर्म का उसी प्रकार नाश कर देगा, जैसे रोग की परवाह न करने से वह शरीर का अन्त कर देता है।

हमारी यह सरकार निःशंक है। इसने मुसलमानों को हिन्दुओं से पृथक् कर हम पर शासन किया है। हिन्दुओं के मध्य जो दुर्बलता है उससे यह अपना पक्ष सबल करती है। यह अछूत जातियों को शेष हिन्दुओं से तथा अब्राह्मणों को ब्राह्मणों से लड़ाती है। गुजरात सिनेट ने इस कष्ट का अन्त नहीं किया है। इसने सिर्फ कठिनाइयां बना दी हैं। यह कष्ट तभी दूर हो सकता है जब हिन्दू जनता अछूतों की घृणा करना छोड़कर उसे अपने समाज में मिला लेगी। स्वराज्य के प्रेमी किसी भी हिन्दू को अछूत जाति का उत्थान करने के लिये उसी प्रकार निरन्तर उद्योग करना चाहिये जिस प्रकार वह हिन्दू-मुसलमानों की एकता बढ़ाने के लिये करता है। हम अछूतों के साथ अपने जैसा बर्ताव करें और उन्हें वही अधिकार दें, जिसके लिये हम लड़ रहे हैं।

पुरानी परम्परा मान्य नहीं

मैं यह नहीं मानता कि केवल पुरानी होने से ही सभी पुरानी बातें अच्छी हैं। प्राचीन परम्परा के सामने ईश्वर की दी हुई तर्क बुद्धि का त्याग करने को मैं नहीं कहता। चाहे कोई परम्परा हो, मगर नीति के विरुद्ध होने पर वह त्याज्य है। अस्पृश्यता शायद पुरानी परम्परा मानी जावे.....। अगर मुझमें ताकत होती,

तो मैं उन्हें धो बहाता। इसलिये शायद तुम अब समझ सकोगे कि मैं जब पुरानी परम्परा की इज्जत करने को कहता हूं तो मेरा क्या मतलब है।

अन्त्यज आप के देव हैं

....गीता कहती है कि देवों को सन्तुष्ट रखना चाहिये। ....देवता आसमान पर नहीं हैं। आपके देव अन्त्यज हैं। आपके देव दूसरे अस्पृश्य हैं। हिन्दुस्तान के देव कंगाल लोग हैं। दया-धर्म से हीन धर्म पाखंड है। दया ही धर्म का मूल है और इसका त्याग करने वाला ईश्वर का त्याग करता है। रंक का त्याग करने वाला सबका त्याग करता है।

अन्त्यज पंखहीन हैं

....अन्त्यजों के तो हमने पर काट डालें हैं, उनकी सद्भावनाओं को दबा दिया है।

अस्पृश्यता

..जिस प्रकार एक रत्ती संखिया से लोटा भर दूध बिगड़ जाता है, उसी प्रकार अस्पृश्यता से हिन्दू धर्म चौपट हो रहा है।

दलित जातियों से आत्मीयता न छोड़ूंगा

चाहे मैं टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाऊं, पर दलित जातियों से आत्मीयता न छोड़ूंगा।

सेवा धर्म

मनुष्य का धर्म दूसरों की निस्वार्थ सेवा करना है, और यह सेवा उसे इसलिये करनी चाहिये कि सेवा मनुष्य जीवन का मूल सिद्धांत है, न कि यह सोचकर कि वह ऐसा करने से किसी दूसरे के साथ उपकार कर रहा है।

सत्य की शोध और अहिंसा का पालन

सत्य की शोध और अहिंसा का पालन, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, सर्वधर्म समानत्व, अस्पृश्यता-निवारण इत्यादि बगैर नहीं हो सकता।

सत्य का रास्ता

छूटे नहीं तो सत्य के रास्ते पर नहीं जा सकते हैं। बात यह है कि सत्य के लिये सब कुछ कुरबान करें। हम हैं ऐसा दीखना नहीं चाहते, लेकिन हैं उससे बेहतर दीखना चाहते हैं। कैसा अच्छा हो अगर हम नीच हैं तो नीच दीखें, अगर ऊंच होना चाहें तो ऊंच काम करें, ऊंच विचारें। ऐसा न हो सके तो भले नीच ही दीखें। कोई रोज तब ऊंचे जायेंगे।

१० जनवरी, १९४५ ई०

अस्पृश्यता-निवारण

कई कांग्रेसियों ने इस काम को केवल राजनैतिक दृष्टि से ही जरूरी समझा है और यह नहीं माना कि हिन्दुओं को उसकी आवश्यकता अपने धर्म

की रक्षा के लिये है। कांग्रेसी हिन्दू यदि इस काम को शुद्ध भावना से अपने हाथ में ले लें, तो सनातनी कहलाने वाले लोगों पर आज तक जो असर हुआ है उससे कहीं अधिक असर पड़ सकेगा। · · हर एक हिन्दू को हरिजनों को अपनाना चाहिये, उनके सुख-दुख में भाग लेना चाहिये और उनके पृथग्वास में उनके साथ मित्रता करनी चाहिये।

निजी मेहनत

सबको अपना भंगी तो खुद ही बन जाना चाहिये। जो खाता है वह मैला तो करता ही है। इसलिये यही सबसे अच्छा है कि जो मैला करे, वही उसे गाड़े। यह न बन पड़े तो सारा कुटुम्ब अपना कर्त्तव्य करे। मुझे बरसों से लगता है कि जहां भंगी का जुदा काम सोचा गया है, वहां कोई बड़ा दोष घुस गया है। हमारे पास इसका इतिहास नहीं कि इस जरूरी और सेहत को बचाने वाले काम को हल्के से हल्का पहले-पहले किसने न माना होगा? जिसने माना उसने हमारी भलाई तो हरगिज नहीं की। यह भावना हमारे दिल में बचपन में ठंसाने का सहज उपाय यह है कि जो समझ गये हैं वे खुद मेहनत की शुरुआत पाखाना सफाई से करें। इस तरह समझ कर करेगा, वह उसी वक्त से धर्म को अर्थ में और सच्ची तरह समझने लगेगा।

६ सितम्बर, १९३० ई०

बहुत बड़ी बुराई

जब हम किसी मनुष्य को अपने से नीचा समझें तो हमारे भीतर बहुत बड़ी बुराई है। अगर यह बुराई रह गई तो हमें ही खा डालेगी। एक हिन्दू तपस्या करने को भी नहीं रह जायगा। और यह हमारे लिये उचित ही होगा। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक यही चेतावनी देने के लिये दौरा कर रहा हूं। इसलिये यदि तुम हरिजनों को सगे भाई-बहन समझने लगे, तो बहुत बड़ा कार्य होगा।

मेरा इस कहावत में विश्वास है कि हमें दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिये, जैसा हम उनसे अपने प्रति चाहते हैं। जिन बस्तियों को हमने अभी देखा है, वे मनुष्यों के लिये बिलकुल उपयुक्त नहीं हैं। रहने का एक ऐसा भी धरातल है जहां मनुष्यता को धक्का पहुंचाये बिना हम आ सकते। ये बस्तियां उससे भी नीची कोटि की हैं। मैं चाहता हूं कि उस स्थान को एक सुन्दर स्थान बनाया जाय, यह धब्बा सबसे पहले मिटाया जाय। मैंने सुना है कि इन भाइयों और बहनों को अच्छी रहने की जगह देने का प्रबन्ध पहले से हो रहा है। परन्तु तुम मुझसे सहमत होगे कि ऐसा करने में समय का बहुत बड़ा हाथ है। लोगों को ऐसा कहने का अवसर न दो कि ये बस्तियां देर से बनीं।

धर्म के ठेकेदारों से

सम्प्रदायवाद

अपने जीवन के संध्या-काल में मैं कोई ऐसा साम्प्रदायिक काम हाथ में नहीं ले सकता, जिससे आम जनता के हित को कोई नुकसान पहुंचे। इस समय अगर ऐसा मालूम होता है कि मैं एक साम्प्रदायिक काम हरिजन आन्दोलन में लगा हुआ हूं, तो आप इस बात का भरोसा रखिये कि इस साम्प्रदायिक काम के पीछे मेरे दिल की गहराई में यह इच्छा मौजूद है कि इससे सारी जनता और सब लोगों का भला हो। क्योंकि मैं यह नहीं मानता कि मनुष्य जीवन इस तरह की अलग-अलग कोठरियों में बैठा हुआ है, जिनमें एक की दूसरे को हवा न लग सके। इसके खिलाफ मनुष्य समाज का जीवन एक ऐसी समूची चीज है कि जिसके न अलग-अलग टुकड़े हैं और न टुकड़े किये जा सकते हैं। इसलिये जो चीज एक के सच्चे भले की है या हो सकती है, वह जरूर सबके भले की होगी। यह कसौटी कभी धोखा नहीं दे सकती। जो काम भी इस कसौटी पर पूरा न उतरे उसमें उन सब लोगों को हिस्सा लेने से इन्कार कर देना चाहिये, जिनके दिल में सबकी भलाई की इच्छा है।

मैंने अपनी जिन्दगी भर सबकी भलाई के इस उसूल में विश्वास किया है। इसीलिये मैंने कभी भी कोई ऐसा काम, साम्प्रदायिक या राष्ट्रीय हाथ में नहीं लिया, जो सारी मनुष्य जाति के हित को नुक़सान पहुंचाने वाला हो। इस व्यापक लक्ष्य को अपने सामने रखते हुये वर्षों पूर्व मैंने इस बात को देख लिया था कि आजकल हिन्दुओं में जिस तरह की छुआछूत बढ़ती जाती है वह केवल हिन्दुओं की अपनी आगे की भलाई के रास्ते में ही रुकावट नहीं है, बल्कि आम तौर पर सब लोगों की तरक्की के रास्ते में भी रुकावट है। ऊपर निगाह से देखने वाला आदमी भी इस बात को अच्छी तरह देख सकता है कि इस छुआछूत ने न सिर्फ ऊंची जातियों के हिन्दुओं को ही, बल्कि हिन्दुस्तान में रहने वाले सब धर्मों के लोगों को, मुसलमानों, ईसाइयों और दूसरों को भी, उसी तरह जकड़ रखा है. जिस तरह सांप किसी को अपनी कुंडलियों में जकड़ लेता है।

छुआछूत के इस पिशाच से युद्ध करने में मेरे दिल के अन्दर की इच्छा यह नहीं है कि केवल हिंदुओं हिन्दुओं में ही भाई चारा कायम हो जावे, मेरे अन्दर की इच्छा यह है कि मनुष्य मनुष्य के बीच भाई चारा कायम हो जावे, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी और यहूदी सब एक समान शामिल हों। क्योंकि मुझे दुनिया के सब बड़े-बड़े मजहबों की बुनियादी सच्चाई में पूरा विश्वास है। मुझे विश्वास है कि यह सब मजहब उन लोगों के लिये जरूरी थे, जिन्हें ये ईश्वर से मिले। मुझे इस बात का भी विश्वास है कि अगर हम सब अलग-अलग धर्मों की किताबों को उन धर्मों के मानने वालों की निगाह से पढ़ें, तो हमें पता चलेगा कि इन सब धर्मों की जड़ एक ही है। और यह सब एक दूसरे के सहायक और मददगार हैं।

इसीलिये मैंने बिना संकोच के सब गैर-हिन्दुओं से प्रार्थना की है कि वे इस काम में मेरी सफलता के लिये ईश्वर से दुआ करें और इस तरह मदद करें। मुझे अपने इस मिशन में जीवित विश्वास है। मेरा यह विश्वास जिन्दगी भर के और दूर दूर तक के तजुरबों पर कायम है। इसीलिये खूब अच्छी तरह सोच-समझ कर बिना किसी तरह के संकोच के मैं यह कहता रहा हूं कि अगर हम हिन्दू लोग छुआछूत के इस पिशाच को सर्वथा नष्ट न कर देंगे तो यह पिशाच हिन्दुओं को और हिन्दू धर्म, दोनों को खा डालेगा। और जब कभी मैं आपसे यह कहता हूं कि आप अपने दिलों से छुआछूत को निकाल बाहर करें तो मैं आपसे यही चाहता हूं कि इससे कम कुछ नहीं कि आप मनुष्य मात्र की बुनियादी एकता और मनुष्य मात्र की बराबरी में विश्वास करें। ईश्वर एक है। वही सबका ईश्वर है और मैं आप सबसे कहता हूं कि आप इसे भूल जाइए कि एक ईश्वर के बच्चों में ऊंच-नीच का कोई भेद हो सकता है।

हरिजन, १६ फरवरी, १६३४ ई०

अस्पृश्यता में से मुसलमान बने

हिन्दुस्तान में आज करोड़ों मुसलमान हैं, यह बहुत सोचने की चीज़ है, वे हैं कौन? वे कोई अरबिस्तान से नहीं आये। अरबिस्तान से जो आये वे करोड़ों की तादाद में नहीं थे। करोड़ों की तादाद में जो मुसलमान बने वे सब के सब हिन्दू थे। या कहो कि वे बुद्धिस्ट बौद्ध थे। तो बुद्धिस्ट और हिन्दू में फर्क क्या पड़ा है? मेरे पास तो कोई फर्क है नहीं। बादशाह खान ने मुझसे कहा कि हम तो पहले बौद्ध थे, पीछे इस्लाम में आये। इसलिये जो हमारी पुरानी सभ्यता थी उसे हम भूल थोड़े ही गये हैं। उसे भूल कैसे सकते हैं। उन्होंने बताया कि हमारे जो देहात पड़े हैं उनके नाम भी पहले संस्कृत में थे। अब हमने उनका नाम बदल दिया है। यह सब किया, लिबास बदला, सब कुछ बदला, लेकिन जो चीज़ हममें पड़ी थी, उस को हम नहीं बदल सकते हैं। उसे कैसे भूल सकते हैं? और पीछे यहां मद्रास में, बंगाल में क्या सब जगह, जिधर जाओ वहां, सब के सब आपके हिन्दू पड़े थे। आप पूछो जैसा कि मैं अपने दिल को पूछता हूं वे खुद इस्लाम में आये। क्यों आये? वे इस्लाम में आये, इसके लिये गुनहगार मैं। प्रायश्चित्त आपको करना है, मुझको करना है। हां, अगर उन्होंने अच्छा काम किया और हिन्दू धर्म से भी बुलन्द धर्म ले लिया, तो पीछे हम भी उसके साथ चलें, हमारे ही दादा-परदादा के वक्त, चार पीढ़ी कहो, पांच पीढ़ी कहो, छः पीढ़ी कहो, लेकिन ये हमारे लोग थे। वे सब हिन्दू थे और मुसलमान बने। मैंने हिन्दू धर्मियों को सारे हिन्दुस्तान में घूमकर बताया है कि याद रखो आप लोगों में बड़ी दुष्टता है, आपने अस्पृश्यता को धर्म का हिस्सा मान लिया है, उसका नतीजा क्या हुआ? एक हिस्सा हमारा पंचम वर्ण बन गया। वर्ण चार, हमने पांच बनाये और वह पांचवां अति शूद्र कहा जाता है। वे हमसे बाहर हैं। उनका खाना भी अलग है। हमारे बीच में नहीं रह सकते, उन्हें तो हमारा गुलाम रहना चाहिये। उसमें से पीछे वे मुसलमान बने। तो सब ऐसे नहीं थे। पीछे तो काफी ब्राह्मण भी मुसलमान बने। काफी तादाद में

क्षत्रिय भी बने और वैश्य भी बने। लेकिन वे थोड़ी-थोड़ी तादाद में ही बने। आज करोड़ों की तादाद में जो मुसलमान बन गये हैं, उसका हिसाब तो यह है जो मैंने बताया। वे अस्पृश्यता में से मुसलमान बने।

नई दिल्ली, ३० सितम्बर, १९४७ ई०

हरिजनों से बर्ताव

अस्पृश्यता-निवारण के मानी हरिजनों को छूना इतना ही नहीं, लेकिन उनको हमारे रिश्तेदारों जैसे समझना अर्थात् जैसे हमारे भाई-बहनों से बर्तते हैं, ऐसे ही उनसे बर्तना। न कोई ऊंच है, न कोई नीच।

२८ नवम्बर, १९४४ ई०

हमने अनेक जातियां पैदा कीं

आज मैं आप लोगों को हरिजनों के बारे में कहूंगा। वह तो हमारे लिये शर्म की बात है कि रोहतक में, रोहतक जिले में कहो, हर जगह हरिजन पड़े हैं। वहां तो जाट लोग पड़े हैं। शायद अहीर भी पड़े हैं। उनके दिल में ऐसा हुआ कि हरिजन हैं, वे हमारे गुलाम हैं, जो कुछ काम लेना है,लेंगे। वहां पर हक की बात आ गई, वे तो जन्म से गुलाम हुये हैं। पानी चाहिये तो दें, खाना खायें तो ठीक है, नहीं तो हक से ले नहीं सकते। इसको मैं तकबरी अभिमान मानता हूं। जब अंग्रेजी सल्तनत थी तब चलती थी और अब वह चीज़ ज्यादा बन गई। बेचारे हरिजन गरीब हैं तो मेरे पास आये और कहा कि हम पर ऐसी गुजर रही है तो क्या हम गुलामी में रहें, कि मर जायं या रोहतक छोड़ दें या क्या करें? अभी वे छोड़ भी नहीं सकते, यह समझने लायक बात है। यदि वे रोहतक छोड़ते हैं तो दूसरे लोग मरेंगे, क्योंकि उनका काम बिगड़ता है, लेकिन हरिजन को गुलामी ही करनी है तो ऐसा हो जाता है। तो वे बेचारे आ गये, मदरसे में पढ़ते हैं, कोई आगे पढ़ता है, कोई पीछे है, उद्योग भी सीखते हैं, लेकिन वे लोग जो नाराज कर रहे हैं, उनको क्या कहें? अब तो हम ऐसे हो गये हैं कि हम सोचते नहीं कि हम कहां जा रहे हैं। अंग्रेजी सल्तनत चलती थी तब डरते थे कि हमको मार-पीट डालेंगे। अब वह सल्तनत चली गई तो कौन क्या कर सकता है? जज के सामने पेश किये जायेंगे, तो जज को भी डरा सकेंगें। जज क्या कर सकता है? अब ऐसी तकबरी पैदा हो गई है। इसका नतीजा यही आता है कि हरिजन तबाह हो जाता है। तो मैंने उन लोगों से कहा कि आप बापा ठक्कर बापा, के पास जाइये, उन्होंने तो हरिजनों और आदिवासियों की सेवा करने के लिये जन्म लिया है। वे हरिजनों के लिये सब कुछ करते हैं। तो वे गये और पीछे मेरे पास आये और मुझको सुनाया कि बापा साहब कुछ नहीं करते हैं। मैं तो समझ गया कि वे क्या चाहते हैं। वे यहीं बैठे हैं। मैंने कहा कि आप डाक्टर गोपीचन्द के पास जाइये। वे प्रधान मंत्री बन गये हैं तो क्या, पहले तो हरिजन सेवक संघ का सब काम करते थे।

आज आने वाले थे तो मैंने कहा उनसे मिलूं। मिला, लेकिन वहां जो लोग जालिम बन गये हैं, मजबूर करते हैं, हठीले बन गये हैं तो क्या करना? आज अंग्रेजी सल्तनत तो है नहीं, वैसा कर भी नहीं सकते हैं, तो वे करें क्या? तो मैंने सोचा कि आज मैं हरिजनों की करुण कथा सुनाऊं। हम इतना भी नहीं कर सकते हैं। आज हमारा धर्म क्या है? आज तक हम उन्हें अछूत, गुलाम मानते आये हैं, वह अधर्म किया। गलती की और पाप किया, उसके प्रायश्चित के रूप में हरिजन सेवक संघ बना, संघ ने बहुत काम भी किया है। सब हिन्दुओं ने ऐसा नहीं किया, करोड़ों की संख्या में हिन्दू, सब हिन्दुओं ने तो उसे अपनाया भी नहीं है। अगर सब हिन्दुओं ने अपना लिया होता तो मुझे यह करुण कथा क्यों सुनानी पड़ती। अंग्रेजों के राज्य में तो करते थे, उनको गाली देते थे कि अगर ये नहीं होते तो हम अच्छे हो जाते, लेकिन अब तो वे चले गये, हम अब अच्छे हैं या बुरे? मैं तो कहूंगा कि पहले से ज्यादा बुराइयां आ गईं, हम ज्यादतियां तब करते थे और अब भी करते हैं, पहले तो मुसलमानों पर ज्यादतियां कीं। यह भी पाप किया, पाकिस्तान है, यह भूल जाओ, उसका ख्याल मत करो। समझो कि अगर एक आदमी पाप करता है, तो क्या हम भी करें। सोचोगे तो मालूम होगा कि वह बुरा है, एक बुराई से दूसरी बुराई पैदा होती है। हमने काफी लोगों को मार डाला है, हमारे दिल में झूठी हिम्मत आ गई है कि मारो क्रिस्तियों को, पीछे हम जाटिस्तान, अहीरिस्तान, हर एक अपने-अपने स्थान बनायेंगे। लेकिन हिन्दुस्तान कोई नहीं बनायेगा। हरिजनों को तो अपनाना ही चाहिये। वे तो हम जैसे हिन्दू हैं, वह पंचम जाति तो है नहीं। पंचम वर्ण तो हिन्दू में है नहीं। चार वर्ण हैं, उनमें एक नीचा और दूसरा ऊंचा तो है ही नहीं। इन चारों में ऐसा है कि एक धर्म सिखाता है, दूसरा रक्षा करता है, तीसरा तिजारत करता है घर भरने के लिये नहीं, अपने लिये करोड़ों रुपया पैदा करने के लिये नहीं, प्रजा के लिये भले ही पैदा करे, और चौथा प्रजा की सेवा करता है। लेकिन चारों साथ साथ खड़े रह सकते हैं, बैठ सकते हैं। अगर शूद्र है, वह बैरिस्टर बन जाय, तो वह बैरिस्टरी नहीं कर सकता, ऐसी बात नहीं है। वह बैरिस्टर होकर भी सेवा कर सकता है। जो धर्म सिखाता है, वह भी सेवा करता है, तिजारत करता है, नौकरी करता है, वह सेवा करता है और झाड़ू लगाता है, वह भी सेवा करता है, ये चारों सेवा हैं, सेवाक्षेत्र बन गया है। पीछे जो धर्म है उसको ज्यादा सीखना पड़ता है, इसका मतलब यह नहीं है कि वह अगर उस काम को छोड़ कर दूसरा काम करता है तो पाप करता है। वह उस काम को नहीं कर सकता है, ऐसी बात नहीं है। इसी तरह हमने अनेक जातियां पैदा कीं और अब पंचम वर्ण पैदा करते हैं तो हमारी गलती है, दुष्टता है। अगर हम अपने-अपने धर्म के मुताबिक चलें तब तो हो सकता है। आज हमारे हाथ में बागडोर आ गई है। तो हिन्दू सिख सब अपने-अपने धर्म के अनुसार चलें तो मैं समझता हूं कि सबका मन चल सकता है। मैंने भी समाप्त कर दिया और यह भी समाप्त हो गई।

नई दिल्ली, २३ नवम्बर, १९४८ ई०

शूद्रों का हक़

मुझे यह जानकर दुख हुआ कि मैसूर राज्य में शूद्रों और अछूतों को संस्कृत सिखाने से डरने वाले या संस्कृत सिखाना पाप समझने वाले पंडित मौजूद हैं। मुझे मालूम नहीं कि इसके लिये शास्त्र में कहां प्रमाण है कि शूद्रों को संस्कृत सीखने यानी वेद पढ़ने का अधिकार नहीं। पर सनातनी हिन्दू की हैसियत से मेरी पक्की राय है कि ऐसा कोई प्रमाण हो भी, तो हमें अपने शास्त्रों का अक्षरार्थ करके उसके मर्म को नहीं मारना चाहिये। जैसे इन्सान के विकास का सिलसिला जारी रहता है, वैसे ही शब्दों का विकास भी होता ही रहता है, और अगर किसी भी वेद की बात का दिल और दिमाग को न जंचने वाला अर्थ किया जाता है, तो वह छोड़ देने लायक है। अब मेरी समझ से हिन्दू धर्म मे अछूतपन के लिए कहीं भी जगह नहीं और हिन्दुस्तान के बहुत से हिस्सों में मैंने ऐसे बहुत से अछूत देखे हैं, जो छूत भाइयों से बुद्धि या नीति में जरा भी हलके नहीं हैं। आज जिन ब्राह्मण लड़के-लड़कियों ने संस्कृत के श्लोक सुनाये, उतना ही शुद्ध उच्चारण करने वाले आदि कर्णाटक लड़के तो मैंने मैसूर में बहुत देखे हैं। इसलिये मैं जोर के साथ मानने वाला हूं कि अछूतपन के लिये हिन्दू धर्म में किसी भी कारण से जगह नहीं हो सकती।

मैसूर, २१ अगस्त, १६२७ ई०

अछूतों की ग़ैर-हाज़िरी

इसके लिये मैं दोष आपको दूंगा, जो गैर-हाजिर है उनको नहीं। उनकी गैर-हाजिरी की वजह तो यह है कि सवर्ण कहलाने वाले हिन्दुओं ने अछूत हो जाने वाले लोगों को सदियों से दबाये रखा है, और सो भी धर्म या मजहब के नाम पर। यह हाल तो हरिजनों के इस्तेमाल के लिये बनाया गया है। जो हरिजन नहीं हैं, वे तो यहां हरिजनों की मेहरबानी से ही आ सकते हैं। इसलिये यहां आने वालों को चाहिये कि वे अपने साथ कम से कम एक हरिजन को जरूर ही लायें। अगर आप हरिजनों के साथ अपना मेल जोल बढ़ायेंगे, तो छूतछात बात की बात में मिट जायगी। मगर मुझे यह देखकर रंज होता है कि आपने दरअसल ऐसा किया नहीं। हरिजनों में कई बैरिस्टर और वकील हैं, मगर मैं देखता हूं कि आज वे भी मलाबार हिल के बंगलों में रह नहीं पाते हैं। मेरी छावनी में एक हरिजन लड़की स्वयंसेविका का काम कर रही है। वह बी० ए० में पढ़ती है। उसमें और दूसरी लड़कियों के दिखावे में ऐसा कोई फर्क़ नहीं, जो उनकी जात बताये। फिर क्या वजह है कि यह जानने भर से कि वह हरिजन है, उसके साथ दूसरी लड़कियों से अलग ढंग का बरताव किया जाय?

आन्तरिक परीक्षा का समय

ब्राह्मण धर्म को जो अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है उसका कारण है ज्ञान से प्रदीप, निस्पृहता, अन्तःकरण की शुद्धि और तीव्र तपस्या। हमारी आन्तरिक

परीक्षा का समय है। हम मोह में लिप्त हैं। घोर से घोर अस्पृश्य और पापपूर्ण विचारों का प्रवाह हमें स्पर्श कर रहा है और अपवित्र बना रहा है। ऐसी दशा में हम अपनी पवित्रता के घमंड में मस्त हो अपने उन भाइयों के स्पर्श के प्रभाव को तिल का ताड़ न बनावें जिन्हें हम अक्सर अपने अज्ञानवश और उससे भी अधिक अपने बड़प्पन की ठसक से, अपने से नीच समझते हैं।

धार्मिक संग्राम

अस्पृश्यता के साथ संग्राम एक धार्मिक संग्राम है। यह संग्राम मानव सम्मान की रक्षा के लिये है। यह संग्राम हिन्दू धर्म में बहुत ही बलवान सुधार के निमित्त है। यह संग्राम सनातनियों के खाईदार गढ़ों के विरुद्ध है।

ऊंच-नीच के भेद की सड़न

ऊंच-नीच के भेद की सड़न हिन्दू धर्म के मर्म को किस तरह कुतर कर खा रही है? जिन्होंने यह हकीकत मुझे बताई है, उन्हें वे लोग धिक्कारते हैं, जो उनसे ऊंचे कहलाते हैं। और ये खुद अपने को उन लोगों से ऊंचा और अलग समझते हैं, जो इनसे ज्यादा नीचे माने जाते हैं। इस तरह नीचे समझे जाने वाले अछूतों में भी ऊंच-नीच का यह भेद फैला हुआ है। कच्छ के सफर में मैंने देखा था कि हिन्दुस्तान के दूसरे भागों की तरह कच्छ में भी अछूतों में ऊंचे और नीचे का फर्क है, और ऊंची जाति के अछूत नीची जाति के अछूतों को छूने से भी इन्कार करते हैं। यही नहीं, बल्कि नीच जाति के अछूतों के बच्चे जिस पाठशाला में जाते हों, उस पाठशाला में वे अपने बच्चों को भेजने से साफ इन्कार करते हैं। जहां यह हालत हो,वहां आपस में रोटी-बेटी का व्यवहार की बात ही क्या की जाय?

वर्ण के फर्क का जो भयंकर गलत अर्थ किया गया है उसी के ये नमूने हैं। और एक तबका दूसरे तबके से अपने को ऊंचा मानने में जो अभिमान या फक्र करता है, उसका विरोध मुकाबला करने के लिये मैं अपने को भंगी कहलाने में आनन्द का अनुभव करता हूं। क्योंकि मेरी जानकारी में भंगी से नीची कोई जाति नहीं। बेचारा भंगी ही समाज में कोढ़ी है, जिससे सब दुरदुराते हैं, और फिर भी समाज की तन्दुरुस्ती के लिये यानी समाज को जीता रखने के लिये दूसरे किसी भी तबके से ज्यादा जरूरी तबका इस भंगी का ही है।

८ नवम्बर, १९२५ ई०

हरिजनों पर जुल्म

अखबारों में यह खबर छपी है कि रोहतक और दूसरी जगह के जाट हरिजनों की आजादी पर हमला करते हैं। यह कोई नई बात नहीं है।

ब्रिटिश हुकूमत में भी हरिजनों की आजादी में दस्तन्दाजी की जाती थी। फिर भी, आज नयापन यह है कि हमारी नई मिली आजादी में हरिजनों पर किया जाने वाला जुल्म घटने बजाय ज्यादा बढ़ गया

है। क्या हिन्दुस्तान का हर आदमी यह आजादी नहीं भोग सकता, फिर उसका समाजी दरजा कैसा भी क्यों न हो? कल तक हरिजन जैसा गुलाम और दबा हुआ था, वैसा ही क्या यह आज भी रहेगा? मेरी राय में एक बुराई दूसरी बुराई को जन्म देती है। पाकिस्तान में हमारे हिन्दू और सिक्ख भाइयों के साथ कितना ही बुरा बरताव किया गया हो, लेकिन जब हमने बदले की भावना से यूनियन के हमारे मुसलमान भाइयों के साथ बुरा बरताव किया, तो उसने हमारे ईसाइयों के साथ के बुरे बरताव को जन्म दिया। हरिजनों के साथ का हमारा बरताव भी यही बात कहता है। हरिजनों के साथ जिन्हें गलती से हरिजन कहा जाता है और जिनके साथ वैसा ही बरताव भी किया जाता है, बाकी के हिन्दू जो अन्याय करते हैं, उसे खत्म करने के लिये ही हरिजन सेवक संघ कायम किया गया है। अगर पिछले १५ अगस्त को हमारे देश में फेर बदल हुआ, उसके पूरे महत्व को हमने समझा होता, तो हिन्दुस्तान के छोटे से छोटे आदमी की चमक और उत्साह को महसूस किया होता। तब हम उन भयानक घटनाओं से बच जाते जिन्हें हम लाचार बन कर देखते रहे हैं। आज तो ऐसा मालूम होता है कि हर आदमी अपनी ही तरक्की के लिये काम करता है, हिन्दुस्तान की तरक्की के लिये कोई नहीं।

सिन्ध के हरिजन

सिन्ध के एक डाक्टर भाई लिखते हैं:—

"यहां हरिजन बेहाल हो रहे हैं। अगर यहां अकेले हरिजन ही रह जायं और दूसरे लोग चले जायं, तो हरिजनों को या तो मरना है, या गुलामी की जिन्दगी बसर करना और आखिर में मुसलमान होना है। यहां की हुकूमत बहुत सी बातें कहती है, मगर उनके मातहत लोग उन पर अमल नहीं करते।"

यह बहुत बुरी बात है। मगर हिन्दुस्तान में भी तो आज ऐसा बन गया है। सरदार और जवाहरलाल जी कहते हैं कि सब मुसलमानों की हिफाजत करनी है ताकि किसी को डर के मारे भागना न पड़े। मगर लोग नहीं मानते। कल ही मैंने आपको पानीपत की बात सुनाई। हमारे यहां जब ऐसा चलता है, तो पाकिस्तान को मैं क्या कहूं? कहते हैं, हरिजन वहां से आना चाहते हैं, मगर उन्हें आने नहीं दिया जाता। जो लोग पाखाना वगैरह साफ नहीं करते थे, उन्हें भी यह काम करना पड़ता है। आज तो भंगी चाहे तो बैरिस्टर बन सकता है। हमें भंगी चाहिये, इसलिये उसे भंगी का काम करना ही पड़ेगा, यह बुरी बात है। जगजीवनराम जी ने कहा है कि हरिजनों को पाकिस्तान सरकार को आने देना चाहिये, नहीं तो उन्हें वहां आजादी की जिन्दगी बसर करने देनी चाहिये। वह ऐसा कोई काम न करे, जिससे हिन्दू और सिक्खों के दिलों पर हमेशा की चोट रह जाय। मजबूर करके किसी का धर्म पलटा नहीं करवाना चाहिये और न किसी की लड़की भगानी चाहिये। सर सुवर्णसिंह ने कहा है कि हम ऐसी चीजों को बरदाश्त नहीं करेंगे, जो लोग

ऐसा कहते हैं कि हमने अपने आप धर्म पलटा किया है, वह भी आज मानने जैसा नहीं है ।

हरिजनों के लिये बिल्ले

मैंने कल एक बयान में देखा था कि श्री मंडल साहब और पाकिस्तान केबिनेट के कुछ दूसरे मेम्बरों ने यह तय किया है कि हरिजनों से ऐसे बिल्ले लगाने की आशा रखी जायगी जो उनके अछूत होने की निशानी हो। उन बिल्लों में चांद और तारे की छाप होगी। यह फैसला हरिजनों का दूसरे हिन्दुओं से फर्क दिखाने के इरादे से किया गया है। मेरी राय में इसका लाजमी नतीजा यह होगा कि जो हरिजन पाकिस्तान में रहेंगे, उन्हें आखिर में मुसलमान बनना पड़ेगा। दिली विश्वास और आत्मा की प्रेरणा से लोग धर्म बदलें तो उसके खिलाफ मुझे कुछ नहीं कहना है। अपनी इच्छा से हरिजन बन जाने के कारण मैं हरिजनों के मत को जानता हूं। आज एक भी हरिजन ऐसा नहीं है जो इस्लाम में शामिल किया जा सके। इस्लाम के बारे में वे क्या जानते हैं? न वे यही समझते हैं कि वे हिन्दू क्यों हैं। हर धर्म के मानने वालों पर यही बात लागू होती है। आज वे जो कुछ भी है, वह इसीलिये हैं कि वे किसी खास धर्म में पैदा हुये हैं। अगर वे अपना धर्म बदलेंगे, तो सिर्फ मजबूर होकर, या उस लालच में पड़कर, जो उन्हें धर्म बदलने के लिये दिखाया जायगा। आज के वातावरण में लोग खुद राजी होकर धर्म बदलें, तो भी उसे सच्चा या कानूनी नहीं मानना चाहिये। धर्म को जीवन से भी ज्यादा प्यारा और ज्यादा कीमती समझना चाहिये। जो इस सच्चाई पर अमल करते हैं वे उस आदमी की बनिस्बत ज्यादा अच्छे हिन्दू हैं, जो हिन्दू धर्म शास्त्रों का जानकार तो है, लेकिन जिसका धर्म संकट के समय टिका नहीं रहता।

अजमेर के हरिजन

अभी अजमेर में राजकुमारी बहन चली गई थीं। उन्होंने वहां की एक खतरनाक और हमारे लिये बड़ी शर्म की बात सुनाई। वहां जो हरिजन रहते हैं, उनसे वहां वाले काम लेते हैं और वे करते हैं। मगर जिस जगह वे रहते हैं, वह बहुत गन्दी और मैली है। वहां तो हमारी ही हुकूमत है। वहां के हिन्दू और सिख अमलदार इसी हुकूमत के मातहत काम करते हैं। क्यों उन्हें ख्याल नहीं आता कि ऐसा शर्म का काम हम कैसे करते हैं? वहां सफेद पोशाक पहनने वाले बहुत से हिन्दू हैं। वे खासा पैसा कमाते हैं और खुशहाली में रहते हैं। वे क्यों न एक दिन के लिये हरिजन बस्ती में जाकर रहें? वे अगर वहां जायें, तो उन्हें कय हो जायगी और उनमें से कोई तो शायद मर भी जायेंगे। ऐसी जगह इन्सानों को रखना, क्योंकि उनका यह गुनाह है कि वे हरिजनों के घर पैदा हुए, बहुत बुरी बात है। यहां दिल्ली में भी मैं हरिजनों की बस्ती में गया हूं। वह भी बहुत खराब है। मगर अजमेर उससे भी बदतर है। यह बड़ी शर्म की बात है। ऐसी शर्मनाक बातें हम लोग करते ही रहेंगे? हमने आजादी तो पाई,

लेकिन उस आजादी की तब तक कोई कीमत नहीं, जब तक हम इस तरह की चीजें बन्द नहीं कर सकते । यह एक दिन में बन्द हो सकता है। क्या हम हरिजनों को सूखी जगह में नहीं रख सकते? वे मैला उठाने का काम तो करें, लेकिन वे मैले में ही पड़े रहें, ऐसा तो नहीं हो सकता। हमारी तो आज अकल मारी गई है। हमारे पास हृदय नहीं रहा और हम ईश्वर को भूल गए हैं। इसीलिये तो गुनाह के काम करते जाते हैं। और पीछे हम एक दूसरे का ऐब निकालें, दूसरों को दोष दें और खुद निर्दोष बनें, यह बड़ी खतरनाक बात है।

मैं विजय के लिये रोता हूं

[१९२५ में गांधी जी ने काठियावाड़ का दौरा किया था, और उसी सिलसिले में राजकोट गए थे। राजकोट में प्रतिनिधि सभा ने उनको मान-पत्र भेंट किया था, और उसकी ओर से श्रीमान् ठाकुर साहब ने वह मान-पत्र गांधी जी के हाथों में दिया था। यह सोना का पानी चढ़ाए चांदी के एक भारी पात्र में था तथा उसमें गांधी जी की हिन्दू-मुसलिम ऐक्य, सत्य तथा अहिंसा के प्रति सेवाओं की प्रशंसा की गई थी। खद्दर कार्य या हरिजन सेवा का कोई जिक्र न था, यद्यपि गांधी जी ने इस दौरे में इन दोनों बातों पर काफी जोर दिया था।]

[मान पत्र पढ़े जाने के पूर्व कुछ शास्त्रियों ने गांधी जी को आशीर्वाद स्वरूप, इस अवसर के लिये रचे संस्कृत श्लोक पढ़े।]

दरबारगढ़ में आज पैर रखते ही मुझे अपने बचपन की एक घटना याद आ गई। घटना यहीं की है और तब से मुझे अभी तक याद है। उन दिनों तक रिवाज था कि राजा के यहां ब्याह पड़ने पर दूल्हनवाले राज्य में, ब्याह के पहले, एक डेपुटेशन भेजा जाता था। उस डेपुटेशन में मंत्रियों के लड़के शामिल होते थे। मेरे पिता उस समय मंत्री थे, पर वह कभी अपने लड़कों को नहीं भेजते थे। मैं जिस समय की घटना का वर्णन करता हूं, खानपुर और धर्मपुर ऐसा ही जत्था जाने वाला था। पर पिता जी ने हम लोगों को न जाने दिया। मेरी भली माता में सांसारिकता अधिक थी, और वह यह नहीं चाहती थीं कि इस पद के पुरस्कारों से हम वंचित रखे जायं। अतएव उसने मेरे भाई तथा मुझसे यह जोर दिया कि हम लोग स्वर्गीय ठाकुर साहब के पास जाकर रोने लगें, जब वह हमसे पूछें कि मामला क्या है, तो हम कह दें कि हम धर्मपुर जाना चाहते हैं। हमने इस सलाह के अनुसार काम किया और धर्मपुर नहीं बल्कि खानपुर भेजे गए। आज भी मैं अपनी सफलता और विजय के लिये रोऊंगा। मैं नाम, यश, संपति या पद के लिये नहीं रो रहा हूं। जिन शास्त्रियों ने मुझे आशीर्वाद दिया है, उन्होंने कहा है कि कीर्ति को उपयुक्त भर्ता न मिलने के कारण वह अभी तक अक्षत योनि कुमारी ही है, और उनका आशीर्वाद है कि वह लज्जाशीला सुंदरी अन्त में मेरा वरण करे।

ईश्वर करे, वह सदैव कौमार्य का सुख भोगे। यदि उसने मुझे चुना, तो मैं तो कहीं का न रहूंगा। इसीलिये मैं कीर्ति के लिये नहीं रो रहा हूं, मैं उन दो एक बातों के लिये रो रहा हूं, जिन्हें आपने मुझे नहीं दिया है।

मेरे विषय में आपने जो उदार तथा कृपालु भाव प्रकट किए हैं, उसके प्रति मैं आप लोगों का बड़ा कृतज्ञ हूं। ईश्वर करे, मैं उन शुभ कामनाओं के योग्य होऊं। मैं यह विश्वास कर अपने को प्रसन्न नहीं करना चाहता कि आपने मेरे विषय में जो कुछ कहा है, मैं उसके योग्य हूं। मैं उन लोगों में से हूं, जो ऐसे रहना चाहते हैं। ईश्वर करे, मैं आपकी प्रशंसा से, प्रतिष्ठा से अविचलित रहूं। इसलिये धन्यवाद देते हुए भी मैं आपसे दो एक बात की शिकायत कर देना चाहता हूं। जानबूझ कर या अनजान से आपने उन सब बातों का जिक्र ही अपने अभिनंदन में नहीं किया है। आपका यह कहना सत्य है कि सत्य तथा अहिंसा मेरे जीवन का प्रधान लक्ष्य सिद्धान्त हैं। इन दो जीवन लक्ष्यों के बिना मैं निर्जीव शव के समान हो जाऊंगा। पर मुझे यह देख कर आश्चर्य होता है कि आपने दो चीजों का एकदम जिक्र नहीं किया है, जिनका पालन, अनुकरण अहिंसा तथा सत्य के सिद्धान्त में अविभाज्यनीय है। मेरा मतलब खद्दर और अछूतोद्धार से है। एक प्रकार से ये दोनों बातें हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य से भी जरूरी हैं, क्योंकि बिना इनके हिन्दू-मसलिम ऐक्य हो ही नहीं सकता। जब तक हम हिन्दू धर्म को अछूत प्रथा के कलंक से मुक्त नहीं कर देते, तब तक वास्तविक हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य प्राप्त करना असंभव है।

एक अत्यन्त विचारशील मुसलमान ने मुझसे कहा था कि जब तक अछूत प्रथा हिन्दू धर्म में वर्तमान है, मुसलमान उस धर्म या उसके अनुयायियों का बहुत कम आदर कर सकते हैं। मैं अगणित बार कह चुका हूं कि शास्त्रों में अछूत समुदाय का कहीं उल्लेख मात्र नहीं है। शास्त्रों में यह कहीं नहीं लिखा है कि जुलाहे या भंगी अछूत हैं। मैं तो दोनों हूं। बचपन के समय मेरा मल साफ करने के कारण मेरी माता तो सचमुच भंगिन थी, पर इसी कारण वह भंगिन नहीं बन गई। तब फिर, इसी प्रकार की सेवा करने वाला भंगी अछूत क्यों कहा जाय? यदि संसार के सभी शास्त्री मेरे विरुद्ध हो जायं, फिर भी मैं घर की छतों पर खड़े होकर यह चिल्ला कर कहने के लिये तैयार हूं कि वे गलती कर रहे हैं, हिन्दू धर्म में अछूत प्रथा को स्थान देकर भूल कर रहे हैं।

इस संबंध में मैं एक बात और कह देना चाहता हूं, जिससे मुझे शोक और हर्ष दोनों हुआ। यह देख कर हर्ष होता है कि आज के कार्यक्रम का पहला कार्य शास्त्रियों के आशीर्वाद से प्रारंभ होता है। पर मुझे आश्चर्य होता है कि कहीं इसमें कोई झुठाई तो नहीं थी। क्या उन्होंने इस संबंध में मेरी कार्यवाहियों के प्रति स्वीकृति प्रकट की,

या उन्होंने केवल इस संबंध में ठाकुर साहब की सूचित या अनुमानित इच्छा का पालन किया, और मुझे आशीर्वाद दे दिया।

अछूतोद्धार संबंधी मेरे आन्दोलन का जिक्र न कर आपके आशीर्वाद की ध्वनि ही असत्य प्रतीत हुई। ठाकुर साहब, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि अछूतों के प्रति दयालु हों, अपने राज्य के दलित वर्गों से मित्रता करें। शबरी और गुह दोनों ही अनुमानतः अछूत थे, पर राम ने उनको अपना सखा बनाया था। मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि उनको स्कूल, मंदिर तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश का अधिकार दें।

बालचरों को विलायती खाकी पोशाक पहने देख कर मुझे घोर दुःख होता है। मुझे उम्मीद थी कि कम से कम ये लोग खद्दर पहने होंगे। यदि आपके बालचरों का पहनावा खद्दर का हो, और आपकी पुलिस खद्दर पहनती हो, तो दरिद्र, अछूत, निस्सहाय विधवा के दुःख को आप दूर कर सकते हैं। इसलिये ठाकुर साहब, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, और आपकी प्रतिनिधि सभा से अनुरोध करता हूं कि खद्दर पहनने का निश्चय करें, और राज्य के सभी कर्मचारियों के लिये खद्दर की पोशाक बनवायें। आपने मुझे एक कीमती भेंट दी है। मेरे पास न तो कोई तिजोरी है, न ऐसा मजबूत कमरा, जहां मैं इसको रख सकूं। न मेरे पास आदमी हैं, जो ऐसा कमरा या तिजोरी होने पर उसकी चौकसी रखें। इसलिये मैं ऐसी सभी कीमती चीजों को सेठ जमनालाल बजाज को दे देता हूं कि सार्वजनिक उपयोग के लिये वह इनकी रक्षा करें। पर मेरे पास खद्दर इकट्ठा करने के लिये काफी स्थान और कमरा है, इसलिये मैं जिससे मिलता हूं, खद्दर की भीख मांगता हूं। मैं लार्ड रीडिंग से भी यह अनुरोध करने में नहीं हिचकिचाता कि वह स्वयं खद्दर पहनें और अपने अर्दली को भी पहनावें।

ऐ सुयोग्य शासक ! आपकी तलवार एक शक्तिशाली निशानी है। आपका मार्ग आपकी तलवार की धार की तरह है। आप सत्य के मार्ग से एक बाल बराबर भी नहीं डिग सकते। यह इस बात का सदैव स्मरण दिलाता रहता है कि आपके राज्य में एक भी शराबी या अपवित्र आदमी या औरत नहीं रहना चाहिये। यह आपका कर्तव्य है कि जहां दुर्बलता हो, वहां शक्ति प्रदान कराएं, जहां गंदगी हो, वहां स्वच्छता का प्रवेश करायें। दलितों और दरिद्रों को अपना मित्र बनाइए। आपकी तलवार दूसरे की गर्दन के लिये नहीं, आपकी गर्दन के लिये है। आप अपनी प्रजा से कह सकते हैं कि ज्यों ही आप अपने अधिकार की सीमा के आगे बढ़ें, वह तलवार के घाट आपको उतार सकती है। मैं इन शब्दों में इसलिये आपसे बात कर रहा हूं कि आपके प्रति मैं अपना कुछ कर्तव्य समझता हूं। ठाकुर साहब, आपके पिता जी ने मेरे पिता जी को बिना शर्त कुछ भूमि की बख्शीश दी थी। इसलिये मैंने कुछ आपका नमक खाया था और मैं अपनी नमकख्वारी नहीं अदा करूंगा, यदि अवसर

पर राजा के स्पष्ट कर्तव्यों की ओर आपका ध्यान नहीं आकर्षित करूंगा। आपने मेरा जो सम्मान किया है, उसके प्रति मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूं। मैं सबसे बड़ा सम्मान यह समझता हूं कि दरिद्र, दलित तथा अछूत की सहायता की जाय। मैं आपसे यह सुनना चाहता हूं कि आपने ग्राम और स्कूलों में चर्खा चलवा दिया है, अपने हर विभाग में खद्दर चला दिया है, आपकी हर एक सार्वजनिक संस्था में अछूतों को प्रवेशाधिकार है। यह सुनते ही मैं दुगनी इज्जत महसूस करूंगा, और आपका सादर अभिवादन करूंगा। ईश्वर आपको प्रजा सेवा की शक्ति दे।

ऊंचे और नीचे

मैं आपको कैसे समझाऊं कि ऊंच-नीच का भेद नहीं रहता। मैं आपसे कहता हूं कि जैसे सीता व्यभिचारिणी से ऊंची नहीं थी, वैसे ब्राह्मण शूद्र से ऊंचा नहीं। क्या आप मानते हैं कि सीता ऊंची नहीं थी?

न, नहीं मानते। ऐसा भी कहीं हो सकता है?

हो सकता है। सीता के अपने मन में ऊंचेपन का भाव नहीं था। सीता जी को अपनी पवित्रता का ख्याल तक नहीं था, घमंड तो होता ही कहां से। और घमंड के बिना वे दूसरी स्त्री को अपने से नीची कैसे समझतीं? हिमालय बादलों के साथ बातें करता है, मगर उसे अपनी ऊंचाई का सपने में भी ख्याल नहीं, वह तो अपनी गहरी नम्रता में ही मग्न है। अगर उसे घमंड हो तो उसका चूरचूर हो जाय। इसी तरह वर्ण का अर्थ ऊंच-नीच दिखलाने वाला माप हो जाय, तो वर्ण एक गले को फांसी ही बन जाय। मैक्समूलर ने हिन्दू संस्कृति को समझा था। उन्होंने लिखा है — हिन्दुस्तान ने जीवन को कर्तव्य के रूप में ही देखा है, जब कि दूसरे देशों ने कर्तव्य और भोग को मिला दिया है। वर्ण का मतलब है हर एक को अपने अपने बड़ों की तरफ से मिला हुआ जीवन, कर्तव्य या जिन्दगी का फर्ज।

पश्चिम में जब लोग आम जनता की हालत सुधारने की बात करते हैं तो कहते हैं कि इन लोगों के रहन-सहन का माप ऊंचा करो। हम इस तरह की बात नहीं कर सकते। क्योंकि जहां अपना-अपना माप अपने अन्दर ही मौजूद है वहां बाहर वाला कैसे उसे ऊंचा कर सकता है। हम तो हर एक के लिये अपना फर्ज समझने और दिन दिन प्रभू के नजदीक पहुंचने का मौका बढ़ा सकते हैं।

आज तो आप इस सारे कर्तव्य वृक्ष की जड़ उखाड़ने बैठे हैं। मैं मानता हूं कि इस पेड़ के कई डाल पत्ते सड़े हुए हैं। उन सबको हमें काट देना चाहिए, पर जड़ में कुल्हाड़ी चलाना तो हरगिज जरूरी नहीं। आप जड़ में कुल्हाड़ी चलाने बैठे हैं, इसलिये आप अनाड़ी माली हैं। आपको अपने बाग की कद्र नहीं। जिस पेड़ ने आपको पोसा और छाया दी है, उस पेड़ को आप काटना चाहते हैं।

लेकिन साथ ही यह समझ रखिये कि पेड़ को काटने की आपकी कोशिश फिजूल है, क्योंकि जो सच्चे ब्राह्मण हैं वे तुम्हारी कुल्हाड़ी की चोटें सहा करेंगे और लहू झरते घाव पर घाव सह कर खड़े रहेंगे। यह बात सच है कि आज जैसे सच्चे ब्राह्मण बहुत थोड़े हैं। क्षत्रिय भी कहां हैं? वैश्य और शूद्र भी कहां हैं? आप यह समझते हैं न कि शूद्र होने में कुछ विशेषता है? आज तो हम सब गुलाम हैं। आज तो एक डायर आकर हमें कंपा देता है। इसलिये बेहतर तो यह है कि हम सब गुलामी में से निकल कर अपने वर्ण धर्म को समझने लगें। बहुतों को वैश्य बनना पड़ेगा, क्योंकि आज वैश्य के पैर तले सब कुचले जा रहे हैं।

जब मैं यह कहता हूं कि हम ब्राह्मण बनें, तो इसका यह मतलब नहीं कि जैसे हैं, उससे ऊंचे बनें। बल्कि यह है कि हम ब्राह्मण के ऊंचे सेवा धर्म के लायक बनें। आज तो हम हद से नीचे गिर गए हैं कि यह ब्राह्मण है और यह शूद्र है, यह ऊंचा है और वह नीचा है। इस भाषा में ही हमारी गाड़ी फंस गई है।

तिरुपुर, ६ नवम्बर, १९२७ ई०

क्या हम भी ऐसा करेंगे ?

एक सिन्धी भाई का पत्र आ गया है। उसने तो अपना नाम दिया है, लेकिन मैं उसका नाम नहीं देना चाहता हूं। उनकी तरफ से कोई मनाही नहीं है। सिन्ध के एक डाक्टर की बात तो मैंने बताई ही थी, नाम नहीं दिया था। उन्होंने बताया था कि वहां हरिजनों को कितनी तकलीफ है। वह पकड़ लिये गए। इसी कारण पकड़ लिये गए या दूसरे कारण, यह मैं नहीं जानता हूं। कई आदमी जो हरिजनों की सेवा करते हैं, वे पकड़ लिये गए हैं, ऐसा सिलसिला आज सिन्ध में चलता है। हां, इतना है कि खून नहीं होता है, लेकिन जैसा मैंने कल बतलाया, वह खून से बदतर है, क्योंकि खून तो एक का हुआ, वह खतम हुआ, पीछे सब समझ जायेंगे कि इतना हुआ। लोगों को परेशान कर मारना, यह तो बदतर बात है। एक आदमी को पकड़ लिया और छोड़ दिया, मुमकिन है दूसरों को भी छोड़ दें। लेकिन तो भी इस तरह लोगों को पकड़ना बुरी बात है। मैं पाकिस्तान की हुकूमत पर इल्जाम नहीं लगाता हूं, लेकिन मैं पाकिस्तान को सावधान करता हूं कि अगर वे इस तरह करते हैं कि कोई हरिजनों की सहायता करता है, इसलिए

गिरफ्तार कर लें, तो सिन्ध में कार्यकर्ता कैसे रहेंगे ? हरिजन लोग कैसे रह सकते हैं ? हां, यह चीज पहले अंग्रेजों के जमाने में तो चलती थी। क्या हम भी ऐसा करेंगे ?

नई दिल्ली, ६ दिसम्बर, १९४७ ई०

मन्दिर और कुएँ

मन्दिर प्रवेश सत्याग्रह

१—पिछले सप्ताह वर्किंग कमेटी की बैठकों के सिलसिले में ही मंदिर प्रवेश सत्याग्रह क संबंध में कई प्रश्नों पर मैं केरल के तथा अन्य कांग्रेस कार्यकर्ताओं से परामर्श कर रहा था। उन परामर्शों के साथ क्या बातचीत हुई, यह देना तो व्यर्थ होगा, पर मैं नीचे कुछ बातें लिख रहा हूं, जिनको प्रश्नों का उत्तर समझना चाहिये। उत्तर इस प्रकार लिखे जाते हैं कि प्रश्नों को देने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। यद्यपि यह सत्य है कि अछूतोद्धार का राजनीतिक महत्व है, पर इसका प्रधान महत्व धार्मिक है, और इसका सुलझाना हिन्दुओं का काम है. अतएव उनके लिये इस प्रकार से यह कार्य राजनीति से भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। अर्थात् छूतों का अछूतों के प्रति कर्तव्य किसी राजनीति विषमता के कारण भी कम नहीं हो सकता। अतएव वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति के कारण अछूतोद्धार के प्रश्न को टाल देना किसी प्रकार से भी संभव नहीं है।

२—किसी धार्मिक तथा सत्यनिष्ठ और न्यायपूर्ण कार्य में सुधारक को हर प्रकार की कठिनाई का सामाना करना पड़ता है, और उसे अधिकारी समुदाय का अस्थायी वैर भी सहना पड़ता है। इसलिये जिनका यह विश्वास है कि अछूत प्रथा एक अभिशाप है, और उसको हर हालत में मिटा देना चाहिए, वे इस भय से कि उनके ऐसों की संख्या नितांत कम है, अपना प्रयत्न लेशमात्र भी कम नहीं करेंगे।

३—यदि वर्तमान पुजारी काम करना छोड़ दें, और अभी तक जिस खास वर्ग से पुजारी मिलते आए हैं, उनमें से कोई दूसरा पुजारी न मिले, तो मैं यह निस्संकोच कहने के लिये तैयार हूं कि पुजारी के गुणों से संपन्न किसी भी दूसरी जाति का आदमी नियुक्त कर लेना चाहिए। जहां तक मुझे मालूम है, अधिकांश पुजारी अपनी जीविका के लिये इसी कार्य पर इतने आश्रित हैं कि वे काम नहीं छोड़ेंगे, हड़ताल नहीं करेंगे। पूजा का अधिकार पैत्रिक है, इस बात में मुझे भी संदेह नहीं है। पर यदि कोई पुजारी स्वयं यह अधिकार छोड़ देता है, तो इसमें दोष उसी का है।

४—यह मंदिर के अधिकारी मंदिर का एक कोना अछूतों को दे दें, उनको वहीं से दर्शन या पूजा का अधिकार दे दें, तो यह पर्याप्त नहीं समझना चाहिये। अन्य अब्राह्मणों के लिये जो बाधाएं नहीं हैं, वह इन ब्राह्मणों के लिये नहीं होनी चाहिये। किन्तु जो लोग अछूतों से नहीं मिलना चाहते, उनके लिये दूर पर एक कोना खाली कर देना चाहिये। इस प्रकार वे ही स्वयं अछूत हो जाते हैं।

५—मंदिरों के घेरे को तोड़ना ठीक नहीं। यह एक प्रकार का हिंसाजनक कार्य होगा। यह सत्य है कि घेरे निर्जीव हैं, पर उनको बनाने वाले हाथ तो सजीव हैं।

ऊपर लिखी बातों से यह स्पष्ट है कि मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह करने वाले के लिये मंदिरों में विश्वास करना आवश्यक है। मंदिर-प्रवेश एक धार्मिक अधिकार है। इसलिये किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मंदिर प्रवेश सत्याग्रह नहीं कहा जा सकता। वैकम सत्याग्रह में जब जार्ज जोजेफ जेल गए, मैंने उनको सूचित किया था कि वह भूल कर गए। वह मुझसे सहमत हुए, तुरन्त क्षमा याचना की और छूट गए। मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह छूत हिन्दू का प्रायश्चित है। उसने पाप किया है, इसलिये इन अछूत भाइयों सहधर्मियों को मंदिर ले जाने की चेष्टा करते हुए वह स्वयं दंड भोगने को तैयार हैं। अतएव अहिंदू केवल सत्याग्रह के अलावा और सहायता दे सकते हैं। उदाहरणार्थ यद्यपि अन्य समुदाय के लोग भी गुरुद्वारा आन्दोलन के समय सिखों को सहायता कर रहे थे, पर अखंड पाठ में विश्वास रखने वाले ही सिख सत्याग्रह करने के अधिकारी थे, और सत्याग्रह कर रहे थे।

६--मेरी सम्मतिमें केवल अछूतों को ही सत्याग्रह नहीं करना चाहिए। इसका अगुआ छूत सुधारक होना चाहिए। यह आवश्यकता की बात है। एक ऐसा समय भी आ सकता है, जब अछूत स्वयं सत्याग्रह कर सकते हैं। यहां मैंने जो विचार प्रकट किए हैं, उनका भावार्थ यह है कि सत्याग्रह प्रारंभ करने से पहले छूत हिन्दुओं में पर्याप्त जागृति तथा क्रियाशीलता का हो जाना आवश्यक है। यह शास्त्र की सफलता सार्वजनिक सम्मति पर निर्भर करती है। अतएव इसके उपयोग के पहले प्रायः सभी ज्ञात पुराने उपायों का प्रयोग करना होता है।

७--एकदम निजी संपत्तिवाले मंदिरों में प्रवेश का अधिकार नहीं मांगा जा सकता। जब कोई अपने निजी मंदिर को जनता के उपयोग के लिये दे देता है पर अछूतों को आने की मनाही कर देता है, उसी समय वह मंदिर निजी संपत्ति नहीं रह जाता।

८--कुछ की सलाह है कि सत्याग्रह द्वारा मंदिर-प्रवेश रोक दिया जाय, और यह कार्य व्यवस्थापक कानूनों के हाथ छोड़ दिया जाय। मैं इस सम्मति से बिलकुल ही असहमत हूं। यह तो नियम ही है कि व्यवस्थापक सभा के कानून, कम से कम प्रजातन्त्र में तो अवश्य ही, सार्वजनिक मत के अनुसार ही बनते हैं, और सार्वजनिक सम्मति की रचना के लिये सत्याग्रह से बढ़ कर शीघ्र उपाय मैं कोई जानता ही नहीं।

जहां हरिजन नहीं जा सकते वे मंदिर नापाक हैं

मुझसे यह पूछा गया है कि दक्षिण भारत में तो हरिजनों के लिये इतना काम हो गया और तामिलनाड तथा आन्ध्र के सब बड़े-बड़े मन्दिर हरिजनों के लिये

खोल दिये गए, परन्तु यू० पी० का क्या हुआ? यू० पी० में हरिद्वार पड़ा है। क्या हरिद्वार के मंदिरों में अछूत जा सकते हैं? दक्षिण भारत की त्रावणकोर रियासत में तो बहुत पहले से ही यह सब हो गया था। वहां के दीवान सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर आज तो हमसे बिगड़े हुए हैं और बिगड़े हुए हैं भी या नहीं, यह आज तो मैं नहीं जानता। मगर तब उन्होंने वहां के महाराजा को समझाकर अब से बहुत पहले ही कानून द्वारा अपनी रियासत में अछूतपन को मिटा दिया था। यू० पी० में हरिद्वार के अलावा काशी विश्वनाथ भी है, जहां गंगा जी में स्नान करने से मोक्ष मिलता बताया जाता है। वहां के मंदिरों में हरिजन जा सकते हैं, ऐसा मैं नहीं कह सकता। परन्तु मैं तो यही कहूंगा कि जहां हरिजन नहीं जा सकते वे मन्दिर नापाक हैं।

नई दिल्ली, १७ जुलाई, १९४७ ई०

रामेश्वरम् के मंदिर

मैं आपको रामेश्वरम् की ओर ले जाना चाहता हूं, जहां से कहा जाता है कि रामचन्द्र जी ने शिलाओं का तैरता हुआ पुल बनाया था, ताकि उनकी सेना समुद्र पार करके लंका पहुंच जाय, जिसे उन्होंने जीता, लेकिन अपने पास नहीं रखा और उन्होंने उसे रावण के भाई विभीषण को सौंप दिया। वही मशहूर मन्दिर आज हरिजनों के लिये खोल दिया गया है। इस प्रकार दक्षिण में कोचीन के मन्दिरों को छोड़ कर तमाम मशहूर मन्दिर हरिजनों के लिये खुल गए हैं। राजा जी ने खास-खास मन्दिरों की जो सूची मुझे दी है, वह इस प्रकार है :—

मदुरा, तिन्नावेली, चिदम्बरम्, श्रीरंगम्, पलनी, तिरुलिरेन, तिरुपति, कांची और गुरुवय्यूर।

यह सूची इतने पर ही खत्म नहीं हो जाती है। मद्रास असेम्बली के हरिजन स्पीकर अन्य हरिजनों और दूसरे पूजा करने वालों को साथ लेकर इनमें से अक्सर सब मन्दिरों में घूमे हैं। शिक्षित हरिजन और अन्य लोग इस सुधार के महत्व को शायद कबूल न करें। लेकिन हम इसका महत्व कम न करें, क्योंकि वह सुधार बग़ैर खूनखराबी के हुआ है। हमें उम्मीद रखनी चाहिये कि कोचीन भी त्रावणकोर, तामिलनाड और ब्रिटिश केरल की तरह अपने मन्दिरों को हरिजनों के लिये खुलवा देगा।

मन्दिर-प्रवेश सुधार तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक मन्दिर जरूरी अन्दरूनी सुधार से वास्तविक रूप में पवित्र न हो जायं।

नई दिल्ली, ३० जून, १९४७

जानकी देवी प्रार्थना मंदिर

··मुझे खेद है कि मैं इस मौके पर बोल नहीं सकता। कई बरसों से यह मेरा अभिप्राय बन गया है कि मृत्यु के बाद धनिक लोग काफी निकम्मा खर्च करते हैं, जिसमें न कुछ उपयोग रहता है, और न धर्म। इसलिये आज का अवसर मुझे प्रिय लगता है। जानकी देवी पुण्यात्मा थीं। उनका स्वर्गवास थोड़े ही दिन पहले हुआ। उनका परिवार बड़ा और प्रसिद्ध है। सब भाइयों ने मिल कर यही निश्चय किया कि जानकी देवी की पुण्य स्मृति में कुछ हरिजन सेवा का ही कार्य किया जाय और उन्होंने निर्णय किया कि हरिजन उद्योगशाला में उसके संचालकों की सम्मति से एक प्रार्थना मंदिर बनवाया जाय। इस मंदिर की नींव रखने का शुभ कार्य मेरे सुपुर्द किया गया है। आपके समक्ष मैं नींव डालता हूं और आशा करता हूं कि इस मंदिर से इस संस्था के विद्यार्थियों को लाभ होगा और दूसरे सज्जन भी इसी तरह अपने प्रियजनों के स्वर्गवास निमित्त हरिजन सेवा करेंगे।

··मैं चाहता हूं कि इसके द्वारा हमारी धार्मिक भावना बढ़े। प्रार्थना में हम जितना भी समय दे सकें, अच्छा है। यहां तक कि अन्त में हम स्वयं प्रार्थनामय बन जायं। यह मन्दिर यदि धार्मिक भावना बढ़ायेगा तो जिन भाइयों ने इसके बनवाने में योग दिया है, उनकी भक्ति सफल होगी। चांदी वालों की स्वर्गीय माता श्री जानकीदेवी को शान्ति मिले, हम सबकी यह सद्भावना सफल हो।

अस्पृश्य तो वे हैं जो परमात्मा होते हैं

रतलाम से यह तार आया है कि यहां के जो महाराजा हैं उन्होंने ऐसा एलान निकाल दिया है कि अब यहां जिम्मेदार प्रजातन्त्र स्थापित होगा और उसकी मार्फत राज्य चलेगा। राजा तो उसके एक ट्रस्टी की तरह बन कर रहेंगे। वहां जो हरिजन सेवक संघ के मंत्री हैं, वे मुझको लिखते हैं कि इस राज्य में अब हरिजनों और दूसरे लोगों में कोई भेद नहीं रहेगा। जो महाराजा का मन्दिर है, उसमें वे गए और एक बड़ी जमात तथा हरिजन लोग भी उनके साथ गए। राज्य के जितने मंदिर हैं, उनमें आज से अस्पृश्यता नहीं रहेगी। जो कुएं हैं उनसे हरिजन पानी भी भर सकते हैं। ये सब बातें जानकर मुझे बहुत अच्छा लगा और अगर हिन्दू धर्म को आगे बढ़ाना है तो उसमें घृणा और अस्पृश्यता कैसे रह सकती है? अस्पृश्य तो वे हैं जो पापात्मा होते हैं। एक सारी जाति को अस्पृश्य बनाना एक बड़ा कलंक है। अस्पृश्यता की जड़ हरेक हिन्दू के दिल से निकल जानी चाहिये। जैसा रतलाम में हुआ है, वैसा और सब जगह भी, जहां पर हिन्दुओं की तरफ से राजतन्त्र चलता है, अस्पृश्यता को मिटा देना चाहिये। तब तो हिन्दू धर्म को हम बहुत ऊंचे ले जायंगे। अगर अस्पृश्यता की जड़ चली गई तो क्या पीछे हम

मुसलमानों को या दूसरे धर्मवालों को अस्पृश्य बतायेंगे? जो अस्पृश्यता का मैल हृदय में भरा है, यह तो उसी मैल का नतीजा है जो आज हम भुगत रहे हैं। इसलिये रतलाम में जो हुआ है वह मुझको अच्छा लगा।

नई दिल्ली, २६ अक्तूबर, १९४७ ई०

गुरुवयूर

गुरुवयूर की ऐतिहासिक या तवारीखी लड़ाई का हाल कौन नहीं जानता। इस मंदिर को हरिजनों के लिये खुलवाने की गरज से श्री केलप्पन ने उपवास या फाका करने का फैसला किया था। मेरे बहुत समझाने और यह इतमीनान दिलाने पर कि मैं इसके लिये लड़ूंगा, वे उपवास करने से रुके थे। उसके बाद ही मन्दिर में जाने वाले सवर्ण हिन्दुओं की राय ली गई, और एक बहुत बड़ी तादाद में लोगों ने हरिजनों के लिये मन्दिर खोल देने के हक में अपनी राय दी। मुझे जामोरिन से भेंट करने का मौका भी मिला। जामोरिन ने फिर बहुत अदब के साथ अपनी वही बेबसी जाहिर की। केरल के दूसरे मन्दिर खोले जा चुके हैं। त्रावणकोर ने भी अपना एक सरकारी फरमान जारी करके एक बढ़िया मिसाल पेश की है। मीनाक्षी और पालनी के मन्दिर भी खुल चुके हैं। फिर गुरुवयूर ही क्यों बन्द रहे? अब तो इसके लिये सत्याग्रह की भी जरूरत न रहनी चाहिये। सूबे की सरकार का काम है कि वह देखे कि मन्दिर में जाने वाले ज्यादातर लोगों की जो राय है, वह सिर्फ कानूनी दिक्कतों की वजह से बेकार न बन जाय। सचमुच यह बहुत ही अफसोस की बात है कि आज भी हिन्दुस्तान में ऐसे मन्दिर मौजूद हैं जो खामखा अछूत माने जाने वाले हिन्दुओं के लिये बन्द हैं।

नई दिल्ली, २९ अक्तूबर, १९४६ ई०

पंढरपुर का मंदिर

आज आपने जो भजन सुना है वह एक हरिजन बालक का है। उसका कंठ मधुर है वह तो आपने देख ही लिया। रामधुन भी उसने अच्छी तरह चलाई। यह मेरा एक ही अनुभव नहीं है। मैं तो हरिजनों के बीच रहता हूं और सारे हिन्दुस्तान में तो मैंने बहुत दफा यात्रा की है और सारे देश के हरिजनों के संपर्क में आया हूं। अगर हम खुद नहीं जानते हों और हमको कोई परिचय न दे तब तो हम हरिजन को किसी तरह पहचान नहीं सकते। जो गुण इस इन्सान में हैं, वे सब उनमें भी हैं। कुछ दुर्गुण भी हैं, लेकिन वे उन्हीं में हों, ऐसा थोड़ा ही है और लोगों में भी हैं। सद्गुण और दुर्गुण आखिर सब में भरे हैं। लेकिन हरिजनों में मुझको एक विशेषता तो लगती है, और वह यह है कि अगर किसी हरिजन बालक

को थोड़ा संगीत शिक्षण देते हैं तो वह आगे बढ़ जाता है। चूंकि हमने उनको अब तक गिरा कर रखा है, इसलिये अब अगर उनसे कोई मुहब्बत से बात करता है और मोहब्बत से काम सिखाता है तो पीछे वे ध्यान रखकर मेहनत करते हुए आगे बढ़ जाते हैं। धनी लड़के तो गुमान में पड़े रहते हैं और यह सोचकर कि हमारे माँ-बाप के पास काफी पैसा है, अपने काम में ध्यान नहीं देते। लेकिन चूंकि हरिजन लोग आमतौर पर गरीब हैं और उनको अछूत मानते हैं, कोई उनको अपने नजदीक नहीं बैठने देता, तब अगर कोई उनको अपने पास बिठाते हैं, साथ ही खाते पीते हैं और सब कुछ करते हैं, तब उनका हृदय भर जाता है। सब तो ऐसे नहीं हैं। मैंने ऐसे हरिजनों को भी पाया है कि उनके लिये चाहे जितना करो, उसकी कोई कीमत ही नहीं करते। ऐसे दूसरे भी पड़े हैं, सब कोई ऐसे हरिजन थोड़े हैं। उनको हिन्दू धर्म ने सैकड़ों वर्षों से गिराने की कोशिश की है, लेकिन तो भी वे अपने धर्म पर कायम रहते हैं और दूसरों की निस्बत उनमें अधिक गुण पाये जाते हैं।

पंढरपुर का नाम तो आपने नहीं सुना होगा। महाराष्ट्र में वह यात्रा का एक स्थान है। वहां जो मूर्तियां हैं उनके लिये उतनी दन्तकथा भरी है कि मैं उन सबको सुनाना नहीं चाहता हूं। तो वहां का मन्दिर हरिजनों के लिये खुलता नहीं था। इस पर साने गुरुजी वहां जाकर बैठ गये और मंदिर के ट्रस्टियों से कहा कि जब सब जगह के मंदिर खुल गये हैं तो यह क्यों न खुले? जब वह नहीं खुला तब उन्होंने उपवास शुरू कर दिया। साने गुरू जी तो भक्त पुरुष थे, तो वे उसको कैसे मरने देते? उनके दिल में ज्ञान आया, रहम आया, लेकिन कहा कि हम क्या करें, कैसे खोलें, उसमें काफी टेकनिकल रुकावटें हैं, जिन्हें दूर करना होगा। पीछे मावलंकर जी वहां पहुंचे और उनके कहने सुनने पर उन्होंने उपवास छोड़ दिया, लेकिन इस शर्त पर कि अगर वह नहीं खुला तो उनका फाका फिर चलेगा। अब मेरे पास तार आया कि जो बिल बनने वाला था और वह मंदिर हरिजनों के लिये खुल गया, सबने राजी होकर खोला और हजारों की तादाद में लोग रह गये कोई विरोध नहीं हुआ, एक दो का रहा होगा शायद हजारों में। तो पंढरपुर का इतना भारी मंदिर इतनी मेहनत के बाद आखिर खुल कर रहा। जितनी ज्यादतियां हमने हरिजनों पर की हैं अगर वे हट जायं तो सारा हिन्दुस्तान बहुत ऊंचे चला जाता है। लेकिन आज तो हम गिरते जा रहे हैं, क्योंकि हममें वैमनस्य भर गया है। हिन्दुस्तान कोई हमेशा के लिये तो दीवाना बना नहीं रहेगा, ऐसी उम्मीद करके मैं बैठा हूं, आगे भगवान जाने।

नई दिल्ली, ५ नवम्बर, १९४७ ई०

कुएं खुल गए

श्री कल्याण जी मेहता के एक पत्र के उत्तर में गांधी जी लिखते हैं :—

यह खुशी की बात है कि ये कुयें खुले। मगर उससे ज्यादा शरम की बात यह है कि अभी बेशुमार कुयें ऐसे मौजूद हैं, जिन पर हरिजन पानी नहीं भर सकते। इसलिये अगर ऊपर के भाई के पत्र के अनुसार दूसरों ने भी कुयें खोलने का उत्साह दिखाया, तो शर्म का बोझ कुछ हल्का हो जायगा।

कुछ लोगों ने हरिजनों के साथ बैठ कर खाना भी खाया। उन्हें मुबारकबाद देते हुये भी यह पूछने को जी चाहता है कि बस, इतने ही ?

नई दिल्ली, ६ अक्तूबर, १९४६ ई०

कीमती जिन्दगी को बचा लें

श्री रामुलु एक अज्ञात और गरीब कांग्रेसी हैं। वह मानव जाति के सेवक हैं और नल्लौर में काम करते हैं। हरिजनों के हित के लिये वह अकेले वहां मेहनत करते रहे हैं। एक जमाना था, जब नल्लौर में छुआछूत को मिटाने और दूसरे समाजी काम करने के बारे में बड़ी-बड़ी उम्मीदें रखी जाती थीं। नल्लौर के नजदीक एक आश्रम कायम किया गया था, लेकिन कुछ ऐसे कारण पैदा हो गये जिनसे वहां के कामों को धक्का पहुंचा। देशभक्त श्री कोन्डा वैंकटप्पैया बहुत बूढ़े हो जाने पर भी शुरू से इन कामों के प्रेरक रहे हैं और आज भी हैं। ऐसे इस जगह में श्री श्रीरामुलु छूतछात को जड़ मूल से उखाड़ने के लिये चुपचाप और लग कर काम करते रहे हैं। उनकी यह कोशिश रही है कि नल्लौर का एक मंदिर हरिजनों के लिये खुल जाय। कुछ दिन हुये, उन्होंने मुझसे पूछा था कि अगर दूसरी सब कोशिशें बेकार हो जायं, तो क्या मंदिर खुलवाने के हक में लोगों की भावना को जगाने के लिये वे उपवास कर सकते हैं? मैंने उनको अपनी मंजूरी भेज दी थी। अब नल्लौर के लोगों में इस सवाल को लेकर एक खलबली मच गई है। लेकिन कुछ लोगों ने मुझ से कहा कि मैं श्री श्रीरामुलु को सलाह दूं कि वे अपने उपवास मुल्तवी करें, जिससे वे कानूनी दिक्कतें दूर की जा सकें, जिनके बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं उनको ऐसी कोई सलाह नहीं दे सका हूं। चूंकि मैं चाहता हूं कि मानव जाति का एक शान्त सेवक आम जनता की जानकारी और उसके समर्थन के अभाव में मर न जाय, मैं समूचे हिन्दुस्तान के नहीं, तो कम से कम दक्षिण भारत के पत्रकारों से यह प्रार्थना करता हूं कि वे इस मामले में दिलचस्पी लें और खुद इसकी सच्चाई का पता लगावें, और अगर मेरी बात हकीकत में सच निकले, तो वे खुले तौर पर उनको जाहिर करके उन लोगों को शरमिन्दा करें, जो इसका विरोध कर रहे हैं, और उनसे सही काम करा लें और यों एक कीमती जिन्दगी को बचा लें।

बम्बई, १६ मार्च, १९४६ ई०

ऊपर का बयान १६ मार्च को जारी किया गया था। आज श्री श्रीरामुलु का एक तार इस मतलब का मिला है कि जनता के आग्रह को मानकर उन्होंने अपना उपवास छोड़ दिया है। अगर उपवास की समाप्ति का यह मतलब है कि जनता ने बिना देर लगाये मन्दिर को खुलवाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है, तब तो मुझे इसकी खुशी हो सकती है। प्रोफेसर रामचन्द्र राव का जो पत्र मुझे मिला है, उससे पता चलता है कि मन्दिर खुलवाने में सचमुच की एक कानूनी दिक्कत मौजूद है और मन्दिर के मुख्य ट्रस्टी ने वायदा किया है कि वह जरूरी कानूनी कार्रवाई के बाद मन्दिर खोल देंगे। उम्मीद है कि मन्दिर में आने वाली जनता की अपनी सम्मति से राजी रजामन्दी से, मन्दिर खुल सकेगा। श्री रामुलु के उपवास के कारण जो व्यापक सहानूभूति पैदा हुई है, उसका यही एक मतलब लगाया जा सकता है।

पूना, १७ मार्च, १९४६ ई०

अपनी गलती को दुरुस्त कर लूं

मैंने कुछ दिन हुए तामिलनाड और मालाबार के मन्दिरों के बारे में कहा था जो हरिजनों के लिये खोले गए थे और खास तौर से रामेश्वरम् के मन्दिर का उल्लेख किया था। वह एक बहुत बड़ा मन्दिर है और उसके बारे में वहां काफी वहम भरा हुआ था। उनका खयाल था कि हरिजनों के अन्दर जाने से मन्दिर अपवित्र हो जायगा। परन्तु आज के एक खत में मुझसे कहा गया है कि मैंने आन्ध्र देश के तिरुपति मन्दिर का नाम नहीं लिया जो बहुत विशाल और प्राचीन मंदिर है। उसमें यह भी लिखा है कि यदि मैं अपनी गलती दुरुस्त कर दूं तो आन्ध्र देश के लोगों को बहुत सन्तोष मिलेगा। मैं तो इस मन्दिर की महिमा बराबर जानता था, परन्तु मेरी दृष्टि में तामिलनाड और आन्ध्र जुदा-जुदा सूबे नहीं हैं। आज तो कुछ आबहवा ही ऐसी बिगड़ गई है कि सब अलग-अलग रहना चाहते हैं। तो भी मुझे अच्छा लगा कि मैं अपनी गलती को दुरुस्त कर लूं।

नई दिल्ली, १५ जुलाई, १९४७ ई०

सुधार के विरोधियों से जरूर लड़िये

एक प्रश्न के उत्तर में गांधी जी ने कहा—

..आप सुधार के विरोधियों से जरूर लड़िये और उनसे कहिए, अगर आप लोग धन और ठाट-बाट के पीछे पड़ेंगे, विद्वान् नहीं बनेंगे और हमें सच्चा धर्म नहीं सिखायेंगे तो हम आपको ब्राह्मण नहीं कहेंगे।

तब ब्राह्मण आपकी जरा भी मुखालिफत नहीं कर सकेंगे। सुधार कराने के लिये आप सख्त हलचल कीजिए, और जहां किसी भी अब्राह्मण के लिये कोई रुकावट हो, उन स्कूलों और मन्दिरों को छोड़ दीजिए, । इस बात का आग्रह रखिये कि मन्दिरों के पुजारी नेकचलन, विद्वान या आलिम और धन के लालच से दूर हों। अगर पुराने मन्दिर अछूतों के घुसने देने से इन्कार करें तो आप नये मन्दिर बनाइये।

अब सवाल दूसरे वर्णों के साथ खाने का। इसके लिये मैं किसी से लड़ने नहीं जाऊंगा। लेकिन जहां खाने के मौके पर जैसा कोई भेद माना जाय वहां उस खाने में शरीक होने से बचूंगा।

फिर मैं अछूतों के साथ भाई चारा बढ़ाऊंगा, उनके साथ अपने सगे भाई जैसा बर्ताव करूंगा, और तमाम छोटी छोटी जातियों और उप-जातियों को तोड़ डालूंगा, और चुनांचे जब मैं अपने लड़के का व्याह करूंगा तो कोशिश करके दूसरी उपजातियों में से लड़की ढूंढ़ लूंगा। आज हम भद्दी रूढ़ियों से जितने जकड़े हुये हैं कि आप न यहां से गुजरात में जा बसने को लड़की देंगे और न गुजरात को लड़की तामिलनाड में बसने को लेंगे।

इसके बाद मैं अछूतों को धार्मिक शिक्षा या मजहबी तालीम के तौर पर हिन्दू धर्म के और नीति धर्म के उसूलों की मामूली जानकारी कराऊंगा। आज तो वे बेचारे महज जानवरों की सी जिन्दगी बिता रहे हैं। मैं उन्हें निषिद्ध या ममनूअ खुराक छोड़ने और पाक व साफ जीवन बिताने को समझाऊंगा। आप इन बातों को आसानी से बढ़ा सकेंगे और इनमें से एक बड़ा रचनात्मक कार्यक्रम पैदा कर सकेंगे।

१८ दिसम्बर, १९२७ ई०

बंगाल के अछूत

एक बंगाली संवाददाता पूछते हैं:—

१—बंगाल में अछूत कुएं से पानी नहीं खींचने पाते, न तो वे उस कमरे में जाने पाते हैं, जिसमें पीने का पानी रखा रहता है? इस दुर्गुण को दूर करने का क्या उपाय है? यदि हम उनके लिये अलग कुएं खुदवाएं या अलग स्कूल खोलें, तो इस दुर्गुण को स्वीकार ही कर लेना होगा।

२—बंगाल के अछूतों की मनोवृत्ति में एक विचित्रता यह है कि वे यह तो चाहते हैं कि ऊंचे वर्ण वाले उनके हाथ का छुआ पानी पिएं, पर वे स्वयं अपने नीचे वर्ण या समुदाय वालों का छुआ पानी नहीं पीते। उनकी इस भूल का सुधार कैसे कराया जाय।

३—बंगाल की हिन्दू महासभा तथा साधारण बंगाली हिन्दू जनता लोगों से कहती फिरती है कि आप गांधी जी अछूतों के हाथ का छुआ पानी उचित नहीं समझते।

मेरा उत्तर है—

१—इस दुर्गुण को दूर करने का एक उपाय यह है कि हम उनके हाथ से पानी पीना शुरू करें। मेरी समझ में उनके लिये अलग कुआं खोदने से यह बुराई स्थायी नहीं हो जायगी। अछूत प्रथा के प्रभाव को मिटाने में काफी समय लगेगा। इस भय से कि दूसरे उनको अपने कुएं पर चढ़ने न देंगे, उनके लिये अलग कुएं बना कर उनकी सहायता न करना अनुचित होगा। मेरा तो विश्वास है कि अगर हम अछूतों के लिये कुएं बनवायेंगे, तो बहुत से लोग उनका प्रयोग करेंगे। अछूतों में तभी सुधार होगा, जब सवर्णों का उनके प्रति भाव बदलेगा, तथा सवर्ण उनके प्रति अपना कर्तव्य पहचान जायेंगे।

२—जब उच्च वर्ण कहलाने वाले हिन्दू अछूतों को छूना शुरू कर देंगे, तो अछूतों में अछूत प्रथा का भी स्वाभाविक अंत हो जायगा। हमारा कार्य अछूतों में सबसे नीची श्रेणी से प्रारंभ होना चाहिये।

३—मैं नहीं जानता कि बंगाल की हिन्दू महासभा मेरे विषय में क्या कहती है। मेरी स्थिति यहां स्पष्ट है, मैं अछूतों को शूद्रों का अंग समझता हूं। चूंकि हम शूद्रों के हाथ का छुआ पानी पीते हैं, अछूतों के हाथ का पानी पीने में कोई एतराज नहीं होना चाहिये।

जातियों का अपराध

दक्षिण अफ्रीका में रंग तथा जाति भेद के कारण हम दंडित हो रहे हैं। भारत में हम हिन्दू अपने सहधर्मियों को जाति अपराध के कारण दंड देते हैं। सबसे बड़ा अपराध पंचमों ने किया है कि उसे छुआ नहीं जाता, देखा नहीं जाता, इत्यादि। हमारे इन दलित भाइयों की घोरतम दुर्दशा का पता मद्रास प्रेसीडेंसी कोर्ट के एक मुक़दमे से लगता है। साफ सुथरा कपड़ा पहने एक पंचम दर्शन की अभिलाषा से तथा किसी को जरा भी दुःख पहुंचाने का जरा भी विचार न रखते हुए एक मंदिर में जाता है। प्रति वर्ष वह मंदिर जाकर भगवान को प्रणाम कर आता था, किन्तु मंदिर के भीतर नहीं जाता था। पर गत वर्ष वह इतना प्रेम विभोर हो रहा था कि मंदिर के भीतर चला गया। जब उसे अपनी भूल याद आई, तो वह निषिद्ध स्थान में आ जाने के कारण डर कर मंदिर से भागा, पर उसे पहचानने वाले कुछ लोगों ने उसे पकड़ लिया और पुलिस के हवाले किया। जब मंदिर के अधिकारियों को इसका पता चला, तो उन्होंने मंदिर की शुद्धि करा ली। तब मुक़दमा चला। एक हिन्दू मजिस्ट्रेट ने अपराधी पर ७५ रुपये जुर्माना या

एक मास की कड़ी कैद का दंड दिया। उसने मजिस्ट्रेट के धर्म की बेइज्जती की थी। पर अपील की गई। अदालत में खूब तर्क-वितर्क हुआ। फैसला रोकना पड़ा। और जब सजा रद्द करदी गई, तो इस कारण नहीं कि बेचारे पंचम को मंदिर-प्रवेश का अधिकार था, प्रत्युत इसलिये कि छोटी अदालत बेइज्जती साबित नहीं कर सकी थी। यह न्याय, स्वत्व, धर्म या नैतिकता की विजय नहीं है।

अपील की सफलता से पंचम को यही तसल्ली प्राप्त हुई कि भूल कर मंदिर-प्रवेश उसके लिये निषिद्ध नहीं है, वह यदि भक्ति के अतिरेक में मन्दिर के भीतर चला गया, तो उसे जेल नहीं जाना पड़ेगा। पर यदि वह या उसके साथी फिर कभी मंदिर जाने की जुर्रत करेंगे, तो यह बहुत संभव है कि उनसे घृणा करने वाले उन्हें मार न डालेंगे, तो कम से कम बहुत कठोर दंड तो दिया ही जायगा।

यह एक विचित्र परिस्थिति है। दक्षिण अफ्रीका में अपने देश भाइयों के साथ व्यवहार हमें पसन्द नहीं। हमें उसका दुःख है। हम स्वराज्य स्थापित करने के लिये उत्सुक हो रहे हैं। पर हम स्वयं अपना अन्याय नहीं देखते कि अपने सहधर्मियों पंचम अंश के साथ कितना बुरा व्यवहार कर रहे हैं। उनके साथ हम कुत्तों से भी बुरा व्यवहार कर रहे हैं; क्योंकि कुत्ते भी अछूत नहीं होते। हममें से कुछ तो उन्हें सदैव अपने साथ रखते हैं।

हमारी स्वराज्य की योजना में अछूत का क्या स्थान होगा?

यदि उस समय उन पर कोई बाधा, बंधन या रुकावट न रह जायगी तो हम आज से ही इसकी घोषणा क्यों नहीं कर देते? और यदि आज हम शक्तिहीन हैं, ऐसा नहीं कर सकते, तो क्या हम स्वराज्य के समय और भी शक्तिहीन न हो जायंगे?

हम इन प्रश्नों की ओर से अपना कान बन्द कर दें, आंख मूंद लें, पर पंचमों के लिये ये बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। यदि हम सभी इस सामाजिक तथा धार्मिक निरंकुशता को दूर करने के लिये नहीं उठ खड़े होते, तो फैसला हिन्दू धर्म के ही विरुद्ध होगा।

इस दिशा में बहुत कुछ किया गया है, पर जब तक मंदिर-प्रवेश के कारण पंचमों पर फौजदारी का मुकदमा चल सकता है, जब तक पंचमों को मंदिर में प्रवेश और उपासना का अधिकार नहीं दिया जा सकता तथा स्कूल, कुएं और अन्य सार्वजनिक स्थान खोल नहीं दिये जाते, तब तक हमारा पाप ज्यों का त्यों बना ही रहेगा। दक्षिण अफ्रीका में हम युरोपियनों से जो अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं, हमें वे ही अधिकार पहले अपने देश में पंचमों को प्रदान करना चाहिये।

पर इस मामले से कुछ तसल्ली भी होती है। सजा रद्द कर दी गई। यदि बहुत से सवर्ण हिन्दुओं ने कथित अपराधी का पक्ष न लिया होता तथा उसकी सहायता न की होती, तो अपील की सुनवाई का प्रबन्ध नहीं हो सकता था। सबसे रोचक बात तो यह थी कि श्रीयुत सी० राजगोपालाचार्य अभियुक्त की ओर से पैरवी कर रहे थे, और मेरी समझ में असहयोग के सिद्धान्त का उन्होंने सर्वथा उचित उपयोग किया। यदि उनके हस्तक्षेप से अभियुक्त छूट सकता था, और फिर भी अदालत में जाकर यदि वह चुपचाप बैठ रहते, और मन में अपनी सहयोग की पवित्रता पर हर्ष मनाते रहते, तो वह उसकी सजा के अपराधी होते। पंचम को असहयोग के बारे में कुछ भी नहीं मालूम था। वह जुर्माने या कैद से बचने के लिये अपील कर रहा था। मैं चाहता हूं हर एक हिन्दू अछूत का मित्र बने, और धर्म के नाम पर उस पर अत्याचार करने वाली रीतियों से संघर्ष करने या छुड़ाने में उसकी सहायता करे। उसे यह कार्य अपना कर्तव्य समझना चाहिये। अछूत का मंदिर-प्रवेश नहीं, किन्तु मंदिर-प्रवेश निषेध मनुष्यता तथा धर्म का अपमान है।

सच हो तो भयंकर

गुजरात हरिजन सेवक संघ के सहायक मंत्रि श्री हेमन्त कुमार लिखते हैं कि कराड़ी को छोड़ कर दूसरे किसी गांव में हरिजनों के लिये न तो मंदिर खुले हैं और न सार्वजनिक कुओं का उपयोग ही वे लोग कर सकते हैं।

अगर यह सच है तो कहना होगा कि मैं बारडोली न जा सका, सो अच्छा ही हुआ। जो गुजराती लोग हरिजनों को अपना ही नहीं मान सकते, आज भी सार्वजनिक कुओं पर उन्हें पानी नहीं भरने देते, मन्दिरों में उन्हें जाने नहीं देते और किसी महामारी वगैरा के फैलने पर उसका दोष भी हरिजनों के मत्थे मढ़ कर उन्हें मारने को दौड़ते हैं, वे मेरा मान सम्मान किस लिये करेंगे? या उनके मान सम्मान को मैं कैसे हजम करूंगा और उसकी कीमत भी क्या होगी?

मैं तो मन, वचन और कर्म से अपने को हरिजन मानता हूं। इसलिये जहां हरिजनों का अपमान होता हो, वहां मेरा भी अपमान हो, तो उसे मैं मान समझूंगा, और अगर वहां मेरा मान सम्मान हो, तो उसको मैं अपना अपमान समझूंगा।

इसलिये मेरी तो यह मांग है। सवर्ण कहलाने वाले सभी गुजराती प्रायश्चित्त करें। वे हरिजनों को अपना समझें। तभी मैं मानूंगा कि उन्होंने बहुत कुछ किया है और वे स्वराज्य की रक्षा के लायक हो गए हैं। मुझे आशा है कि बारडोली तहसील के लोग तो मेरी इस बात को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे।

पूना, १० मार्च, १९४६. ई०

उचित प्रश्न

कुछ समय पूर्व अछूत प्रथा के संबंध में बंगाल से प्राप्त एक विचारपूर्ण पत्र मैंने प्रकाशित किया था। इस दिशा में लेखक अभी तक परिश्रमपूर्वक अनुसंधान कर रहा है। इस समय मेरे पास मद्रास से एक प्रश्नावली भेजी गयी है, जिससे लेखक को अनुसंधानवृत्ति का पता चलता है। यह बड़ा शुभ लक्षण है कि सनातनी हिन्दू इस कंटकाकीर्ण प्रश्न पर गवेषणा कर रहे हैं। उनके हृदय में जिज्ञासा तो उत्पन्न हो गई है। प्रश्नकर्ता की उत्कंठा में तो कोई संदेह हो ही नहीं सकता। किन्तु ये प्रश्न उसी ढंग के हैं, जैसा कि अपनी यात्रा के सिलसिले में मुझसे बारबार पूछा गया है। इसलिये इस आशा से कि मेरे उत्तरों से प्रश्नकर्ता का पथ प्रशस्त हो जाय और उसकी तथा उसके समान कार्यकर्ताओं और सत्य मार्ग के अवलम्बियों की जिज्ञासा शांत हो जाय, मैं संवाददाता द्वारा उपस्थित समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा करता हूं।

१—अछूत प्रथा को मिटाने के लिये क्या व्यावहारिक कार्य करना चाहिये?

(अ) ऐसे सभी स्कूल, सार्वजनिक पाठशालाएं, मंदिर, सड़क, कुएं आदि का मार्ग अछूतों के लिये खोल देना, जहां अब्राह्मण का जाना निषिद्ध न हो, और जो किसी एक खास समुदाय या जाति के लिये ही न निर्मित हों।

(ब) सवर्ण हिन्दुओं को चाहिये कि अछूतों की संतानों के लिये स्कूल खुलवाएं, कुएं खुदवाएं और उनकी हर प्रकार से आवश्यक निजी सेवा करें। उदाहरणार्थ मादक द्रव्य निषेध तथा स्वास्थ्य सुधार, सफाई आदि का कार्य करना और उनकी औषधि आदि से सहायता करना।

२—जिस समय अछूत बाधा एक दम उठ जायगी, अछूतों का धार्मिक पद महत्व क्या रहेगा?

धार्मिक महत्व वही होगा, जो अन्य सवर्ण हिन्दुओं का है। इसलिये उन्हें अति शूद्र न कह कर शूद्र कहा जायगा।

३—अछूत प्रथा के मिट जाने पर अछूतों तथा उच्च वर्ण के सनातनी हिन्दुओं का क्या संबंध रहेगा?

जैसा ब्राह्मण हिन्दुओं के साथ।

४—क्या आप सभी जातियों का सम्मिश्रण चाहते हैं?

मैं सभी जातियों को मिटा कर केवल चार भेद ही रहने दूंगा।

५—अछूत अपनी उपासना के लिये स्वयं मंदिर क्यों नहीं बनाते? वर्तमान मंदिरों में पैर अड़ाने से क्या लाभ ?

उच्च वर्ण वालों ने उनको इस योग्य नहीं छोड़ा है कि वे ऐसा कर सकें। यह सोचना कि वे हमारे मंदिरों में दस्तंदाजी करेंगे, इस प्रश्न को गलत ढंग से सोचना है। हम सवर्णों को मंदिरों में उन्हें भी प्रवेशाधिकार देकर सबके लिये मंदिरों का द्वार खोल देना चाहिये ।

६—क्या आप साम्प्रदायिक मताधिकार के समर्थक हैं? क्या आप के मत में शासन के सभी विभागों में अछूतों का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिये?

ऐसी बात नहीं है। किन्तु यदि अछूतों के लिये जानबूझ कर मार्ग बन्द कर दिया जाता है, और प्रभावशाली समुदाय उन्हें प्रवेश नहीं देता, तो इस अनुचित कार्य से स्वराज्य का मार्ग ही बन्द हो जायगा। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व मैं नहीं पसन्द करता, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं यह चाहता हूं कि मैं किसी सम्प्रदाय, समुदाय को प्रतिनिधित्व से वंचित रखूं। इसके विपरीत मेरी समझ में प्रतिनिधित्व प्राप्त वर्गों का यह कर्तव्य है कि वे अप्रतिनिधित्व प्राप्त समुदायों को उनके समुचित प्रतिनिधित्व का अवसर दें।

७—क्या आप वर्णाश्रम धर्म की परिपक्वता—क्षमता में विश्वास रखते हैं?

हां, किन्तु आज वर्ण की छीछालेदर हो रही है। आश्रम का पता नहीं है, धर्म का अर्थ गलत लगाया जा रहा है। हमें अपनी सम्पूर्ण प्रणाली को दुहराकर उसे धर्म संबंधी नवीनतम शोध की श्रेणी में लाना पड़ेगा।

८—क्या आपको इस बात में विश्वास नहीं है कि भारत कर्म-भूमि है? इस संसार में जिसका जिस दशा में जन्म होता है, वह उसके पूर्व जन्म के संस्कार तथा कर्म के अनुसार ही होता है?

किन्तु मैं इस बात में उस दृष्टि से विश्वास नहीं करता, जिस दृष्टि से संवाददाता पूछ रहा है। जो जैसा बोएगा, वैसा काटेगा। किन्तु भारत प्रधानतः कर्मभूमि है, भोग-भूमि नहीं।

९—क्या अछूतों की शिक्षा तथा समाज-सुधार हो जाने के बाद तब अछूतोद्धार होना उचित नहीं है? क्या ये बातें पहले नहीं जरूरी हैं?

किन्तु बिना छुआछूत मिटाए उनमें शिक्षा और सुधार हो ही नहीं सकता।

१०——क्या यह उचित तथा स्वाभाविक नहीं है कि मांसाहारी निरामिष से तथा निरामिष मांसाहारी से और अमदिरासेवी मदिरासेवी से दूर तथा पृथक रहने की चेष्टा करें ?

यह कोई आवश्यक बात नहीं है। मदिरा निषेध का समर्थक अपना यह कर्तव्य समझेगा कि मदिरा-सेवी के बीच में रह कर उसके दुर्गुण को दूर कराए। यही बात निरामिष के लिये भी कही जा सकती है।

११——क्या यह सत्य नहीं है कि एक शुद्ध व्यक्ति इस शुद्ध विचार से कि वह निरामिष-भोजी तथा मादक द्रव्य का सेवन करने वाला नहीं है किसी मदिरा-सेवी तथा मांसाहारी का साथ करने से अशुद्ध मांसाहार तथा मदिरा-सेवन के कारण हो जाता है ?

जो आदमी अज्ञानवश मांस, मदिरा का सेवन करता है, वह अपवित्र नहीं कहा जा सकता, पर दुराचार के साथ मेलजोल से सदाचारी भी दुराचारी हो सकता है, यह मैं मान सकता हूं, किन्तु मेरे कार्यक्रम में किसी को अछूतों के साथ मिलने या सहचार कराने की बात नहीं है।

१२——क्या यह सत्य नहीं है कि उपरिलिखित कारण से घोर सनातनी ब्राह्मण अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये केवल अछूतों से ही नहीं प्रत्युत अन्य जातियों से भी पृथक् रह कर, अपना एक अलग समुदाय बना कर ही रहते हैं ?

मेरी समझ में ऐसी आध्यात्मिकता का कोई महत्व नहीं है, जिसकी रक्षा के लिये उसे ताले में बन्द कर रखना पड़े। इसके अलावा वह दिन चले गए, जब लोग स्थायी एकांतवास द्वारा अपने गुणों की रक्षा किया करते थे।

१३——यदि आप अछूत प्रथा को मिटाने की सलाह देते हैं तो क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि अच्छा या बुरा, जैसा भी हो, आप भारत के वर्णाश्रम धर्म को ही अव्यवस्थित करना चाहते हैं ?

एक सुधार का प्रतिपादन कर मैं किसी धर्म या व्यक्ति के कार्य में किस प्रकार हस्तक्षेप करता हूं, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। हस्तक्षेप तो तब होता, जब मैं अछूतों को यह सलाह देता कि अछूतों से जबर्दस्ती स्पृश्यास्पृश्य का भाव उठवा दो।

१४——घोर सनातनी ब्राह्मणों के प्रति क्या यह हिंसा नहीं है कि आप बिना उन्हें इस बात का तथ्य समझाए और उनके हृदय में विश्वास जमाए उनके धर्म में हस्तक्षेप करते हैं ?

हिंसा का दोषी तो मैं हो ही नहीं सकता, क्योंकि बिना उनके हृदय में विश्वास जमाए मैं धर्म में हस्तक्षेप करना ही नहीं चाहता।

१५—अछूतों की बात तो जाने दीजिए। पर क्या ब्राह्मण अपने ही समाज के पृथक वर्गों के हाथ का भोजन न कर, शादी ब्याह न कर, अछूतपन के दोषी नहीं हैं? वे तो दूसरों को छूते भी नहीं?

यदि ब्राह्मण दूसरी जाति वालों को नहीं छूते, तो वे अछूतपन के पाप के भागी हैं।

१६—ब्राह्मण राजनीति से अधिक धर्म की चिंता तथा परवाह करता है, ऐसी दशा में यदि अहिंसात्मक असहयोग का मर्म पूरी तरह समझने वाला अछूत सत्याग्रह करता है, तो क्या वह सत्याग्रह हत्याग्रह में नहीं परिणत हो सकता?

यदि संवाददाता का तात्पर्य वाइकोम सत्याग्रह से है, तो वहां तो अछूतों ने अद्भुत आत्मसंयम दिखलाया है। प्रश्न के दूसरे भाग से तो ब्राह्मणों की ओर से हिंसा की संभावना प्रतीत होती है। यदि वे हिंसा का प्रश्रय लें, तो मुझे दुख होगा। मेरी सम्मति में, ऐसी दशा में, वे अपना धर्म भाव नहीं, किन्तु धर्म के प्रति अपनी उपेक्षा तथा अज्ञान ही व्यक्त करेंगे।

१७—क्या आपका यह कहना है कि संसार में सभी बराबर हो जांय, और जाति, धर्म, वर्ण तथा व्यवसाय के अनुसार कोई भेद न रह जाय?

मानवता के मौलिक अधिकारों को ध्यान में रखते हुए यही विधान उचित प्रतीत होता है। यह स्पष्ट देखने में आता है कि जाति, धर्म, वर्ण आदि का भेद रहने पर भी मनुष्यों में कुछ बातें समान रहती हैं, जैसे भूख, प्यास, इत्यादि।

१८—कर्मबंधन समाप्त कर संसार की माया ममता से परे पहुंचने वाली महान् आत्माओं ने जिस महान् दार्शनिक सत्य को अपनाया है, क्या वह साधारण गृहस्थ के लिये भी उपयुक्त होगा, जिसके लिये कर्मबंधन को त्यागने तथा जन्म-मरण से छुटकारा प्राप्त करने के लिये ऋषि मुनि एक निश्चित विधान बना गए हैं तथा जिस पर चलने से ही उसका कल्याण हो सकता है?

जन्मना किसी व्यक्ति को अछूत नहीं समझना चाहिए। यह एक सीधी सादी सच्ची बात है, जिसके भीतर कोई बहुत बड़ा दार्शनिक सत्य नहीं छिपा हुआ है। यह इतना सादा सत्य है कि केवल घोर सनातनी हिन्दुओं को छोड़ कर संसार के हर कोने में इसका मान तथा पालन होता है। मैं तो इस बात में विश्वास ही नहीं रखता कि ऋषियों ने छुआछूत की ऐसी शिक्षा दी थी, जिस प्रकार हम उसका पालन करते हैं।

हरिजन कहां हैं ?

हरिजनों की योग्यता

मेरे साथ आप लोगों को भी इस बात की खुशी होनी चाहिये कि अगर एक हरिजन को बराबरी का अधिकार दिया जाय, तो वह किसी सवर्ण हिन्दू या दूसरे आदमी से किसी तरह पीछे नहीं रहता। बेशक, मैंने कुछ बातों में तो, जैसे संगीत या दस्तकारी में, औसत हरिजन को ज्यादा योग्य और होशियार पाया है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि हरिजनों में कोई बुराइयां नहीं होतीं। लेकिन वे तो हर वर्ग के आदमियों में पाई जाती हैं। फिर भी, मैं यह तो कहना चाहूंगा कि अछूत की कड़ी पाबन्दियों के बावजूद अगर हरिजनों को दूसरों की तरह उन्नति का मौका दिया जाय, तो वे और जैसे ही आगे बढ़ सकते हैं। दूसरी खुशी की बात यह है कि पंढरपुर का पुराना और मशहूर मंदिर ठीक उन्हीं शर्तों पर हरिजनों के लिये खोल दिया गया है, जैसा कि दूसरे हिन्दुओं के लिये। इसका खास श्रेय श्री साने गुरु जी को है, जिन्होंने उसे हरिजनों के लिये हमेशा के वास्ते खुलवाने के मकसद से आमरण उपवास शुरू किया था। मैं मंदिर के ट्रस्टियों और पंढरपुर की व आसपास की जनता को इस सही कदम के लिये बधाई देता हूं। मुझे आशा है कि छुआछूत की आखिरी निशानी भी जल्दी ही गये जमाने की चीज बन जायगी। आज हिन्दुस्तान के दोनों हिस्सों में जो साम्प्रदायिक जहर फैला हुआ है उसे मारने में यह कदम बहुत मदद करेगा।

चमड़े का धन्धा

हमारे गांव का चमड़े का धन्धा उतना ही प्राचीन है, जितना कि स्वयं भारतवर्ष। यह कोई नहीं बतला सकता कि चमड़ा कमाने का यह धन्धा कब अनावृत हुआ। प्राचीन काल में तो यह बात हुई नहीं होगी। लेकिन हम जानते हैं कि आज हमारे यहां के इस एक अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक उद्योग ने सम्भवतः दस लाख आदमियों को पुश्तैनी अछूत बना दिया है। वह कुदिन ही होगा, जिस दिन से इस अभागे देश में परिश्रम को लोग घृणा की दृष्टि से देखने लगे होंगे और इस प्रकार उसकी उपेक्षा कर दी होगी। लाखों करोड़ों मनुष्य, जो दुनिया के हीरे थे और जिनके उद्योग पर यह देश जी रहा था, वे तो नीच समझे जाने लगे, और ऊपर से बड़े दीखने वाले थोड़े से अहदी आदमियों का वर्ग प्रतिष्ठित समझा जाने लगा। इसका दुखद परिणाम यह हुआ कि भारत को नैतिक और आर्थिक दोनों ही प्रकार की भारी क्षति पहुंची। यह हिसाब लगाना असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है कि इन दोनों में से कौन बड़ी हानि हुई। किसानों और कारीगरी के प्रति की गई इस अपराधपूर्ण लापरवाही ने हमें दरिद्र, मूढ और काहिल बनाकर ही छोड़ा। भारत के पास क्या साधन है? उसका सुन्दर जलवायु, उसके गगनचुम्बी पर्वत, उसकी विशाल नदियां और उसका विस्तृत समुद्र—ये सब ऐसे असीम साधन हैं कि अगर इन सबका पूरा-पूरा

उपयोग किया जाय, तो इस स्वर्ण देश में दारिद्र और रोग आवें ही क्यों ? पर जब से हमने शारीरिक श्रम से वृद्धि का संबंध छुड़ाया, तब से हमारी कौम का, सब तरह से पतन हो गया। दुनिया में आज हम सबसे अल्पजीवी, निपट साधनहीन और अत्यन्त पराजित माने जाते हैं। चमड़े के देशी धन्धे की आज जो हालत है, शायद वह मेरे इस कथन का सबसे अच्छा सबूत है। यह तो स्वर्गीय मधुसूदन दास ने मेरी आंखें खोलीं, नहीं तो मैं क्या जानता था कि देश के लाखों मनुष्यों के साथ कितना बड़ा जुल्म किया गया है। मधुसूदन दास जी ने राष्ट्र के इस पाप का प्रायश्चित एक ऐसा चर्मालय खोलकर किया, जिसमें चमड़ा कमाने का हुनर सिखाया जाता है। उनकी सब आशायें तो पूरी नहीं हुई, पर कटक में सैकड़ों जूते बनानेवालों को वे जीविका तो दे ही गये।

हिसाब लगाकर देखा गया है कि नौ करोड़ रुपये का कच्चा चमड़ा हर साल हिन्दुस्तान से बाहर जाता है और वह सबका सब बनी बनाई चीजों के रूप में फिर यहां वापस आ जाता है। यह देश का सिर्फ आर्थिक ही नहीं, प्रत्यु बौद्धिक शोषण भी है। चमड़ा कमाने और अपने नित्य के उपयोग में आनेवाली उनकी अनगिनती चीजों के बनाने की शिक्षा हमें आज कहां मिल रही है? इस हुनर में काफी वैज्ञानिक दिमाग चाहिये। हजारों रसायन विशारद चाहें तो इस महान उद्योग में अपनी आविष्कारिणी शक्ति का काफी उपयोग कर सकते हैं। उसके विकसित करने के दो रास्ते हैं। एक तो यह है कि जो हरिजन गांवों में रहते है, और गांव की खास बस्ती से दूर, समाज के संसर्ग से अलग, टूटे फूटे, गन्दे झोपड़ों में पड़े सड़ रहे हैं, और बड़ी मुश्किल से बेचारे किसी तरह पेट पाल रहे हैं, उनकी मदद करके उन्हें ऊंचा उठाया जाय। इसका यह अर्थ है कि गांवों के पुनःसंगठन में, अर्थात् कला शिक्षा, स्वच्छता, समृद्धि और प्रतिष्ठा की वहां पुनर्स्थापना करने में रसायन विशारदों की बुद्धि का उपयोग हो। रसायन शास्त्रियों को चाहिये कि वे चमड़ा कमाने की अच्छी से अच्छी वैज्ञानिक क्रियायें ढूंढ निकालें। गांव के रसायन को नम्रतापूर्वक इस कला पर अधिकार करना है। चमड़ा कमाने की अनघड़ कला गांवों में अभी जीवित है, पर वह उत्तेजना न मिलने से ही नहीं बल्कि दुर्लक्ष्य के कारण भी बड़ी तेजी से लुप्त होती जा रही है। उस कला को इन रसायन शास्त्रियों को सीखना और समझना चाहिये। उस अनघड़ तरीके को यकायक नहीं छोड़ देना चाहिये। पहले कम से कम इसकी अच्छी तरह परीक्षा तो होनी ही चाहिये। इस पद्धति से सदियों तक बड़ी अच्छी तरह काम चला है। अगर उसमें कोई गुण न होता तो उससे यह काम न चलता। जहां तक मैं जानता हूं, हमारे देश में एक शान्ति निकेतन में ही इस विषय की कुछ खोज बीन हो रही है। उसके बाद साबरमती आश्रम में इस काम का आरम्भ किया गया। शान्ति निकेतन का प्रयोग कितनी उन्नति कर गया है इसका मैं पता नहीं लगा सका। साबरमती आश्रम के स्थान पर अब जो हरिजन आश्रम है, उसमें इस काम के फिर से आरम्भ करने की पूरी संभावना है। यह शोध कार्य तो समुद्र के समान है, उसमें हमारे इन प्रयोगों को तो आप बिन्दुमात्र ही समझें।

गो-रक्षा हिन्दू धर्म का एक अविभाज्य अंग है। कोई भी असल हरिजन खाने के लिये गाय भैंस को नहीं मारेगा। किन्तु अस्पृश्य बन कर उसने मुर्दार मांस खाने की बुरी आदत सीखली है। वह गाय की हत्या तो नहीं करेगा, पर मरी हुई गाय का मांस बड़े ही स्वाद से खायगा। शारीरिक दृष्टि से यह मांस शायद हानिकर न हो, पर मानसिक दृष्टि से तो मुर्दार मांस खाने से जैसी सूग पैदा करने वाली दूसरी चीज है ही नहीं। तो भी चमार के घर में जब मरी हुई गाय आती है तो उसका सारा कुटुम्ब आनन्दोत्सव में फूला नहीं समाता। बालक तो लाश के चारों ओर नाचने लगते हैं। और जब उसकी खाल उधेड़ी जाती है तो हड्डियों और मांस के लोथड़ों को एक दूसरों पर फेंकते हैं। अपना घर-बार त्याग कर हरिजन आश्रम में जो एक चमार रहता है उसने खुद अपने घर का खाका खींचते हुये मुझसे कहा कि मुर्दार जानवर को देखते ही चमार का सारा कुटुम्ब आनन्द विह्वल हो जाता है। मैं ही जानता हूं कि हरिजनों के बीच काम करते हुये उनसे मुर्दार मांस खाने की यह आत्मघातिनी कुटेव छुड़ाने में मुझे कितनी कठिनाई पड़ी है। पर चमड़ा कमाने की रीति में सुधार हो जाय, तो मुर्दार मांस खाने का यह रिवाज तो आप ही नष्ट हो जायगा।

इसमें भारी बुद्धि और चीर-फाड़ की कला जानने की जरूरत है। गो-रक्षा की दिशा में भी इस काम के सहारे हम काफी आगे बढ़ सकते हैं। अगर हमने गाय की दूध देने की शक्ति बढ़ाने की कला को न सीखा, उसकी सन्तति में हमने सुधार न किया और उसके बछड़े को खेती और गाड़ी खींचने के काम के लिये अधिक उपयोगी न बनाया, गाय के गोबर व मूत का खाद में उपयोग न किया, और गाय और उसके बछड़ों के मरने पर उनकी खाल, हड्डियों, मांस और अन्तड़ियों आदि का अच्छे से अच्छा उपयोग करने को अगर हम तैयार न हुये, तो गाय को कसाई के हाथों तो मारना ही है।

अभी तो मैं सिर्फ मुर्दार लाशों की ही बात कर रहा हूं। यहां हमें इतना भली भांति स्मरण रखना चाहिये कि ईश्वर की कृपा से गांवों में चमार को क़त्ल किये हुये ढोरों की नहीं, किन्तु केवल मौत से मरे हुये ढोरों की ही खाल उधेड़नी पड़ती है। उसके पास मरे हुये ढोर को उठा ले जाने का कोई साधन नहीं है। वह उसे उठाता है, घसीटता है, और इससे खाल खराब हो जाती है। कटे फटे उतरे हुये चमड़े के दाम भी कम मिलते हैं। चमार जो अनमोल और सुन्दर समाज सेवा करता है उसका अगर गांव वालों और जनता को ज्ञान हो तो लाश उठा ले जाने का कोई ऐसा आसान और सादा तरीका ढूंढ निकालेंगे, जिससे चमड़े को जरा भी नुकसान न पहुंचने पाये।

इसके बाद की क्रिया है ढोर की खाल उतारने की। इसमें भारी सुघड़ता की जरूरत है। मैंने सुना है कि गांव का चमार अपनी गांव की बनी छुरी से इस चीर-फाड़ को जिस कुशलता से और जितनी जल्दी करता है, उस सुघड़ाई से और उतनी जल्दी कोई भी, बल्कि डाक्टर भी, नहीं कर

सकता। इस विषय का जिन्हें ज्ञान होना चाहिये, उनसे मैंने इस संबंध में जब पूछतांछ की तो गांव के चमार के चीड़फाड़ के ढंग से बेहतर तरीका वे मुझे नहीं बता सके। पर इसका यह अर्थ नहीं कि इससे बढ़कर तरीका कोई दूसरा है ही नहीं। मैं तो पाठकों को अपना अत्यन्त सीमित अनुभव का लाभ बता रहा हूं। गांव का चमार हड्डियों का कुछ भी उपयोग नहीं कर सकता। हड्डियों को तो वह फेंक देता है। खाल उधेड़ते वक्त लाश के इर्द गिर्द जो कुत्ते घूमते रहते हैं, वे सब नहीं तो कुछ हड्डियों को तो उठा ही ले जाते हैं। कुत्तों की छीना झपटी से बाकी जो बच रहती है वे विदेश को भेज दी जाती हैं, और मूठ, बटन वगैरह के रूप में वे यहीं फिर वापिस आजाती हैं। इन हड्डियों का अगर अच्छा चूरा बना लिया जाय तो उसका बहुत बढ़िया खाद हो सकता है।

दूसरा रास्ता इस महान उद्योग को शहर में ले जाने का है। हिन्दुस्तान में चमड़े के कई कारखाने आज यह काम कर रहे हैं। उन सबकी परीक्षा करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। शहरों में इस उद्योग के ले आने से हरिजनों को शायद ही कोई फायदा हो सके, गांवों को तो कुछ भी लाभ पहुंचने का नहीं। इससे तो गांव की दूनी बरबादी ही होगी। भारत में उद्योग-धन्धों को शहर में ले आने और बड़े-बड़े कारखानों के द्वारा उन्हें चलाने का अर्थ है गांवों और गांवों की जनता को धीरे-धीरे पर अचूक रीति से, मौत के मुंह में डाल देना। शहर के उद्योग भारत के सात लाख गांवों में बसने वाली उसकी ९० फीसदी जनसंख्या को कभी सहारा नहीं दे सकते। गांवों से चमड़े के धन्धे को तथा ऐसे ही दूसरे उद्योगों को हटा देने का तो यही अर्थ होगा कि वहां हाथ और बुद्धि के कौशल को काम में लाने का जो थोड़ा सा अवसर अभी किसी तरह बच रहा है, वह भी उनसे छीन लिया जाय। और जब गांव के उद्योगधन्धे नष्ट हो जायंगे, तब ढोरों को लेकर खेत में मजूरी करना और बरसात के ६ या ४ महीने आलस्य में बैठे बैठे बिताना, बस इतना ही ग्रामवासियों के नसीब में रह जायगा। ऐसा हुआ, तब तो स्व० मधुसूदन दास के शब्दों में यही कहना चाहिये कि गांव के मनुष्य जानवरों जैसे ही हो जायंगे। न तो उन्हें मानसिक पोषण कहीं से मिलेगा, न शारीरिक और इससे उनकी आशा और आनन्द भी नष्ट ही समझिये।

यहां सौ फीसदी स्वदेशी प्रेमी के लिये काम पड़ा हुआ है। साथ ही एक बहुत बड़े सवाल के हल करने में जिस वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता है उसे काम में लाने का क्षेत्र भी मौजूद है। इस एक काम से तीन अर्थ सधते हैं। एक तो इससे हरिजनों की सेवा होती है, दूसरे ग्रामवासियों की सेवा होती है, और तीसरे मध्यम वर्ग के जो बुद्धिशाली लोग रोजगार धन्धे की खोज में बेकार फिरते है उन्हें जीविका का एक प्रतिष्ठित साधन मिल जाता है। और यह लाभ तो जुदा ही है, कि गांव की जनता के सीधे संसर्ग में आने का भी उन्हें सुन्दर अवसर मिलता है।

हरिजन, १४ सितम्बर, १९३४ ई०

सच्चा स्वदेशी

कोई भी वस्तु स्वदेशी हो सकती है अगर वह करोड़ों देशवासियों का हित साधन कर सकती हो, हालांकि पूंजी और कलाकुशलता भी विदेशी हो, मगर अच्छे योग्य भारतीयों के कंट्रोल में हो।

बाटा के रबड़ के या दूसरे जूते विदेशी माने जायेंगे, यद्यपि कारीगर भले ही उसमें सब हिन्दुस्तानी हों और पूंजी भी हिन्दुस्तान से लेकर लगाई गई हो। वे जूते दुहरे विदेशी होंगे, क्योंकि एक तो विदेशियों के हाथ में कंट्रोल होगा और वे चाहे कितनी ही सस्ते हों, गांव के चर्मकार और मोचियों को तो वे हमेशा के लिये बेकार कर देंगे। बरार के मोची तो इस घातक प्रतिस्पर्द्धा को महसूस करने भी लगे हैं। बाटा का जूता भले ही यूरोप के लिये बचत की चीज हो, पर हमारे गांव के मोची और चर्मकार के लिये तो उसका अर्थ मृत्यु ही होगा।

ह० से, २५ फरवरी, १६३६ ई०

हम अछूतपन मिटा दें

यदि हरिजन कहें कि सरकार ने हमें इतना दिया था, वह कायम रहना चाहिए, तो मैं पूछ सकता हूं कि सरकार ने तुम्हें वह क्यों दिया था? कांग्रेस सरकार से लड़ती थी। सरकार ने कांग्रेस से लड़ने वालों को रिश्वत दी। उसे उनकी खुशामद करने की जरूरत थी। अब हमारी हुकूमत होगी। हमारी सरकार किसी की खुशामद क्यों करे। हमारे लिये तो यह जरूरी है कि हम अछूतपन मिटा दें। सरकार की हिम्मत थी कि कानून बनाकर सब मन्दिर खोल दे? मगर जब मैं देखता हूं कि मद्रास में एक के बाद एक मन्दिर खुलता जाता है, वहां के बड़े-बड़े और पुराने मन्दिर हरिजनों के लिये खुल गये हैं, तो मेरा पेट भर जाता है। धर्म की रक्षा ऐसे ही हो सकती है। इसी तरह ईसाइयों और पारसियों की बात है।

हमारी हुकूमत का काम तो जो मिसस्कीन हैं, जाहिल हैं, उन्हें ऊपर लाना होगा। यदि वह हरिजनों के लिये, शूद्रों आदि के लिये कुछ करती है तो ब्राह्मण को शिकायत क्यों होनी चाहिए? हां, अगर कोई कहे कि ब्राह्मणों को कोड़े लगाये जायं, उनका अपमान किया जाय, तो मैं कहूंगा कि ऐसा क्यों? वह भी तो बुरा है।

नई दिल्ली, १३ जुलाई, १६४७ ई०

हरिजन और शराब

यू० पी० में हाल में एक हरिजन कांग्रेस हुई थी। कहते हैं उसमें एक वजीर ने हरिजनों को उपदेश दिया कि आप गन्दे रहना, गन्दे कपड़े पहनना और शराब पीना छोड़ दें। इस पर कोई हरिजन बोल पड़ा कि जैसे सरकार ताड़ी के दरख्तों को उखाड़ कर फिंकवा सकती है, और शराब की सब दुकानें बन्द करवा सकती है, वैसे ही वह गन्दे कपड़े भी फुंकवा दे। हम नंगे रहेंगे, पर गन्दे नहीं। मैं उस हरिजन भाई की हिम्मत को सराहता हूं। मैं तो ताड़ी का गुड़ बना लेता हूं। पर मैं हरिजन भाइयों से कहूंगा कि असली इलाज उनके अपने हाथों में है। शराब अगर दुकान पर बिकती भी हो, तब भी उन्हें जहर की तरह उससे बचना चाहिये। सच यह है कि शराब जहर से ज्यादा बुरी है। मजदूर लोग घर में आकर जो दुख देखते हैं, उसे भुलाने के लिये शराब पीते हैं। जहर से शरीर ही मरता है, शराब से तो आत्मा सो जाती है। खुद अपने ऊपर काबू पाने का गुण ही मिट जाता है। मैं सरकार को सलाह दूंगा कि शराब दुकानों को बन्द करके उनकी जगह इस तरह के भोजनालय खोल दे, जहां लोगों को शुद्ध और हल्का खाना मिल सके। जहां इस तरह की किताबें मिलें, जिनसे लोग कुछ सीखें और जहां दूसरा दिल बहलाव का सामान हो। लेकिन सिनेमा को कोई स्थान न हो। इससे लोगों की शराब छूट सकेगी। मेरा यह कई देशों का तजुरबा है। यही मैंने हिन्दुस्तान में भी देखा और दक्षिण अफ्रीका में भी देखा था। मुझे इसका पूरा यकीन है कि शराब छोड़ देने से काम करने वालों का शारीरिक बल और नैतिक बल दोनों बहुत बढ़ जाते हैं, और उनकी कमाने की ताकत भी बढ़ जाती है। इसलिये सन् १९२० से शराबबन्दी भी कांग्रेस के कार्यक्रम में शामिल है। अब जब हम आजाद हो गए हैं, सरकार को अपना वायदा पूरा करना चाहिये और आबकारी की नापाक आमदानी को छोड़ने के लिये तैयार हो जाना चाहिये। आखिर में सचमुच आमदनी भी नही होगी, परन्तु लोगों का तो बहुत बड़ा लाभ होगा ही। हमारे लिये तरक्की का यही रास्ता है। यह हमें अपने आप अपने पुरुषार्थ से करना है।

नई दिल्ली, १ जनवरी, १९४८ ई०

जुलाहों को उपदेश

देश की स्थिति को. जिन्होंने इस समय अच्छी तरह देखने का अभ्यास किया है, उनसे यह बात छिपी नहीं है कि हमारे भाइयों में से तीन करोड़ ऐसा स्थिति के व्यक्ति हैं, जिनको दो समय खाना प्राप्त नहीं होता है। यदि इस समय भी वे अपने उद्योग धन्धों की वृद्धि का विचार नहीं करेंगे तो देश का उद्धार होना बड़ा कठिन है। इन उद्योग धन्धों में सबसे प्रधान कार्य अपने घरों में सूत तैयार करके अपने देशवासियों के हाथ से ही अपने पहनने के

कपड़े भी तैयार करना है। भारतवर्ष एक समय कपड़े बुनने के कार्य में इतना कुशल था कि देश देशान्तरों तक हमारा बारीक और मोटा कपड़ा भेजा जाता था। जब से ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज्य यहां पर स्थापित हुआ तभी से हमारे देश का यह प्रधान कार्य नष्ट भ्रष्ट हो गया। अब इस समय साठ करोड़ रुपये का कपड़ा विदेशों से यहां आता है। हमारे देश में रुई होती है,हमारे देश की स्त्रियां अपने चरखे से सूत कात सकती हैं और हमारे जुलाहे थोड़े मूल्य पर हमको कपड़ा तैयार करके दे सकते हैं। मेरी सम्मति में हमारी मिलें हमारे चरखे ही हैं जो बहुत कम दामों पर प्राप्त हो सकते हैं। बहुत लोगों का ऐसा कहना है कि इस समय यदि विदेशी कलों का प्रचार यहां न होगा तो सौ वर्ष तक भारतवर्ष हमको अपनी आवश्यकता के अनुसार कपड़ा नहीं दे सकता। ऐसे कहने वालों में मेरे राजनीतिक गुरू श्री गोखले भी थे। पर मैं कह सकता हूं कि फजल भाई करीम भाई से लेकर महाशय गोखले तक ने इस विषय में भूलें की हैं। वे नहीं समझ सके कि भारतवर्ष में घर-घर पर हमारी देशी मिलें हैं। उनसे यह सब आवश्यकता पूर्ण की जा सकती है। आधे भूखे स्त्री पुरुषों के दुख दूर करने का कोई उत्तम उपाय यदि है तो घर-घर चरखों का तथा करघे का प्रचार कर देना है। इस समय देश एक बड़ी विपत्ति में ग्रसित है। इस विपत्ति के समय यदि हम मोटे कपड़ों को छोड़कर बारीक कपड़ों के पीछे देश के धन की सुरक्षा न कर सकें तो हम से अधिक मूर्ख और कौन हो सकता है?

इस समय कपड़ा बुनने वालों में तीन प्रकार के लोग हैं। एक तो वह, जो कोरी कहलाते हैं। इनमें कपड़ा बुनने वाले वे हिन्दू हैं, जिन्हें स्पर्श करने से कोई नहीं हिचकता। दूसरे वे हैं जो जुलाहे कहलाते हैं। ये लोग प्रायः मुसलमान होते हैं। इनको छूने से कोई परहेज़ नहीं करता। तीसरे वे हैं, जिनको आप लोगों ने अंत्यज मान रखा है और उन्हें लोग ढेड़ के नाम से पुकारते हैं। मेरे पास एक चिट्ठी ढेड़ भाई की आई है। जिसमें लिखा था कि हम लोग इसीलिये इस कोरी महासभा में नहीं उपस्थित हुये कि लोग हमको अस्पृश्य मानते हैं। मैंने इस चिट्ठी का उत्तर उसी समय दिया कि मैं स्वयं अपने को ढेड़ अथवा भंगी कहता हूं। यह कब संभव है कि एक भंगी या ढेड़ तो भाषण देने के लिये खड़ा हो और उसके भाई अस्पृश्य समझे जायं और सभा में आ भी न सकें।

हरिजन फ़ौज में भरती हो सकते हैं

आपको यह प्रश्न मुझसे नहीं पूछना चाहिये था। मेरा खुद फौजी तालीम में विश्वास नहीं है। आपकी तरह मैं यह भी नहीं मानता कि फौज में जाने वाले हरिजन एकाएक ऊपर चढ़ जाते हैं। मगर जो हरिजन अपनी इच्छा से जाना चाहें, उन्हें खास प्रयत्न करके रोकूंगा नहीं? बड़े आदमियों के लड़के फौजी तालीम लें, और हरिजनों के दिलों में उनका अनुसरण करने की उमंग हो, तो उन्हें मैं कैसे रोक सकता हूं, उन्हें अहिंसा का पाठ सिखाना एक कठिन काम है। जो

पोटरे दबे हुये हैं उनमें एकाएक अहिंसा कैसे भरी जा सकती है? मुझे तो आश्चर्य यही है कि कुचले जाने पर भी ऐसे हरिजन मौजूद हैं, जिन्होंने अहिंसा का पाठ ठीक-ठीक सीख लिया है।

दिल की बात का दिखावा क्यों?

एक सज्जन लिखते हैं कि मैं उनको हरिजन जाहिर कर दूं। वे सेन्सस से भी अपना नाम सवर्णों में से निकलवा डालेंगे। मैं कहता हूं कि सब हिन्दू अति शूद्र बन जायं। इसी पर से इन ब्राह्मण भाई ने मुझे ऊपर के मतलब का खत लिखा है। लेकिन जो बात दिल की है, उसे दिखाना क्या? हां, यह ठीक है कि हर एक हिन्दू को अपने हर बरताव से यह साबित करना है कि वह हरिजन यानी भंगी बन गया है। इसलिये वह भंगियों से मिल कर रहेगा, या किसी भंगी को अपने साथ रखेगा। और अपने बाल-बच्चों की शादियां हरिजनों के साथ करेगा। और जब कोई पूछेगा तो कहेगा कि वह अपनी इच्छा से हरिजन बन गया है। सेन्सस में वह अपना नाम हरिजनों में या भंगियों में देगा। मगर ऐसा करते हुये वह कभी हरिजनों के हक तक नहीं मागेगा। मसलन्, वह हरिजन वोटरों में अपना नाम नहीं लिखायेगा। मतलब यह कि वह हरिजनों के धर्म का पालन करेगा, मगर उनके अधिकार की आशा नहीं रखेगा।

नई दिल्ली, ६ जून, १९४६ ई०

हरिजन चक्रैया

आन्ध्र निवासी हरिजन युवक चक्रैया सेवाग्राम का आश्रमवासी था। नई तालीम के तरीके पर सीखा था। बड़ा परिश्रमी और दस्तकार था। झूठ, फरेब, क्रोध जैसे दोष उसमें नहीं थे। दैववश उसके दिमाग में कुछ रोग पैदा हो गया। खुद निसर्गोपचार में ही विश्वास करता था, पर दोस्तों ने और डाक्टरों ने उनका आपरेशन करने का आग्रह किया। इस रोग से उसकी आंखों का तेज जाता रहा, फिर भी उसने आपरेशन की मेज पर जाने से पहले मुझे बड़ी कोशिश से पत्र लिखा था कि प्राकृतिक चिकित्सा मुझे प्रिय है, पर आपरेशन का प्रयोग कराने के लिये भी मैं तैयार हूं और मौत आयेगी तो राम नाम लेता हुआ मरूंगा। आखिर बम्बई के अस्पताल में आपरेशन किया गया और आपरेशन की मेज पर ही उसके प्राण छुट गये।

उसके जाने पर रोना आता है, पर मैं रो नहीं सकता, क्योंकि मैं रोऊं तो किसके लिये रोऊं और किसके लिये न रोऊं? पर भारत माता को अगर बच्चे चाहिए, तो बकौल तुलसीदास जी के ऐसे ही चाहिये जो या तो दाता हों या शूर। चक्रैया दाता था, क्योंकि वह निःस्वार्थ सेवन और परम सन्तोषी था और शूर भी था, क्योंकि उसने अपने हाथ से मृत्यु को अपना लिया। वह हरिजन था।

पर उसके दिल में हरिजन, सवर्ण, हिन्दू, मुसलमान जैसे भेद न थे। वह सबको इंसान मानता था और स्वयं सच्चा इन्सान था। मैंने ' ' हरिजन चक्रैया की बात आपको सुना दी। चक्रैया जैसे करोड़ों युवकों से भारत सुखी रहेगा।

नई दिल्ली, ३१ मई, १९४७ ई०

गोलमेज़ कान्फ्रेंस में

· · · · अछूतों के विषय में डाक्टर अम्बेडकर का क्या कहना है, यह मैं अभी तक अच्छी तरह समझ नहीं सका हूं, किन्तु अछूतों के हितों का प्रतिनिधित्व करने में कांग्रेस डाक्टर अम्बेडकर के साथ अवश्य हिस्सा लेगी। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक कांग्रेस को जितना दूसरी किसी संस्था अथवा व्यक्ति का हित प्रिय है, उतना ही प्रिय उसे अछूतों का हित है। इसलिये इससे आगे किसी भी विशेष प्रतिनिधित्व का मैं जोरों से विरोध करूंगा। बालिग मताधिकार में ऐसे वर्गों के लिये विशेष प्रतिनिधित्व की कोई आवश्यकता नहीं।

· · · · हम यह चाहते हैं कि · · · · अछूत अवश्य चुने जायं। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि ये बहुत बड़े अल्पसंख्यक वर्ग हैं। फिर भी अल्पसंख्यक हैं, और मान लिया जाय कि निर्वाचक संघ अपने अधिकारों का ऐसा दुरुपयोग करे कि स्त्रियों, अंग्रेजों, अछूतों और जमीदारों को न चुनें, और उनके इस कृत्य का कोई उचित कारण न हो, तो मैं विधान में ऐसी धारा रखूंगा जिससे यह निर्वाचित व्यवस्थापिका सभा उन्हें निर्वाचित अथवा नामजद कर सके। किन्तु मैं मानता हूं कि यह चुनाव उनका होना चाहिये जो चुने जाने चाहिये थे, पर चुने न गये हों। कदाचित मेरे कथन का अर्थ स्पष्ट न हुआ हो, इसलिये मैं एक उदाहरण देता हूं। हमारी एक प्रान्तीय समिति का ठीक ऐसा नियम है कि एक अमुक निश्चित संख्या में मुसलमानों, स्त्रियों और अछूतों का चुनाव निर्वाचक मंडल के लिये अनिवार्यतः आवश्यक है। और यदि वह ऐसा न करें, तो पूर्व निर्वाचित समिति, जो स्त्रियां, मुसलमान और अछूत उम्मीदवार होते हैं, उन्हीं में से निर्वाचन करती है और इस प्रकार उक्त वर्ग की संख्या पूरी की जाती है। यह तरीका है, जो हम काम में ला रहे हैं।

·····कांग्रेस तो निश्चय ही ऐसी मूक जनता की प्रतिनिधि है, जिसमें अगणित, अछूत, जो दलित होने की अपेक्षा दबाये हुये अधिक हैं और उनसे भी अधिक हतभाग्य तथा उपेक्षित अवनत जातियां भी शामिल हैं।

· · · · मेरे लिये ऐसा कहा गया प्रतीत होता है कि मैं अछूतों को धारा सभा में स्थान देने के विरुद्ध हूं। यह सत्य का गला घोटना है। जो कुछ मैंने कहा है और जिसे मैं फिर दुहराता हूं, वह यह है कि मैं उनको विशेष प्रतिनिधित्व देने के पक्ष में नहीं हूं। मुझे विश्वास है कि इससे उनका कोई भला नहीं हो सकता,

उल्टा नुकसान ही होगा। कांग्रेस बालिग मताधिकार स्वीकार कर चुकी है। जिसमें करोड़ों अछूत मतदाता हो सकते हैं। यह असम्भव मालूम होता है कि जब छुआ छूत दूर होती जा रही है तब इन मतदाताओं के नामजद प्रतिनिधियों का दूसरे वहिष्कार कर देंगे। धारा सभाओं में चुनाव से अधिक जिस बात की इनको आवश्यकता है, वह है सामाजिक प्रथा तथा धार्मिक अत्याचारों से रक्षा। कानून से भी अधिक शक्तिशाली रूढ़ियों ने इनको इतना नीचे गिरा दिया है कि प्रत्येक विचारवान हिन्दू को उससे लज्जित होकर प्रायश्चित्त करना चाहिये। अतएव मैं ऐसे कठोर कानून के पक्ष में हूं, जो मेरे इन देश भाइयों पर उच्च कहलाने वाली जातियों द्वारा किये जाने वाले तमाम अत्याचारों को जुर्म करार दे। परमात्मा को धन्यवाद है कि हिन्दुओं की भावनाओं में परिवर्तन हो रहा है और अल्प-काल ही में छुआछूत हमारे प्रायः पूर्ण भूत काल का एक अवशिष्ट चिन्ह मात्र रह जायगी।

पृथक निर्वाचन की मांग

मुसलमान और सिख अच्छी तरह से संगठित हैं, अछूत नहीं। उनमें राजनीतिक जागृति बहुत कम है। अब उनके साथ इतना बुरा व्यवहार किया जाता है कि मैं उनकी रक्षा करना चाहता हूं। यदि उनका निर्वाचन अलग होगा तो गांव में, जो कि हिन्दू रूढ़िवाद का घर है उनका जीवन संकटमय हो जायगा। उच्च जाति के हिन्दू अछूतों की सदियों से उपेक्षा करने के लिये प्रायश्चित करेंगे। वह प्रायश्चित क्रियात्मक सामाजिक सुधारों और अछूतों की सेवा के कार्यों द्वारा अधिक सहनशील बनाने से ही हो सकता है, न कि उसके अलग निर्वाचन की मांग द्वारा। उन्हें पृथक निर्वाचन देकर आप रूढ़िवादी और अछूतों के बीच फूट का बीज बो देंगे।

आपको जानना चाहिये कि मैं मुसलमान और सिखों के विशेष प्रतिनिधित्व के प्रस्ताव को एक अनिवार्य बुराई के रूप में स्वीकार कर रहा हूं। परन्तु यह अछूतों के लिये निश्चित खतरा होगा। मेरा यह निश्चय है कि अछूतों के लिये पृथक चुनाव का प्रश्न एक शैतानी सरकार की एक नई करतूत है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि उनको चुनाव की सूची में रखा जाय और विधान के अन्दर उनके लिये प्रारम्भिक अधिकारों का प्रबन्ध हो। यदि उनके साथ असंगत बर्ताव किया जाय या उनके प्रतिनिधि को जानबूझ कर मौका न दिया जाय तो उन्हें विशेष चुनाव पंचायत का अधिकार होगा, जिसमें उन्हें पूरा संरक्षण प्राप्त होगा। इन पंचायतों को अधिकार होगा कि चुने हुये उम्मीदवार को हटा कर वहिष्कृत व्यक्ति का चुनाव करायें।

अछूतों के लिये पृथक निर्वाचन उन्हें सदैव की गुलामी में डाल देगा। पृथक निर्वाचन द्वारा मुसलमान हमेशा मुसलमान बने रहेंगे। क्या आप चाहते हैं

कि अछूत भी सदैव अछूत बने रहें? पृथक निर्वाचन इस कलंक को अमिट बना देगा। जरूरत है अस्पृश्यता के नाश की और जब आप यह कर लेंगे तो उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग पर लगाया गया यह घृणित बन्धन नष्ट हो जायगा। क्या आप उस बुरे बन्धन को मिटा देंगे? यूरोप के इतिहास पर दृष्टि डालिये क्या आप मजदूरों और स्त्रियों का पृथक चुनाव पाते हैं? बालिग मताधिकार द्वारा आप अछूतों को पूर्ण सुरक्षा देते हैं। तब रुढ़िवादी हिन्दू भी उनके पास वोट के लिये पहुंचेंगे। तब आप यह कैसे पूछते हैं कि उनके प्रतिनिधि डाक्टर अम्बेडकर अलग चुनाव पर जोर देते हैं। मैं डाक्टर अम्बेडकर का बहुत सम्मान करता हूं। उन्हें कटु होने का अधिकार है। हमारा सिर नहीं फोड़ते, यह उनका आत्मसंयम है। उनमें इस समय सन्देह की मात्रा इतनी अधिक है कि उन्हें और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। वे प्रत्येक हिन्दू को अछूतों का विरोधी समझते हैं। यह स्वाभाविक भी है। ऐसा ही मेरे साथ भी अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में दक्षिणी अफ्रीका में हुआ है। वहां जहां भी मैं जाता था यूरोपियन दुतकारते थे। अपना क्रोध प्रकट करना उनके लिये स्वाभाविक है। परन्तु जिस पृथक निर्वाचन की वे मांग कर रहे हैं, उससे सामाजिक सुधार न होगा। मैं अछूतों के साथ रहा हूं उनके सुख-दुख में मैंने भाग लिया है। इसलिये अधिकारपूर्वक यह कह सकता हूं।

निर्दय घाव

अन्य अल्पसंख्यक जातियों के दावों का तो मैं समझ सकता हूं, किन्तु अछूतों की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिये सबसे अधिक निर्दय घाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक सदैव के लिये कायम रहने वाला है। भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये भी मैं अछूतों के वास्तविक हितों को न बेचूंगा। मैं स्वयं अछूतों के विशाल समुदाय का प्रतिनिधि होने का दावा करता हूं। यहां मैं केवल कांग्रेस की ओर से ही नहीं बोलता प्रत्युत स्वयं अपनी ओर से भी बोलता हूं और दावे के साथ कहता हूं कि यदि सब अछूतों का मत लिया जाय तो मुझे उनके मत मिलेंगे और मेरा नम्बर सबके ऊपर होगा। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक दौरा करके अछूतों से कहूंगा कि अस्पृश्यता दूर करने का उपाय पृथक निर्वाचन पद्धति और व्यवस्थापिका सभाओं में विशेष स्थान सुरक्षित कराना नहीं है।

इस अल्पसंख्यक समिति को और समस्त संसार को यह जान लेना चाहिये कि आज हिन्दू समाज-सुधारकों का ऐसा समूह मौजूद है जो कि अस्पृश्यता के इस कलंक को अस्पृश्य लोगों के लिये नहीं, बल्कि रूढ़िवादी हिन्दुओं के लिये लज्जाजनक समझता है और उसे धोने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध है। हम नहीं चाहते कि हमारे रजिस्टरों में और हमारी मर्दुमशुमारी में अछूत नाम की जुदी जाति लिखी जाय। सिख सदैव के लिये सिख, मुसलमान हमेशा के लिये मुसलमान

और अंग्रेज सदा के लिये अंग्रेज रह सकते हैं, किन्तु क्या अछूत सदैव के लिये अछूत रहेंगे? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूंगा कि हिन्दू धर्म मिट जाय।

अछूत यदि मुसलमान अथवा ईसाई हो जायं तो मुझे उसकी कुछ परवाह नहीं, मैं यह सह लूंगा, किन्तु यदि प्रत्येक गांव में हिन्दुओं के दो भाग हो जायं, तो हिन्दू समाज की जो दशा होगी वह मुझसे न सही जा सकेगी। जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते हैं, वे भारत को नहीं पहचानते और हिन्दू समाज आज किस प्रकार बना हुआ है यह भी नहीं जानते। इसलिये मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहना चाहता हूं कि इस बात का विरोध करने वाला यदि मैं अकेला होऊंगा, तो भी मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूंगा।

एक अक्लमन्दी का काम

पिछड़ी हुई जातियों के मिनिस्टर श्री जी० डी० तपासे ने बम्बई की धारा सभा द्वारा हाल ही में पास किये गये बम्बई हरिजन सामाजिक विषमताओं को दूर करने वाले ऐक्ट की एक नक़ल मेरे पास भेजी है। उसमें से काम के कुछ हिस्से नीचे देता हूं—

३—इसके खिलाफ किसी पुराने कायदे कानून, रीति-रिवाज या परम्परा के होते हुये भी किसी हरिजन को सिर्फ हरिजन होने की बिना पर—

(अ)—कानून के मातहत किसी सरकारी मुलाजमत में जगह पाने से महरूम नहीं रखा जायेगा, या

(आ)—(१) ऐसे किसी नदी, नाले, झरने, कुएं, तालाब, हौज, नल या पानी लेने या नहाने की दूसरी जगह, मरघट या कब्रिस्तान, पाखानों जैसे आम इस्तेमाल के साधन, सड़क या पगडंडी तक जाने या उसका इस्तेमाल करने से रोका नहीं जायगा, जिन पर पहुंचने या जिनका इस्तेमाल करने का हक दूसरी हिन्दू जातियों और वर्गों को हासिल है।

(२) प्रान्तीय सरकार या किसी मुकामी हुकूमत से लाइसेंस पाकर किराये पर चलने वाली आम सवारी तक पहुंचने या उस पर चढ़ने से रोका न जायगा।

(३) सूबे की आमदनी में से या मुकामी हुकूमत के फंड में से पूरी या कुछ मदद देकर बनाये गये मकान, कुआं, हौज या आम लोगों के इस्तेमाल की पार्क वगैरा जगहों तक पहुंचने या उनका इस्तेमाल करने से रोका न जायगा।

(४) ग्राम लोगों के दिल बहलाव या खेल-कूद वगैरह के लिये बनाई गई जगहों पर जाने से रोका न जायगा।

(५) ऐसी किसी दुकान पर जाने से रोका न जायगा, जहां दूसरी हिन्दू जातियों को जाने का हक है।

(६) ऐसी किसी जगह पर जाने या उसके इस्तमाल से रोका न जायगा, जो हिन्दुओं के किसी खास वर्ग या फिरके के लिये नहीं, बल्कि सारे हिन्दुओं के लिये अलग कर दी गई या रखी गई है।

(७) किसी खास वर्ग या फिरके के लिये नहीं, बल्कि आम हिन्दू जनता के भले के लिये कायम किये गये खैराती ट्रस्ट से फायदा उठाने से रोका न जायगा।

३—अ—तीसरे सेक्शन की १ ली, ३ री, ४ थी, ५वीं और ६ठीं उपधाराओं में बताई गई जगहों में काम करने वाला कोई शख्स, या २री उपधारा में बताई गई कोई सवारी रखने वाला कोई शख्स किसी हरिजन पर कोई पाबन्दी नहीं लगा सकता या ऐसा कोई काम नहीं कर सकता, जिससे यह मालूम हो कि हरिजन के खिलाफ कोई फर्क किया जा रहा है।

४—किसी बात पर फैसला देने या किसी हुक्म की पाबन्दी करने में कोई अदालत किसी हरिजन के खिलाफ, सिर्फ उसके हरिजन होने की बिना पर, ऐसे किसी रिवाज या चलन को नहीं मान सकती, जो उस पर किसी तरह की सामाजिक अयोग्यता लादता हो।

५—किसी कानून के मातहत अपना कामकाज या फर्ज अदा करने वाली कोई मुकामी हुकूमत चौथी धारा में कहे गये किसी रीति-रिवाज को नहीं मानेगी।

६—जो कोई—

क—हरिजन होने के नाते किसी आदमी को तीसरे सेक्शन की आ धारा की दूसरी उपधारा में बताई गई सवारी या १ली, ३री, ४थी, ५वीं और ६ठीं उपधारा में बताई गई किसी जगह पर जाने से या उसका इस्तेमाल करने से रोकता है, या उसी सेक्शन की आ धारा की ७वीं उपधारा में बताये गये किसी खैराती ट्रस्ट से फायदा उठाने से रोकता है, या रोकने के लिये किसी को उकसाता है, या

ख—किसी हरिजन पर किसी तरह की कोई रोक लगाता है, या उसके खिलाफ फर्क जाहिर करने का कोई काम करता है या किसी शख्स को ऐसा प्रतिबंध लगाने के लिये उकसाता है या इसी तरह का और कोई काम करता है,

उसे गुनाह साबित हो जाने पर तीन मास की कैद की सजा दी जायगी या उस पर २०० रू० जुर्माना किया जायगा, या उसे दोनों सजायें दी जायंगी।

७—अगर ऐसा कोई आदमी, जिसे इस ऐक्ट के मातहत एक बार गुनाह करने पर सजा मिल चुकी है, फिर वही गुनाह करेगा, तो साबित होने पर उसे ६ महीने की कैद की सजा या ५०० रू० जुर्माने की सजा या दोनों सजायें दी जायेंगी, और अगर वही आदमी तीसरी बार या इससे ज्यादा गुनहगार साबित होगा, तो उसे १ साल की कैद की सजा दी जायगी या १,००० रू० जुर्माने के वसूल किये जायेंगे।

इस बिल के बनाने वाले ने मेहरबानी करके अपनी उस तकरीर की नकल भी मेरे पास भेजी है, जो उन्होंने बिल पेश करते वक्त की थी। उसके कुछ बहुत दर्दभरे जुमले मैं नीचे देता हूं :—

यह छुआछूत एक तरह की घोर नासमझी है। जैसे ही एक हरिजन पैदा होता है, वह अछूत मान लिया जाता है।

वह अछूत ही पैदा होता है, जिन्दगी भर अछूत बना रहता है और अछूत ही मर जाता है··चाहे वह कितना ही साफ-सुथरा हो, कितना ही होशियार हो, दूसरों से कितना ही अच्छा हो, लेकिन नामधारी कट्टर हिन्दुओं के लिये वह कभी अच्छा नहीं होता। सबसे बुरी बात यह है कि मर जाने पर भी हरिजन की मिट्टी और राख दूसरों की मिट्टी और राख से मिलने नहीं दी जाती। अछूतों की तकलीफें इस बात से और ज्यादा बढ़ गई हैं कि सिर्फ सवर्ण हिन्दू ही नहीं ईसाई, मुसलमान और दूसरे लोग भी उनसे अछूतों जैसा ही बरताव करते हैं। मेरे ख्याल से यह बिल हरिजनों को कुछ बुनियादी, सामाजिक और नागरिक हकों के इस्तेमाल के लिये एक सनद देता है।

यह ध्यान देने की बात है कि यह बिल हिन्दुओं की तरफ से बिना किसी विरोध के पास हो गया। कानून को कामयाबी से अमल में लाने के लिये यह एक अच्छी शुरुआत है। फिर भी उसके बारे में बहुत बड़ी आशा बना लेना भी ठीक नहीं होगा। हमारी बदकिस्मती यह है कि हम जोर से ताली बजाकर प्रस्ताव पास कर देते हैं, और फिर उन्हें रद्दी की टोकरी में फेंक देते हैं। इस कानून को पूरी तरह अमल में लाने के लिये सरकार और सुधारकों को ज्यादा से ज्यादा सावधानी रखनी पड़ेगी।

इस सचाई की ओर से आंख मूंद लेने में कोई फायदा नहीं कि जिस घोर नासमझी की ओर बिल बनाने वाले ने इशारा किया है, अभी भी हिन्दुस्तान में उसका राज है। सिर्फ अछूतपन के मामले में ही नहीं, दूसरी बातों में भी यही

हाल है। सुधारकों को चाहिये कि वे इस भूत पर नजर रखें, और जिन पर वह सवार है, उनसे सावधानी, सज्जनता और होशियारी से पेश आवें।
नई दिल्ली, २५ अक्टूबर, १९४६ ई०

दबाई हुई जातियां

विवेकानन्द पंचमों को दबाई हुई जातियां कहा करते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विवेकानन्द का यह विशेषण बिलकुल उपयुक्त है। हमने उनको दबाया है, फलतः हम भी दबाये गये हैं। गोखले के शब्दों में न्यायी ईश्वर ने हमें साम्राज्य का पंचम बना कर हमारे अन्याय का दंड दिया है। हैरान और रुष्ट होकर एक संवाददाता मुझसे कायरतापूर्वक पूछता है कि मैं पंचमों के लिये क्या कर रहा हूं। अंग्रेजों से उनका रक्तरंजित हाथ साफ करने के लिये कहने के पहले क्या हम हिन्दुओं को खून से सना अपना हाथ नहीं धो डालना चाहिये। यह सामाजिक तथा उचित प्रश्न है। यदि गुलाम राष्ट्रों का कोई व्यक्ति इन दबाई जातियों को अपने उद्धार के पहले मुक्त कर दे, तो मैं इसे पसंद करूंगा। मैं आज ही ऐसा करने के लिये तैयार हो जाऊंगा। किन्तु यह एक असंभव कार्य है। एक दास को इतनी भी स्वाधीनता नहीं होती कि वह कोई उचित कार्य कर सके। मेरे लिये यह सर्वथा न्यायोचित है कि भारत में विदेशी वस्त्रों का आना रोकूं, पर ऐसा करने की मेरे में क्षमता नहीं है। यदि मेरे पास सचमुच राष्ट्रीय व्यवस्थापक सभा होती, तो मैं हिन्दू गुस्ताखी का जवाब दबाई जातियों के लिये ही खास तौर से उपयोग में लाने के लिये अच्छे खास कुयें बनवाकर देता। उनके लिये अनेक और कहीं अच्छे स्कूल बनवा देता। इस प्रकार दबाई जाति का एक भी व्यक्ति ऐसा न रह जाता, जिसके बच्चे की शिक्षा के लिये स्कूल का अभाव होता। पर मुझे अच्छे अवसर की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। तब तक क्या ये दलित जातियां अपने भाग्य पर छोड़ दी जायंगी, ऐसा हर्गिज न होगा। मुझसे जहां तक बन पड़ता है, मैं हर प्रकार से अपने पंचम भाई की सेवा करता आया हूं और करूंगा।

राष्ट्र के इन उत्पीड़ित व्यक्तियों के लिये केवल यही मार्ग खुला हुआ है। धैर्य छोड़कर वे गुलामों की तरह सरकार की सहायता मांग सकते हैं। यह सहायता उन्हें मिल जायगी, पर वे जलती कढ़ाई में से अग्नि में गिर जायेंगे। आज वे दासों के दास हैं। सरकारी सहायता मांगने पर उनसे उन्हीं के संबंधियों तथा साथियों को दबाने के लिये कहा जायगा। स्वयं उनके प्रति पाप किये जाने के बदले वे स्वयं पापी बन जायेंगे। मुसलमानों ने ऐसा करने की चेष्टा की और असफल हुये। उन्होंने यह देख लिया कि वे पहले से भी अधिक खराब हालत में हैं। अज्ञानतापूर्वक सिक्खों ने भी वही किया और वे भी लाभ उठाने में असफल रहे। आज भारत में सिखों के समान कोई भी असंतुष्ट समुदाय नहीं है। इसलिये सरकारी सहायता से यह समस्या हल नहीं हो सकती।

दूसरा उपाय यह हो सकता है कि इस समय दलित हिन्दू समाज को छोड़कर मुसलमान या ईसाई हो जायं। यदि धर्म परिवर्तन से इहलौकिक सुख प्राप्त हो सकता हो, तो मैं निस्संकोच इसकी सलाह देने के लिये तैयार हूं। पर धर्म तो हृदय की वस्तु है। कोई भी शारीरिक असुविधा धर्म परित्याग का कारण नहीं बन सकती। यदि पंचमों के साथ पाशविक व्यवहार हिन्दू धर्म का अंग होता, तो वह उन्हीं के लिये, पर मेरे ऐसे के लिये महान कर्त्तव्य होता, जो कि धर्म ऐसी वस्तु को भी अंधविश्वास की वस्तु बनाकर उसके पवित्र नाम की ओट में हर एक पाप को छिपाना नहीं चाहते। किन्तु मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि अछूत प्रथा हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। यह उसका मैल है, जिसको हर प्रकार से चेष्टा कर मिटा देना चाहिये। और इस समय ऐसे हिन्दू सुधारकों की बहुत बड़ी संख्या मौजूद है, जो हिन्दू धर्म से इस धब्बे को मिटा देने के लिये तुल गये हैं। अतः मेरा कहना है कि धर्म-परिवर्तन इस समस्या को किसी प्रकार भी नहीं मिटा सकता।

पंचम

मद्रास प्रान्त के समान अछूतों के प्रति और कहीं भी इतनी निर्दयता का व्यवहार नहीं होता। उसकी छाया मात्र से ही ब्राह्मण अपवित्र हो जाता है। वह ब्राह्मणों की सड़क से जा भी नहीं सकता। अब्राह्मण भी उसके साथ कोई अच्छा सलूक नहीं करते। इन दो के बीच में, पंचम कहलाने वाला अछूत पिस कर भर्ता हो जाता है। और फिर भी मद्रास ऊंचे मंदिरों और प्रगाढ़ धार्मिक भक्ति की भूमि बना है। लंबी टीका, लंबी चुटिया तथा मुंडे सिर लोग ऋषियों के समान मालूम होते हैं। पर ऐसा प्रतीत होता है कि इन बाहरी दिखाव में उनके धर्म का कोष खाली हो गया है। शंकर और रामानुज एसे धर्मध्वजियों को उत्पन्न करने वाली भूमि में पंचमों के प्रति ऐसी डायरशाही समझ में नहीं आती। पर भारत के इस भाग में, अपने ही संबंधियों के प्रति, ऐसा दुर्व्यवहार देखते हुये भी' 'ऐसा शैतानी व्यवहार देखते हुये भी इन दक्षिणात्यों में मेरा विश्वास बना ही है। मैंने उनको प्रायः सभी बड़ी सभाओं में साफ-साफ कह दिया है कि जब तक हम अपने समाज से इस शाप को नहीं मिटा देते, स्वराज्य नहीं हो सकता।

मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया है कि संपूर्ण संसार के समाज में हमारे साथ कोढ़ी के समान व्यवहार इसीलिये होता है कि हम अपनी ही जाति के पांचवें भाग के साथ ऐसा ही सलूक करते हैं। असहयोग अंगरेजों में ही नहीं, हममें भी हृदय परिवर्तन के लिये एक प्रार्थना मात्र है। अवश्य मैं तो पहले अपने लोगों में, और फिर, समय पाकर, अंग्रेजों में हृदय परिवर्तन की आशा करता हूं। ऐसा राष्ट्र, जो सदियों के अभिशाप को एक वर्ष में फेंक सकता है, ऐसा राष्ट्र, जो वस्त्रों के समान मदिरा के व्यसन को त्याग सकता है, ऐसा राष्ट्र, जो अपने

मूल उद्योग को पुनः अपना सकता है तथा एक वर्ष में ६० करोड़ रुपये का कपड़ा केवल अपने फाल्तू समय में तैयार कर सकता है, अवश्य ही बदला हुआ राष्ट्र कहलायेगा। उसका परिवर्तन संसार पर प्रभाव डालेगा। खिल्ली उड़ाने वाले के लिये भी वह दैवी सत्ता तथा प्रतिभा का विश्वासोत्पादक प्रदर्शन कर सकता है। और इसीलिये मैं कहता हूं कि यदि भारत का इस प्रकार परिवर्तन हो सकता है, तो संसार में कोई भी शक्ति उसके स्वराज्य के अधिकार को अस्वीकार नहीं कर सकती। भारत के क्षितिज में चाहे कितना ही धना बादल क्यों न एकत्र हो जाय, मैं साहसपूर्वक यह भविष्यबाणी करता हूं कि जिस क्षण भारत को अछूतों के प्रति अपने अत्याचार पर खेद होगा तथा वह विलायती कपड़े का वहिष्कार कर लेगा, उसी समय वे ही अंगरेज अफसर जिनका हृदय कठोर हो गया है, एक स्वतंत्र तथा साहसी राष्ट्र के रूप में उनका स्वागत करेंगे। और मेरा विश्वास है, यदि हिन्दू चाहें तो वे पंचम कहलाने वालों को मताधिकार दे सकते हैं, और जो अधिकार वे स्वयं अपने लिये चाहते हैं, उन्हें भी अपनी ओर से दे सकते हैं। ····मैं ऊपर कहीं बातों में भी पूरा विश्वास रखता हूं। यह हृदय तथा दशा परिवर्तन किसी पूर्व निश्चित तथा यंत्रीय कार्यक्रम से नहीं हो सकता। यह तभी संभव है, जब ईश्वर की कृपा होगी। यह कौन अस्वीकार कर सकता है कि परमात्मा हमारे हृदय में अद्भुत परिवर्तन उत्पन्न कर रहा है। अस्तु, हरएक स्थान पर, हरएक कार्यकर्त्ता का यह कर्त्तव्य है कि अछूत बंधुओं से मित्रता का प्रतिपादन करे, और अहिन्दू हिन्दुओं से यह वकालत करें कि वेद, उपनिषद्, भागवद्गीता, शंकराचार्य तथा रामानुज द्वारा वर्णित हिन्दू धर्म में किसी भी व्यक्ति को चाहे वह कितना ही पतित क्यों न हो अछूत के समान व्यवहार करने का कोई अधिकार नहीं। हर एक कार्यकर्ता को नम्रतम रूप में सनातनियों से यह अनुरोध करना चाहिये कि यह निद्य-भेद अहिंसा के भाव का उलटा है।

दूसरे पाप करें तो क्या हम भी पाप करें ?

एक भाई पूछते हैं कि मैंने पिछले हफ्ते कहा था कि हरिजनों को शराब छोड़नी चाहिये। तो क्या हरिजन ही छोड़ें और पैसे वाले या सोलजर वगैरह न छोड़ें? सबके लिये एक कानून क्यों न बने?

यह प्रश्न पूछने जैसा नहीं है। दूसरे पाप करें तो क्या हम भी पाप करें? जो समझदार हैं, उनके लिये कानून क्यों चाहिये? उनको सोच-समझकर अपने आप ही शराब छोड़ देनी चाहिये। हरिजन अनपढ़ हैं, वे मजदूरी करते हैं। उनको आराम या मनबहलाव का कोई साधन नहीं मिलता। इसलिये वे शराब पीकर अपना दुख भूलना चाहते हैं। मगर पैसे वालों और सोलजरों को तो शराब पीने का इतना भी कारण नहीं। फौजी लोग कहेंगे कि शराब के बिना उनका काम कैसे चल सकता है। मगर मैं फौज को ही

ठीक नहीं मानता, तो फिर शराब को ही क्या मानने वाला हूं? मगर फौजियों में भी मेरे काफी दोस्त हैं। उनमें हिन्दुस्तानी भी हैं और काफी अंग्रेज भी, जो शराब नहीं पीते। शराबबन्दी का कानून ऐसा नहीं कहेगा कि पैसे वाले शराब पियें और हरिजन मजदूर न पियें।

नई दिल्ली, ८ जनवरी, १९४८ ई०

नाम में क्या रखा है?

वर्षों पहले यंग इंडिया में इसके बारे में लिखा जा चुका है। हरिजन नाम के साथ बहुत सी पवित्र घटनायें जुड़ी हुई हैं। एक हरिजन भाई ने ही अस्पृश्य दलित या भंगी, मेहतर, चमार आदि अछूतों के दूसरे सब नामों की जगह यह नाम रखने को कहा था। सरकारी अफसरों ने उनकी एक फेहरिस्त बनाई और शेड्यूल्ड कास्ट में उन सबकी गिनती करके उनकी हालत और भी बदतर कर दी। जो लोग अछूत नहीं थे, वे इस वर्ग में रख दिये गये, और जो इसमें आ सकते थे उन्हें छोड़ दिया गया। सरकार को धन्यवाद है कि उसकी इस नीति से आज हम उस हालत को पहुंच गये हैं कि अब शेड्यूल्ड वर्गों में शामिल होने की लालसा होती है। सरकार ने हरएक प्रतिनिधिक संस्था में चुन कर आने के लिये फिरकेवाराना चुनाव शुरू करवा दिये हैं। अगर लोग सचमुच अपनी योग्यता के आधार पर ही इन जगहों पर पहुंचने की इच्छा करें, तो ठीक है। लेकिन योग्यता का कुछ भी ख्याल न रखते हुये ऐसी इच्छा करना बिलकुल बुरी चीज है। ऊंची से ऊंची जगह पाने की योग्यता हासिल करने की इच्छा तारीफ करने जैसी है, उसे प्रोत्साहन मिलना चाहिये। लेकिन किसी ऐसी जगह पर सिर्फ अपनी जाति या वर्ग के आधार पर नियुक्त होने की इच्छा को कम करना चाहिये, दबाना चाहिये।

मैंने इसका सच्चा उपाय बता दिया है। ऊंच-नीच के ख्याल मिट जाने चाहिये। वे मिट तो रहे हैं, चींटी की चाल से। अगर हरएक हिन्दू जान-बूझकर अपने बड़े होने के बिचार छोड़ दे, और व्यवहार में हरिजन, या यों कहिये कि हरिजनों में जो सबसे नीचे गिने जाने वाले भंगी या मेहतर हैं, उनके जैसा बन जाये, तो यह रफ्तार बढ़ सकती है। उस समय हरिजन शब्द के सच्चे माने में हम सब ईश्वर के बच्चे बन जायेंगे। जब तक यह नहीं हो जाता है, अछूतों को हम किसी भी नाम से क्यों न पुकारें, उनमें नीचेपन की भावना बनी ही रहेगी। जब तक अस्पृश्यता बिलकुल जड़ से न मिट जाय, हमें जीवन के हरएक क्षेत्र में पूरी तरह इसी ढंग से काम लेना है। जब वह खुशी का दिन आयेगा, हर एक घर सच्चे हरिजनों का घर होगा और दिल और घर की सफाई समूचे जीवन का नियम बनेगा।

नई दिल्ली, १९४६ ई०

आदर्श शूद्र को प्रणाम

शूद्र का तो कहना ही क्या ? और अगर किसी भी तरह मुकाबला किया जा सकता है तो शूद्र सिर्फ धर्म समझ कर सेवा ही करता है। जिसके पास कोई जायदाद कभी होने वाली ही नहीं और जिसे मालिक बनने का लालच तक नहीं, वह हजार नमस्कार के लायक है और सबसे ऊंचा है। धर्म पर चलने वाला शूद्र अपने बारे में ऐसा न समझेगा, लेकिन देवता तो उस पर फूल बरसायेंगे। यह वाक्य आजकल के सेवा करने वालों के बारे में भले ही शोभा न दे। वे चप्पा भर जमीन के मालिक न होकर भी मालिकी चाहते हैं, यानी वे अपने शूद्रपन को सुख देने वाले धर्म के तौर पर नहीं देखते हों, बल्कि भोग की इच्छा पूरी न होने से दुखदायी समझते हों। इसी लिये मैंने तो आदर्श शूद्र को प्रणाम किया है, और दुनिया से कहता हूं कि वह भी उसके सामने सिर झुकाये।

लेकिन यह शूद्र का धर्म उस पर लादा नहीं जा सकता। तीन वर्ण अपने को प्रजा के सेवक मानते हों और जो जायदाद उनके पास रहे उसके सबकी भलाई के लिये अपने को रखवाले साबित कर सकते हों, उन्हीं के मुंह से शूद्र धर्म की बड़ाई करना अच्छा लग सकता है। आज तो जहां तीन वर्ण सिर्फ नाम के रह गए ह, अपना-धर्म पालने की किसी को सूझती नहीं और अपने को ऊंचा वर्ण का मान कर शूद्र को हलके वर्ण का समझते हैं, वहां इसमें कोई अचरज की बात भी नहीं, दुख की बात भी नहीं कि शूद्र उनसे ईर्षा करें और जो सम्पत्ति वे लेकर बैठ गये हैं उसमें हिस्सा बंटाना चाहें। वर्ण को धर्म के तौर पर बता कर शोषकों ने ऐसा सुझाया है कि वर्ण धर्म को पालने से ही दुनिया का काम चल सकता है।

वर्धा, २३ सितम्बर, १९३४ ई०

खान-पान

कर्ज करके भोज

ऊंचे कहलाने वाले वर्ण के लोग जो करते हैं, वही अछूत भी करते हैं। इसलिये ऊंचे वर्ण भोज देना छोड़ दें, तो अछूत भाई ऊंचे वर्ण से सीखी हुई बुरी आदतें सहज में छोड़ देंगे, पर ऐसा शुभ अवसर आने में देर तो लगेगी ही। इसलिये तो अभी तो यही रास्ता है कि अछूत भाइयों को अपनी हालत की जानकारी करा कर उनसे सुधार कराया जाय। बहुत लोग तो डर के मारे मौसर करते हैं। अछूतों में भी जाति बाहर होने का डर तो है ही। सच पूछा जाय तो ऊंचे वर्ण से ज्यादा डर है। ऊंचे वर्ण के जाति बाहर हुये सज्जन के पास सारी हिन्दू दुनिया है। लेकिन जाति बाहर हुये अछूत का सिर्फ भगवान ही बेली है, या वह स्वार्थ के मारे दूसरा धर्म अपना लेता है। जब अछूत भाइयों को अपना ज्ञान होगा, तब सुधार करने की उनकी शक्ति ऊंचे वर्ण की शक्ति से बहुत बढ़ जायगी। ऊंचे वर्ण के रास्ते में दूसरे स्वार्थ और लालच आ जाते हैं, अछूतों में समझ और निडरता आ जाने के बाद एक भी चीज आड़े नहीं आ सकती। उनमें ऐसी समझ और निडरता लाना ऊंचे वर्ण का धर्म है, प्रायश्चित है।

१४ अप्रैल, १६२६ ई०

जात-पांत की मर्यादा

(अस्पृश्यता निवारण असल में तो तब हुआ समझा जा सकता है जब कि अस्पृश्य समझे जाने वाले भाई-बहिनों के प्रति मैं वही व्यवहार रखूं, जो मैं अपने भाई बहिनों के प्रति रखता हूं।) कांग्रेस रसोई में जाति-पांत की मर्यादा आजकल नहीं मानी जाती। अस्पृश्यता और स्पृश्य के बीच का भेद आज निकल गया है, तो अगर विचार में जैसा कि आप लिखते हैं, ऐसा भेद-भाव रखा जाता है तो मुझे आश्चर्य होता है और दुख भी होता है। कांग्रेस के रचनात्मक-कार्य में जितनी अपूर्णता होगी, जितनी गन्दगी होगी, स्वराज्य उतनी ही देर से आयेगा। सच्ची अहिंसा से यदि स्वराज्य प्राप्त करना है, तो बिना आत्म-शुद्धि के वह प्राप्त नहीं हो सकता

हरिजनों के साथ भोजन

निरामिष सवर्ण हरिजन के घर में निरामिष आहार जरूर ले सकता है। भोजन व्यवहार के मानी यह कभी नहीं हो सकते कि जो कुछ मिले, सो खा लिया जाय। यह जरूरी है कि खाना और बरतन साफ हों, और खाना साफ हाथों से पकाया हुआ हो। यही नियम पानी के लिये भी होना चाहिये। सहयोग के यह भी मानी नहीं कि हम एक थाली में खायें या एक ही गिलास से बगैर उसे साफ किये, पानी पियें।

नई दिल्ली, ६ अप्रैल, १६४६ ई०

हरिजन रसोइये

एक भाई अपने खत में सुझाते हैं कि कांग्रेस के अगले जलसे के मौके पर सब हरिजन रसोइये ही रखे जांय और इसके लिये हरिजन रसोइयों की एक टुकड़ी तैयार की जाय और उसको हमारे मुल्क जैसे गरीब मुल्क को फबने वाली वह तालीम दी जाय जिससे वे लोग सफाई रखने और शास्त्रीय ढंग से रसोई बनाने के काम में होशियार हो जायं। खत लिखने वाले भाई चाहते हैं कि जिस सूबे में कांग्रेस का जलसा होने वाला हो उस सूबे के कांग्रेसियों को इस चीज से फायदा उठाने और इस बारे में अपना फर्ज अदा करने का मौका मिलना चाहिये। वे यह भी सुझाते हैं कि जलसा खत्म होने के बाद जिन कांग्रेसियों को अपने घर पर रसोइया रखना पुसावे या जो रसोइये रखते हों उन्हें अपने यहां इन हरिजन रसोइयों को रख लेना चाहिये।

छुआछूत अब बीते जमाने की चीज बन गई है, इस बात को अमली तौर पर दरसाने वाला ऐसा कोई भी सुझाव स्वागत के लायक है। इस बारे में मैं अपनी तरफ से इतना और बढ़ाना चाहूंगा कि जिन कांग्रेसियों के सुझाव मंजूर हों उनके लिये कांग्रेस के जलसे तक ठहरने की जरूरत नहीं। अब से आगे उन्हें हरिजनों को न सिर्फ रसोइयों के नाते, बल्कि दूसरे सब कामों के लिये भी अपने साथ रखना चाहिये। इससे भी बेहतर कि जिन से बन पड़े वे हरिजनों को अपने घरों में अपने ही बच्चों की तरह रखें और उनको मुनासिब तालीम दें। लेकिन यह तभी हो सकता है जब, क्या औरत और क्या मर्द, सब सच्चे दिल से यह मानते हों कि धर्म के नाम पर हिन्दू धर्म ने अपने ही भाई-बन्दों को, उनका कोई कसूर न होते हुये भी, अछूत बना रखा है।

शिमला, ८ मई, १९४६ ई०

कठिन समस्या

आंध्र से एक मित्र अपनी कठिनाइयों को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं :—

"···बंगाल के एक महाशय के पत्र के उत्तर में आपने लिखा है कि चूंकि हम शूद्रों के हाथ का पानी पीते हैं, इसलिये हमें अछूतों के हाथ का पानी पीने में कोई एतराज नहीं होना चाहिये। हम से आपका तात्पर्य सवर्ण हिन्दुओं से है। किन्तु क्या आपको यह मालूम है कि आंध्र तथा भारत के सुदूर दक्षिण भाग में ब्राह्मण अब्राह्मणों तीन में से किसी भी जाति के लोगों के हाथ का पानी ही नहीं पीते, प्रत्युत घोर सनातनी अब्राह्मणों को छूते तक नहीं।

"आपने प्राय: कहा है कि उच्च वर्णों का बड़प्पन का झूठा भाव मिटाने के लिये अंतर्भोज, सहभोज अनिवार्य नहीं है। आपने इसी संबंध में एक बार महामना मालवीय जी का उदाहरण देकर बतलाया था कि यद्यपि आप लोग एक

दूसरे का पर्याप्त आदर करते हैं, फिर भी यदि मालवीयजी आपके हाथ का छुआ पानी तक नहीं पीते, तो इससे आपके प्रति कोई उपेक्षा नहीं प्रकट होती। उपेक्षा तो नहीं प्रकट होती, यह मैं स्वीकार कर सकता हूं। किन्तु क्या आपको यह मालूम है कि हमारी तरफ के ब्राह्मण का भोजन यदि सौ गज की दूरी से भी अब्राह्मण देख ले, तो वह भोजन त्याग देगा। छूने की बात तो दूर रही। मैं आपको यह भी बतला दूं कि यदि सड़क पर कोई अब्राह्मण या शूद्र किसी ब्राह्मण के भोजन के समय बोल दे, तो क्रुद्ध होकर वह भोजन छोड़ देगा। उस दिन वह भोजन ही नहीं करेगा। यदि इस दशा को घोर उपेक्षा न कहा जाय, तो इसका क्या अर्थ लगाया जा सकता है। क्या ब्राह्मणों ने अपने को अत्यधिक उच्च नहीं समझ लिया है। क्या आप कृपा कर इस विषय में अपना विचार प्रकट करेंगे। मैं स्वयं एक ब्राह्मण युवक हूं, इसलिये मुझे इन बातों का निजी तौर पर ज्ञान है।"

अछूत प्रथा शत मुखवाला पिशाच है। यह एक घोर नैतिक तथा धार्मिक प्रश्न है। मेरे लिये अंतर्भोज सामाजिक प्रश्न है। इस अछूत प्रथा के भीतर अवश्य दूसरों के लिये एक घृणा भाव छिपा हुआ है। समाज की जीवनी शक्ति में घुन की तरह लग कर यह सत्यानाश कर रही है। यह प्रथा मनुष्य के अधिकार को ही अस्वीकार करती है। इसका तथा अंतर्भोज, सहभोज का कोई संबंध नहीं है। और मैं समाज सुधारकों से आग्रह करूंगा कि वे इन दोनों चीजों को मिलाने की गड़बड़ न करें। यदि वे ऐसा करेंगे, तो अछूत प्रथा अस्पृश्य लोगों के उद्धार के पवित्र कार्य को धक्का पहुंचायेंगे। ब्राह्मण संवाददाता की कठिनाई वास्तविक है। इससे पता चलता है कि किस हद दर्जे तक यह बुराई पहुंच सकती है। प्राचीन युग के समान ब्राह्मण शब्द विनम्रता, शालीनता, पांडित्य, विद्या, त्याग, पवित्रता, साहस, क्षमाशीलता तथा सत्य ज्ञान के लिये पर्यायवाची होना चाहिये था। पर आज यह पवित्र भूमि ब्राह्मण अब्राह्मण के भेद से विनष्ट हो रही है। अनेक दशाओं में ब्राह्मण का वह बड़प्पन चला गया है, जो उसको सेवा के कारण जन्मसिद्ध अधिकार हो गया था, पर जिसका वह कभी दावा नहीं करता था। आज जिस वस्तु का उसे अधिकार नहीं रह गया है, उसी पर वह हताश होकर अपना स्वत्व प्रकट कर रहा है, और इसीलिये दक्षिण भारत के कुछ भागों में अब्राह्मण उससे ईर्ष्या करने लगे हैं। पर हिन्दू धर्म तथा देश के सौभाग्य से इस संवाददाता ऐसे भी ब्राह्मण मौजूद हैं, जो दृढ़तापूर्वक इस अनुचित सत्व का निरादर कर रहे हैं, इसकी मांग का विरोध कर रहे हैं और अपनी परम्परागत महत्ता के अनुसार अब्राह्मणों की निस्स्वार्थ सेवा कर रहे हैं। हर जगह ब्राह्मण ही आगे बढ़ कर अछूत प्रथा का विरोध कर रहे हैं।

आंध्र संवाददाता ने जिस प्रकार के ब्राह्मणों का उल्लेख किया है, उनसे मैं आग्रहपूर्वक अनुरोध करूंगा कि समय की गति पहचानें और बड़प्पन के झूठे भाव त्याग दें तथा अब्राह्मण को देखने मात्र से जो पाप लगने का अंध-विश्वास उन्हें हो गया है, या उसके वचन मात्र से उन्हें भोजन खराब हो जाने का

जो भ्रम हो जाता है, उसका त्याग कर दें। ब्राह्मणों ने ही संसार को यह उपदेश दिया था कि वे हर एक वस्तु को ब्रह्ममय देखें। ऐसी दशा में कोई बाहरी वस्तु उन्हें अपवित्र नहीं कर सकती। अपवित्रता तो भीतरी वस्तु है। ब्राह्मणों को चाहिये कि वह पुनः यह संदेश दें कि हामरे मन के दुर्भाव ही वास्तविक अछूत तथा अदर्शनीय हैं। उन्हीं ने संसार को यह सिखलाया था :—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः

आंध्र संवाददाता ने जो कुछ कहा है, उससे अब्राह्मणों को उत्तेजित नहीं हो जाना चाहिये। उनकी ओर से देशभक्त ब्राह्मण ही इस संवाददाता के समान लड़ाई लड़ लेंगे। आजकल अब्राह्मणों में कुछ ब्राह्मणों के कुचाल के कारण ब्राह्मणों के प्रति जो दुर्भाव उत्पन्न हो गया है, वह अनुचित है। उनमें इतनी शालीनता होनी चाहिये कि जो लोग स्वयं अपने प्रति दुराचरण कर रहे हैं, उनसे सदाचरण की आशा करें। यदि मेरी बगल से निकल जाने वाला अपने को अपवित्र समझता है, या यह समझता है कि वह मेरी वायु के स्पर्श से दूषित हो गया है, तो मुझे अपमानित नहीं होना चाहिये। हमारे लिये इतना ही पर्याप्त है कि उसके कहने से रास्ता न छोड़ दें या इस डर से कि मेरी वाणी उसे दूषित कर देगी, बोलना न बंद कर दें। जिस प्रकार अपने प्रति उपेक्षा भाव मुझे पसंद नहीं है, उसी प्रकार उसके प्रति भी उपेक्षा भाव दिखलाना मेरे लिये अनुचित है। हां, उसके अंध-विश्वास तथा अज्ञान के प्रति हमारे हृदय में दयाभाव होना उचित है। यदि अब्राह्मण में लेश मात्र भी असंयमशीलता रह जायगी, तो उसका उद्देश्य सफल न होगा.......... उसका काम पूरा न होगा। किसी भी दशा में उसे सीमा से आगे बढ़ कर ब्राह्मण को परेशान नहीं करना चाहिये। हिन्दू धर्म तथा मनुष्य का सब से सुन्दर फूल ब्राह्मण है। मैं ऐसी कोई बात नहीं होने देना चाहता जिससे वह मुर्झा जाय। यह मैं जानता हूं कि वह अपनी रक्षा कर सकता है। इसके पहले वह बहुत से तूफानों का सामना और अपनी रक्षा कर चुका है। अब्राह्मणों के सिर यह कलंक नहीं होना चाहिये कि उन्होंने फूल की सुगंधि तथा ज्योति छीनने की चेष्टा की। अब्राह्मणों का नाश कर ब्राह्मणों का उदय मुझे अभीष्ट नहीं है। मैं चाहता हूं कि वे उस उच्च पद को प्राप्त करें, जिसे ब्राह्मण पहले प्राप्त कर चुके थे। ब्राह्मण जन्मना होते हैं, ब्राह्मणत्व नहीं। हममें से निम्न से निम्न भी इस गुण का प्रतिपादन कर सकता है।

गंदा भोजन और गंदा विचार

सदियों से जो अंध-विश्वास तथा परम्परा मनुष्य के हृदय में अपना घर बना लेती है, वह बहुत देर में उसे छोड़ती है। ऐसे बहुत से सनातनी हिन्दू हैं, जो उदारचेता हैं, पर परम्परा तथा रूढ़ि ने उनके हृदय में जो स्थान बना लिया है, उसके कारण वे अछूतों के साथ दुर्व्यवहार में कोई दूषण नहीं देख पाते। एक संवाददाता लिखते हैं:—

"मैं आपका एक विनम्र अनुयायी हूं, यद्यपि मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं अग्रिम श्रेणी के अनुयायियों में से हूं। पर अछूत प्रश्न पर मेरे विचार तथा भाव आपके समान उग्र नहीं हैं। मैं उनसे सहमत नहीं हूं, जो यह कहते हैं कि अछूत दबाये तथा गिराये जा रहे है। मैं इसे अपना कर्तव्य समझता हूं कि आपको नम्रतापूर्वक सूचित करूं कि अछूत पहले स्वाधीन तथा सुखी थे। पंचमों का भूत तथा वर्तमान इतिहास देख कर मैं उनकी आत्मा की सराहना नहीं कर सकता, उसने उन्हें कहीं का न छोड़ा। शिक्षा कही जाने वाली वस्तु तथा सरकारी ओहदों के टुकड़ों की प्यास ने उन्हें और भी दुर्गति में डाल रखा है। जो भी व्यक्ति शारीरिक परिश्रम त्याग कर नौकरी-चाकरी या ओहदे पर आता है, वह और भी बुरी दशा को प्राप्त करता है। हम ब्राह्मणों का यही दुखदायी अनुभव है। मुझे वह दिन याद है, जब पंचमों को कुटुंब का एक अंग समझा जाता था। प्रति मास उनके भोजन-छाजन का प्रबंध किया जाता था। पर अब वे दिन चले गए। अधिकांश अछूत या तो विदेश जा कर गुलामी कर रहे हैं, या फौज में १५-१५ रुपये माहवार के शाही वेतन पर नौकरी कर रहे हैं। मुझे भय है कि यदि आप उनका ऐसा उद्धार करना चाहते हैं, तो वह सफल न हो सकेगा। निजी तौर पर मैं यह महसूस करता हूं कि उनका सामाजिक सुधार करना चाहिये, पर ऐसा तो एक दिन में जादू से नहीं हो सकता। उनकी शिक्षा के लिये करोड़ों रुपया खर्च करना होगा। उनकी आर्थिक दुर्दशा सुधारने और सन्मार्ग पर लाने के लिये करोड़ों रुपया खर्च करना होगा। सदियों से जीव-हत्या तथा गोमांस भोजन, मदिरा सेवन की लत को सुधारना होगा। इन्हीं तीन बातों ने प्रधानतः उन्हें समाज का एक वहिष्कृत अंग बना दिया। वे ग्राम के एक कोने में अलग रहने के लिये छोड़ दिये गये। यदि ऐसा न होगा, और केवल दूसरे वर्गों से यह कहा जायगा कि वे हरिजनों को गले से लगावें, तो इससे समाज की मर्यादा भंग होगी, और मैं नहीं समझता कि आप ऐसा करना चाहते हैं।"

मर्यादा तो भंग होती है अछूत को न छूने में। मदिरा सेवन, गो-मांस भक्षण तथा त्याज्य भोजन के भक्षण से क्या होता है? वह निस्संदेह बुरा काम करता है, पर यह काम उतना बुरा नहीं है, जितना कि अधिक परिश्रम तथा गुप्त पाप करना। जैसे समाज किसी घोर पापी को अछूत नहीं समझता, इसी प्रकार वह भी अछूत नहीं समझा जा सकता। पापियों से घृणा नहीं करनी चाहिये। उन पर दया करनी चाहिये। उनकी सहायता करनी चाहिये कि वे पाप से मुक्त हो जायं। हमें अपनी अहिंसा का गर्व है, पर जब तक हिन्दुओं में छुआछूत है, हम अपने को अहिंसक नहीं कह सकते। अछूतों में जिन दुर्गुणों की लेखक शिकायत करता है, उनकी जिम्मेदारी हमारे सिर है। हम उनके सुधार के लिये क्या कर रहे हैं? अपने परिवार के किसी व्यक्ति के सुधार के लिये हम कितनी बड़ी संपत्ति लगा देते हैं। क्या अछूत हिन्दू परिवार के एक अंग व्यक्ति नहीं हैं। हिन्दू धर्म की तो शिक्षा है कि विश्व मात्र को, मनुष्य मात्र को अविभक्त कुटुंब समझो और संसार में हर एक परस्पर के दोष, पाप..

का जिम्मेदार और भागी होता है। यदि हम इस महान सिद्धांत को व्यापक रूप में न स्वीकार कर सकें, तो कम से कम हिन्दू होने के नाते अछूतों को तो अपना समझें।

और, गंदा भोजन करना या गंदा विचार धारण करना, दो में से कौन चीज बुरी है? रोज हमारे हृदय में असंख्य अछूत अथवा गंदे विचार उठा करते हैं। हमें अपनी रक्षा उन्हीं से करनी चाहिये। क्योंकि वे ही वास्तविक अछूत और त्याज्य वस्तुएं हैं। हमने अपने अछूत भाइयों के साथ जो अन्याय किया है, उसका प्रायश्चित उनके प्रेमपूर्ण आलिंगन से ही होगा। संवाददाता को अछूतों की सेवा करने के कर्तव्य के संबंध में कोई आशंका नहीं है। हम उनकी किस प्रकार सेवा कर सकते हैं, यदि उनके दर्शन मात्र से ही हम गंदे हो जाते हैं।

हरिजनों से रोटी लेते लज्जित न हों

....ग्राम-सेवक, साहित्यिक या ज्ञान विलासी जीवन बिताकर ग्रामवासियों को असली शिक्षा दान नहीं दे सकता। उसके पास तो बसूला होगा, हथौड़ा होगा, कुदाली होगी, फावड़ा होगा, किताबें तो थोड़ी सी ही होंगी, किताबें पढ़ने में तो वह कम से कम समय लगायेगा। लोग जब उससे मिलने आवें, तो उसे पड़े-पड़े किताबों के पन्ने उलटते हुये न देखें। उन्हें तो वह औजार चलाता हुआ ही मिले। मनुष्य जितना खाता है, उससे अधिक पैदा करने की शक्ति ईश्वर ने उसे दी है। दुर्बल से भी दुर्बल मनुष्य इतना पैदा कर सकता है। इसके लिये वह अपने बुद्धि-बल का प्रयोग करेगा। लोगों से यह कहेगा कि मैं आपकी सेवा करने के लिये आया हूं, पेट के लिये मुझे दो रोटियां दे दें। सम्भव है कि लोग उसका तिरस्कार करें। यह होते हुये भी उसे वे अपने गांव में टिका तो रहने देंगे ही। किसी जगह उसे सनातनी रोटी न दें, तो हरिजन भाई तो देंगे ही। उसने यदि सर्वार्पण कर दिया है तो हरिजनों के घर से रोटी लेते उसे लज्जित होने की जरूरत नहीं।

ह० से, ७ सितम्बर, १९३४ ई०

हड़ताल और भंगी

हड़ताल और भंगी

कुछ ऐसी चीजें हैं जिनके बारे में हड़ताल त्याज्य मानी जानी चाहिये। भंगियों का काम ऐसी ही एक चीज है। दूसरी त्याज्य चीजों की चर्चा मैं यहां नहीं करना चाहता। भंगियों की हड़ताल के बारे में मेरे विचार आज के नहीं हैं, बल्कि तब के हैं जब मैं डरबन में वकालत करता था। यानी सन् १८९७ ई० के आसपास के हैं। उस समय डरबन में हड़ताल हुई थी और सवाल यह था कि उसमें भंगी भी शामिल हों या नहीं। मैंने अपनी राय हड़ताल के खिलाफ दी। जिस तरह आदमी हवा के बिना नहीं जी सकता, उसी तरह घर की सफाई और गांव की सफाई के बिना भी अधिक दिन नहीं निकाल सकता। कोई न कोई बीमारी अवश्य ही फैल जायगी।

बम्बई के भंगी

इसलिये जब मैंने बम्बई के भंगियों की हड़ताल के बारे में पढ़ा, तो मैं घबराया। सौभाग्य से हड़ताल जैसे-तैसे समाप्त हो गयी। जहां तक मुझे पता चला है, भंगी भाई-बहनों ने पंच के पास जाने से इंकार कर दिया और अपनी मांग के वाजिब या गैरवाजिब होने का फैसला कराये बिना उसे कबूल कराने के बाद ही उन्होंने हड़ताल समाप्त की। भंगी भाई-बहिनों के लिये मेरे मन में बहुत ज्यादा भाव होते हुये भी, या उसी वजह से, मुझे कहना चाहिये कि इस तरह जबरदस्ती से मांग हर्गिज कबूल न कराई जानी चाहिये। इससे आखिर उन्हीं का नुकसान होगा। शहर के लोग हमेशा इस तरह कभी कबूल न करेंगे और अगर करेंगे तो शहर की व्यवस्था ही बिगड जाय, जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत सच हो जाय और अन्धेर मच जाय। निष्पक्ष पंच की सूचना कभी नामंजूर न की जानी चाहिये। ऐसा करना कमजोरी की निशानी है। भंगी तो अपनी सेवा एक दिन के लिये भी बन्द नहीं कर सकता। उसके पास न्याय पाने के दूसरे बहुतेरे साधन हैं।

सफाई और नागरिक

शहर वालों को छुआछूत का ख्याल छोड़कर अपने घर की और शहर की गटरों की और पाखानों को साफ करने की कला हासिल करनी चाहिये, ताकि कभी फिर ऐसा मौका आने पर घबरायें नहीं, थोडे समय के लिये यह सेवा करें, और किसी जबर्दस्ती के सामने न झुकें। मैं तो यहां तक कहूंगा कि मिलिटरी को तो ऐसे काम सीखने ही पड़ते हैं, इस लिये उससे यह सेवा ली जा सकती है। अगर हम स्वराज्य की देहरी पर हैं, तो हमें मिलिटरी को अपनी समझ कर रचनात्मक कार्य में उसका उपयोग करने से जरा भी हिचकिचाहट न होनी चाहिये। आज तक उसका उपयोग हमारे खिलाफ गोली चलाने में ही हुआ है।

ग्राज मिलिटरी वाले हल चला कर ग्रनाज पैदा करें, कुएं खोदें, पाखाना साफ करें ग्रौर दूसरे कई रचनात्मक-काम करके लोगों की ग्रांखों की किरकिरी न रह कर सब के प्यारे बनें ।

ग्रपना कर्तव्य

सब का धर्म है कि चूंकि ग्रब हड़ताल समाप्त हो गयी है, इसलिये वे भंगियों को ग्रपने सगे भाई-बहन समझ कर उनमें शिक्षा का प्रचार करें, उनको ग्रच्छे मकान दें, वे जहां रहना चाहें, वहां रहने की दूसरों की तरह उनको छूट दी जाय। इस बात की भी जांच होनी चाहिये कि उन्हें वाजिब तनख्वाह मिलती है या नहीं ग्रौर बिना मांगे उनके साथ सच्चा न्याय करें। जब चारों तरफ ऐसा होगा, तभी स्वराज्य ग्राने पर हम उसकी शोभा बढ़ा सकेंगे, ग्रौर उसकी रक्षा कर सकेंगे।

नई दिल्ली, १४ ग्रप्रैल, १९४६ ई०

भंगियों की हड़ताल

जिन लेखक ने यह पूछा है कि नाज लूटना ठीक है या नहीं, वे यह भी पूछते हैं कि ग्रगर हड़ताल के सिवा कोई चारा न रह जाय तो बेचारे भंगियों को क्या करना चाहिये? वे गुस्से में ग्राकर पूछते हैं, क्या भंगी गंदगी में सड़ते हुये ग्रपना काम उसी तनख्वाह पर करते जायं, जिससे उनका पेट भी नहीं भरता?

सवाल ठीक है। मेरा यह दावा है कि ऐसी हालतों में हड़ताल ठीक इलाज नहीं। भंगियों को चाहिये कि वे जनता को ग्रौर खास कर उस म्युनिसिपल कमेटी को, जिसमें वे नौकर हैं, एक नोटिस दें कि उनको ग्रपना काम छोड़ देना पड़ेगा, क्योंकि इस काम के करने वालों को जिन्दगी में भूखों मरने के सिवा कुछ नहीं मिलता। ग्रपना काम हमेशा के लिये छोड़ देने में ग्रौर हड़ताल करने में बड़ा फर्क है। हड़ताल थोड़ी देर के लिये होती है, ग्रौर उसमें ग्राशा रहती है कि तकलीफ दूर हो जायगी। एक काम को हमेशा के लिये इसलिये छोड़ दिया जाता है कि तकलीफ दूर होने की कोई ग्राशा नहीं होती। ग्रगर काम ठीक तरीके से बन्द किया जाय, तो बन्द करने वालों को काफी दिन पहले नोटिस देना चाहिये। ग्रौर यह भी ग्राशा होनी चाहिये कि किसी ग्रौर काम में उन्हें ग्रौर ज्यादा पैसे मिल जायेंगे ग्रौर वे साफ सुथरी जिन्दगी बिता सकेंगे। ऐसा कदम समाज को एक शर्मनाक नींद से झंझोड़ कर जगा देगा। वह जनता के जमीर (ग्रन्तरात्मा) पर जमी हुई काई को साफ कर देगा। ग्राज इससे ग्रात्मा घुटी जाती है। एक ही बार में भंगियों के काम का दर्जा बढ़ जायगा ग्रौर वह एक सुन्दर हुनर गिना जाने लगेगा। यह दरजा उसे बहुत पहले मिलना चाहिये था।

नई दिल्ली, १५ जून, १९४६ ई०

एक हरिजन का खत

एक हरिजन भाई फरियाद करते हैं और भंगियों की हड़ताल के बारे में लिखे मेरे लेख में नुक्स निकालते हैं। पहला नुक्स या दोष यह है कि मैंने हरिजन का मीठा नाम छोड़ कर भंगी शब्द का इस्तेमाल किया। इस टीका से पता चलता है कि टीका करने वाले का मन कितना नाजुक है। जो लोग अछूत जाति के माने जाते हैं उनके लिये गुजरात के एक अछूत भाई ने हरिजन नाम सुझाया और मैंने उसे अपना लिया। इसका मतलब यह नहीं किया जा सकता कि मौका पड़ने पर छोटी जातियों या फिरकों के लिये जो नाम चालू हैं उनका कभी इस्तेमाल ही नहीं किया जा सकता। फिर, मैं खुद तो अपने को हरिजन या भंगी कहता हूं, क्योंकि हरिजनों में भी भंगियों की जाति सब से हल्की मानी जाती है। इस-लिये मुझे अपने को भंगी कहना अच्छा मालूम होता है। जब मैं दिल्ली की भंगी बस्ती में रहने लगा तो भंगी भाइयों ने ही भंगी नाम पर विरोध किया और उन्होंने सुझाया कि मैं उनको मेहतर कहा करूं। मैंने उन्हें समझाया कि जहां एक ही पेशे के बताने वाले दो नाम हों वहां चाहे जो नाम बरता जाय, उसमें हमें उज्र क्यों हो। दूसरे, हल्का माने जाने पर भी तन्दुरुस्ती की हिफाजत के ख्याल से अच्छा पेशा है, उसके नाम की हमें परवाह न करनी चाहिये। आखिर यह शब्द कैसे भी क्यों न बना हो, मेरे लिये तो भंगी भगवान शंकर का एक नाम है और शंकर मेहतर या भंगी की तरह तन्दुरुस्ती देने वाले हैं। भंगी या मेहतर हमारे घर को साफ रख कर हमें तन्दुरुस्ती देते हैं, जब कि भगवान शंकर हमारे दिल को साफ रख कर हमें भला चंगा बनाते हैं।

टीकाकार की दूसरी टीका ज्यादा गम्भीर है, तिस पर पूर्व ग्रह की वजह से गलतफहमी पैदा हो गई है। जिस चीज पर हमारा अधिकार होता है उसे भी अगर हम जबरदस्ती लेना चाहते हैं, तो वह झगड़े की जड़ बन जाती है, शायद हज्म भी नहीं होती। हड़तालियों को जो कुछ मिला है, मेरा खयाल है कि वह उन्हें जबरदस्ती से मिला है। किसी के पाखाने साफ करने का मेरा पेशा हो और मैं उन्हें साफ करने से इन्कार करूं, तो यह मेरी जबरदस्ती न होगी तो और क्या होगी? यह सच है कि पाखाने साफ करने के लिये मैं बंधा नहीं हूं। इसलिये कहा जा सकता है कि पाखानों की सफाई के लिये मुझे मनमानी शर्त पेश करने का हक़ है। मेरे विचार में ऐसी मनमानी शर्त पेश करने का इकतरफा हक़ मुझे न होना चाहिए। होने पर भी मुझे उसका उपयोग न करना चाहिये। यहां मैं इसके कारणों की चर्चा नहीं करना चाहता। जिस तरह मैंने भंगी का फर्ज बताया है उसी तरह मैंने यह भी बताया है कि शहर वालों का क्या फर्ज होना चाहिये। मैं कई दफा यह कह चुका हूं कि भंगियों के साथ तरह-तरह के अन्याय ऐसे होते रहते हैं। मुझे इसमें शक नहीं कि शहर वाले अपना फर्ज अदा नहीं करते। चुनांचे भंगी भाई हड़ताल करें या न करें शहर वालों को चाहिये कि वे इसका ख्याल न करते हुये, स्वतंत्र रीति से अपना फर्ज

अदा करें। यह फर्ज क्या है, सो मैं बता चुका हूं। उनके रहने की बस्तियां, सफाई के तरीके, काम करते समय की पोशाक, उनकी और उनके बाल-बच्चों की तालीम वगैरह ऐसे सवाल हैं, जिनका हल वक्त रहते हो जाना चाहिये। इसके लिये भंगियों को हड़ताल करने की नहीं, बल्कि शहर वालों को अपनी आवाज़ बुलन्द करने की जरुरत है।

तीसरी टीका मिलिटरी से काम लेने के बारे में है। मैंने मिलिटरी का जो उपयोग सुझाया है, वह निर्दोष है। मेरे सुझाव में तो सिर्फ यही कहा गया है कि मिलिटरी को भंगी का काम करना चाहिये। टीका का जवाब लिखते वक्त अपने लेख को मैं दुबारा पढ़ गया हूं। उसका एक लफ्ज़ भी मैं वापिस लेने को तैयार नहीं। उसे लिखने का मुझे कोई पछतावा नहीं। इसलिये हरिजन भाइयों को मेरी सलाह है कि वे उस लेख को सीधी तरह पढ़ें। ऐसा करने पर उन्हें पता चलेगा कि मेरे पहले के और आज के विचारों में जरा भी फर्क नहीं है।

शिमला, ५ मई, १९४६ ई०

हड़ताल तो अन्तिम अस्त्र है

मैं चाहता तो यही हूं कि एक बैरिस्टर को जितना पैसा मिलता है उतना ही एक भंगी को भी मिले। परन्तु यह बात कहने में जितनी आसान है, करने में उतनी ही मुश्किल है। दूसरे, ये सब बातें हड़ताल करने से पूरी नहीं होतीं। वेतन कमीशन की सिफारिशों से जो वेतन बढ़े हैं, पहले हमें उन्हें हजम करना चाहिये और फिर बाद में अपने पक्ष में लोकमत तैयार करना चाहिये। हड़ताल का भी एक शस्त्र होता है। यों ही हड़ताल कर बैठने से कोई लाभ नहीं।

क्या हम आपस की लड़ाई में ही कट कर मर जाना चाहते हैं ? यह कोई देश का काम नहीं है, कोरा स्वार्थ का काम है। एक ओर तो हमें आजादी मिली, अंग्रेज यहां से गये और हुकूमत का काम हमने चलाना शुरू ही किया कि दूसरी ओर हम पैसों के बटवारे पर ही लडाई करने लगे। मैं तो यहां तक मानता हूं कि एक बैरिस्टर को जितना पैसा मिलता है, उतना ही एक भंगी को भी मिलना चाहिये। मगर बैरिस्टर तो अधिक छीन लेता है और हम खुशी से उसे दे देते हैं। मैं भी तो कभी बैरिस्टरी करने लगा था, मगर मैंने कुर्सी में पड़े रह कर पैसे लूटना एक निकम्मी बात समझी और इसलिये भंगी बन गया। मगर यह बातें कहने में तो अच्छी लगती हैं, करने में मुश्किल होती हैं। आखिर हम ऐसे आदमी कहां से लायें जो गवर्नर जनरल, बैरिस्टर और व्यापारी हो सकें और साथ ही साथ पैसा भी उतना ही लें जितना एक भंगी लेता है। एक दर्जी भी चार पांच रुपये रोज कमा लेता है, मगर भंगी को कौन इतने पैसा देता है ? अतः आज ज़रूरत इस बात की है कि मनुष्य अपना स्वभाव बदले, मनुष्य में उदारता पैदा होनी चाहिये। यह नहीं कि हम अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये सब का गला काट दें। बर्मा में जो खून हुये हैं, उनसे भी अगर हम कोई सबक नहीं लेंगे तो हिन्दुस्तान और सारी दुनिया का क्या हाल होगा ? यह हिसाब आप अपने घर जाकर करें।

नई दिल्ली, २६ जुलाई, १९४७ ई०

हरिजन-सेवक संघ

हरिजन सेवक संघ की कसौटी

सवर्ण हिन्दुओं के जरिये हरिजनों में सुधार का काम कराने की नीति के लिये मैं जवाबदार हूं। सवर्ण हिन्दुओं को अपने पापों का प्रायश्चित करना है। उसके लिये जरूरी लियाकत न होने से समूचे ऊंची जाति के हिन्दू कोई सीधी सेवा या खिदमत नहीं कर सकते, लेकिन पैसे देकर तो वे सब इस काम में मदद दे सकते हैं। प्रायश्चित करने का यह एक रास्ता माना जायगा। [इन शब्दों में गांधी जी ने हरिजन सेवक संघ की, जिसे वे सही मानों में प्रायश्चित करने वालों का संघ कहा करते हैं, मौजूदा पालिसी या नीति समझाई थी। इस बैठक में संघ के मेम्बरों ने गांधी जी से कई सवाल पूछ कर और गांधी जी द्वारा उनके जवाब पाकर आत्म-निरीक्षण किया। इसलिये इस बैठक का खास महत्व (अहमियत) है। यह खुले दिल से खुले शब्दों में विचार करने की क्रिया थी। बैठक के सवाल जवाब नीचे दिये जाते हैं]

आत्म-निरीक्षण

सवाल—कम्युनिस्ट पार्टी ने कामयाबी के साथ भंगी मेहतरों के संघ कायम किये हैं और हड़ताल वगैरह के जरिये उनके हक़ दिलाने में उनकी मदद की है। लेकिन हरिजन सेवक संघ की प्रवृत्तियां कम ज्यादातर हरिजनों के भले के कामों से ही निस्बत रखती हैं। इसलिये संघ हरिजनों में लोकप्रिय बनने में कम्युनिस्टों का कामयाबी के साथ मुकाबला नहीं कर सकता। इसे मद्देनजर रखते हुये क्या आप नहीं मानते कि हरिजन सेवक संघ को अपनी नीति और काम करने का तरीका बदल देना चाहिये?

जवाब—सस्ती ख्याति या शोहरत का लालच छोड़ कर सिर्फ न्याय या इन्साफ की भावना से ही हमें अपनी पालिसी तय करनी चाहिये। अगर हरिजन सेवक संघ को यह यकीन हो जाय कि जो कुछ वह करता है ठीक करता है, तो दूसरे क्या करते हैं या क्या नहीं करते, इसकी परवाह किये बिना वह अपना काम करता रहेगा। इस तरह काम करते हुये हम भंगियों के संघ कायम कर सकते हैं या हड़ताल भी करवा सकते हैं। लेकिन ऐसा हम सिर्फ हरिजनों की समाजी व आर्थिक (माली) हालत को सुधारने के लिये ही करेंगे, किसी (सियासी) राजनीतिक या दूसरे ऐसे मकसद से नहीं।

स०—हरिजनों में यह धारणा बढ़ती जा रही है कि कांग्रेस हरिजनों के वाजिब हकों के बनिस्बत मुसलमानों की मांगों का ज्यादा खयाल रखती है। इस बाबत आपकी क्या राय है?

ज०—एक राजनीतिक (सियासी) संस्था या इदारा होने की वजह से कांग्रेस पर सियासी दबाव का ज्यादा असर पड़ सकता है और हरिजनों को

बनिस्बत मुसलमान ऐसा दबाव कांग्रेस पर बहुत ज्यादा डाल सकते हैं। अगर कांग्रेस इस दबाव के सामने झुक जाती है, तो उसे इसकी कीमत भी चुकानी पड़ेगी। सो जो कुछ भी हो, हरिजन सेवक संघ तो एक गैरसियासी संस्था है। इसलिये फायदे या नुकसान का ख्याल छोड़ कर उसे हरिजनों के लिये अपने शुरूआती फर्जों का ही खयाल रखना चाहिये।

छुआछूत और सवर्ण हिन्दू

स०—श्री श्यामलाल के साथ हुये अपने अभी-अभी के पत्र-व्यवहार (खतो-किताबत) में आपने कहा है कि अगर छूआछूत को नाबूद करना हो, तो जात-पांत को जड़ से मिटा देना होगा। तो फिर अस्पृश्यता-निवारण कार्य, छुआछूत मिटाने के काम को अपने जात-पांत मिटाने की व्यापक और पवित्र लड़ाई का एक हिस्सा क्यों नहीं बनाते? अगर आप जड़ को खोद डालेंगे, तो टहनियां अपने आप सूख जायेंगी।

ज०—अमुक विचार रखना यह मेरे लिये एक बात है, और उन विचारों को सारे समाज से मनवाना बिलकुल दूसरी बात है। मैं उम्मीद रखता हूं कि मेरी बुद्धि हमेशा विकसती और आगे बढ़ती रहती है। मुमकिन है कि सब लोग इस दिशा में मेरा साथ न दे सकें। इसलिये ज्यादा से ज्यादा धीरज रख कर धीमी चाल से आगे बढ़ने में ही मुझे संतोष मानना चाहिये। नवजीवन प्रकाशन मंदिर ने वर्ण-व्यवस्था नाम का मेरे लेखों का जो संग्रह अभी अभी छापा है, उसमें लिखी मेरी भूमिका (तमहीद) में आपने देखा होगा कि सिद्धांत (उसूल) की दृष्टि से मैं आप के साथ हूं। अगर मैं १२५ साल तक जिया, तो मुझे उम्मीद है कि समूचे हिंदू समाज को अपने विचार का बना दूंगा।

स०—क्या आप मौजूदा हालत में भी तथाकथित (नामनिहाद) सवर्ण हिन्दुओं को यह राय देंगे कि वे खास-खास जगहों में हरिजनों को प्राथमिक (शुरुआती) समाजी और शहरी हक़ दिलाने का आन्दोलन खड़ा करें? इसके लिये अगर जरूरी हो तो क्या आप हरिजन सेवक संघ को सवर्ण हिन्दुओं के खिलाफ सत्याग्रह करने की सलाह देंगे?

ज०—संघ को एक संस्था के नाते सवर्ण हिन्दुओं के खिलाफ सत्याग्रह करने की सलाह मैं नहीं दूंगा। लेकिन संघ के मेम्बर अपनी-अपनी जगहों में व्यक्तिगत रूप से (जाती तौर पर) ऐसा सत्याग्रह करें, इसकी न सिर्फ मैं सलाह दूंगा बल्कि उम्मीद भी रखूंगा। अगर वे सही स्पिरिट से ऐसा करेंगे, तो मैं उनके इस काम की ताईद करूंगा। यह उनका फर्ज है।

रफ्तार को बढ़ाओ

स०—क्या आप सूबों में लोकप्रिय सरकारों की गैरमौजूदगी में भी हरिजन सेवक संघ को यह सलाह देंगे कि वह हरिजनों के मंदिर-प्रवेश, मंदिर में दाखिल होने के प्रोग्राम को जोरशोर से चलावें?

ज०—जरूर दूंगा। मैं मानता हूं कि आज भी यह काम हो रहा है। लेकिन उसकी रफ्तार बहुत धीमी है। उसकी रफ्तार बढ़े, तो मुझे सचमुच बड़ी खुशी होगी।

स०—क्या संघ के मेम्बर हरिजनों के साथ बैठ कर खाना खाने से इनकार कर सकते हैं? क्या इस बारे में आप के विचारों में कोई फेरफार हुआ है?

ज०—एक वक्त बिला शक मैंने यह कहा था कि सहभोज साथ बैठकर खाना छूआछूत को मिटाने के आन्दोलन (तहरीक) का जरूरी हिस्सा नहीं। फिर भी मेरे जाती विचार तो सहभोज के पक्ष में थे। लेकिन आज मैं उसको बढ़ावा देता हूं। असल में आज तो मैं इससे भी आगे बढ़ गया हूं। वर्ण-व्यवस्था पर लिखी मेरी भूमिका या तमहीद से यह बात साफ़ ज़ाहिर होती है।

स०—क्या हरिजन सेवक संघ का यह फ़र्ज नहीं है कि वह ग्राम पंचायतों, म्युनिसिपैलिटियों और धारासभाओं में हरिजनों की वाजिब नुमाइन्दगी प्रतिनिधित्व की मांग करके उन्हें राजनीतिक या सियासी हुकूमत दिलाने की कोशिश करे?

ज०—बेशक ऐसा किया जाना चाहिये। इसके लिये जितनी कोशिश की जाय थोड़ी है।

स०—क्या हरिजन छात्रालयों (बोर्डिंग हाउस) में और बड़ी उमर के हरिजनों की आम सभाओं में हिन्दू धर्म के बुनियादी उसूलों की तालीम देना हरिजन सेवक संघ का फर्ज नहीं?

ज०—हरिजन बच्चों और बड़ी उमर के हरिजनों को हिन्दू धर्म के बुनियादी उसूलों का इल्म कराना संघ का पहला फर्ज है। अगर ऐसा न किया गया, तो मुमकिन है कि बड़े होने पर वे हिन्दू धर्म को छोड़ दें। और इसकी सारी जिम्मेदारी उन लोगों पर होगी, जिन्होंने उन्हें इस ज्ञान से वंचित या महरूम रखा।

पश्चात्ताप करने वालों का संघ

गांधी जी से पूछा गया: क्या हमें संघ में हरिजन नुमाइन्दों को लेने की या संघ की कार्यकारिणी समिति (कारोबारी) में कम से कम एक हरिजन मेम्बर लेने की मिसाल नहीं कायम करनी चाहिये?

इसके जवाब में गांधी जी ने कहा :—

अल्पमतों की नुमाइन्दगी के सवाल पर मैकडानल्ड सरकार के निर्णय में जो फेरफार किया गया था, उसी का नतीजा पूना पैक्ट था। उस वक्त यह महसूस किया गया कि अगर समाज को बरबादी से बचाना हो, तो हिन्दू धर्म को छूआछूत के शाप या कलंक से पूरी तरह से छुड़ाना चाहिये। इसके लिये हिन्दू समाज को

सच्चे हृदय परिवर्तन (दिल बदलने) की ओर अपने पुराने पापों का प्रायश्चित्त करने की ज़रूरत थी। इसी मक़सद से हरिजन सेवक संघ कायम किया गया था।

इसीलिये मैं इन दोनों सुझावों के खिलाफ हूं। मैं जानता हूं कि मौजूदा इन्तजाम के मुताबिक संघ के बोर्ड में कुछ हरिजन भी शामिल किये गये हैं। लेकिन यह झूठ ठक्कर बापा की कमजोरी के कारण देनी पड़ी। मैंने हरिजन सेवक संघ को पश्चाताप करने वालों का संघ कहा है। छुआछूत को निभाने का पाप करने वाले तथाकथित (नामनिहाद) सवर्ण हिन्दुओं को प्रायश्चित करने की बात कहना ही इस संघ का ध्येय या मकसद है। एक हरिजन को संघ में शामिल करना तो सिर्फ मन समझाने की बात होगी, क्योंकि संघ में उसकी आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज के समान ही रह जायगी। थोड़े ही वक्त में वह संघ से निकल जाना पसन्द करेगा। यह कमेटियों के काम करने के अपने जाती तजरबे से कहता हूं। संघ हमेशा अपने मकसद तक नहीं पहुंच सकता, यह मैं जानता हूं। संघ चाहे तो अपने काम का दायरा बदल सकता है और अपनी कारोबारी में हरिजनों को बड़ी तादाद में शामिल कर सकता है। वह चाहे तो चुने हुये हरिजनों की ऐसी कार्यदक्ष (होशियार) कमेटी भी कायम कर सकता है, जो उस पर देख-रेख करे, उसे वाजिब सलाह दे और उसे सच्चे रास्ते पर चलते रहने की प्रेरणा दे।

पंचगनी, २० जुलाई, १९४६ ई०

साधुओं का सहयोग

हरिजनोद्धार के लिये साधुओं का सहयोग लेने का जो नया प्रयोग ग्वालियर रियासत में शुरू किया गया था उसके बारे में गांधी जी ने कहा :—

ग्वालियर रियासत के इस कदम के सही और वाजिब होने में मुझे बड़ा शक है। इसमें मुझे राजनीति या सियासत की बू मालूम होती है। इस काम में सच्चे साधुओं की मदद मिल सके, तो मैं उसका स्वागत करूंगा। लेकिन मैं कबूल करता हूं कि मेरी कल्पना के साधु मुझे इस रियासत में खोजने पर भी नहीं मिले। जो साधु मुझे देखने को मिले, उनसे मुझे निराशा ही हुई। कहीं-कहीं सच्चे साधु भी मिल सकते हैं और उनकी मदद का मैं स्वागत करूंगा। मगर इस काम में साधुओं की जमात की मदद लेने में मुझे डर मालूम होता है। अगर ऐसा प्रयोग किया भी गया तो मुझे डर है कि थोड़े वक्त में ही यह रास्ता छोड़ना पड़ेगा।

पंचगनी, २० जुलाई, १९४६ ई०

आखिरी निदान और इलाज

[सवाल जवाब खत्म हो जाने के बाद गांधी जी ने संघ की बैठक में शामिल हुये लोगों से संघ के काम में पहले के मुकाबले पैदा हुई शिथिलता या ढिलाई का अपना निदान और उसके इलाज के बारे में कुछ मामूली बातें कहीं।]

सवर्ण हिन्दुओं के जरिये हरिजनों के उद्धार का काम कराने की नीति या पालिसी के लिये मैं जिम्मेदार हूं। उन्हें प्रायश्चित करना है। जरूरी काबिलीयत न होने से सब हिन्दू हरिजनों की सीधी सेवा चाहे न कर सकें, मगर पैसे दे कर तो वे इस काम में मदद कर ही सकते हैं। मिसाल के तौर पर वे खुद चाहे पढ़ाने का काम न कर सकें, लेकिन हरिजन बच्चों को पढ़ाने के लिये काबिल शिक्षक तो जरूर रख सकते हैं। प्रायश्चित करने का यह एक तरीका है। हरिजन समाज में घुलमिल कर उसकी तरक्की में वे मदद कर सकते हैं। क्या इस तरह के काम से कभी छुआछूत जड़ से मिट सकती है? ऐसी शंका करने वाले टीकाकार भी हमारे यहां मौजूद हैं। किसी वक्त मुझे यह भी शक था। लेकिन बाद में मैं अपनी गलती समझ गया। इसके लिये मैं स्वर्गीय श्री देवधर का एहसानमन्द हूं, जिनके काम को एक वक्त में शक की नजर से देखता था और जिनकी मैंने टीका भी की थी। लेकिन साल भर के तजरबे ने मेरा सारा घमंड मिटा दिया और मुझे नम्रता सिखाई। मैंने यह महसूस किया कि अगर मैं सवर्ण हिन्दुओं का मन पलटने के लिये सिर्फ उनमें प्रचार कार्य या प्रोपैगेन्डा ही करता रहता, तो उसमें मैं कयामत तक भी कामियाब न होता, और उस दरमियान हरिजन उद्धार का असल काम जैसा का तैसा ही पड़ा रहता। अपने बाद के तजुरबे से मुझे यह विश्वास हो गया है कि अगर हरिजनों में काम करने के लिये जरूरी चरित्रबल, श्रद्धा, एतकाद और त्याग की भावना वाले कार्यकर्ता काफी तादाद में मिल जायं, तो सवर्ण हिन्दुओं को बिलकुल अकेले छोड़कर भी छुआछूत को जड़ से मिटाया जा सकता है। लेकिन इसका मतलब यह होगा कि हम पहले दिल से हरिजन बन जायं और हरिजनों के साथ रहकर हरिजनों जैसा ही काम करें। लेकिन क्या हरिजन सेवक संघ के मेम्बर ईमानदारी से दावा कर सकते हैं कि उन्होंने अपने दिलों से छुआछूत का नामोनिशान मिटा दिया है? क्या उनकी कथनी और करनी में पूरा-पूरा मेल पाया जाता है?

एक मेम्बर ने पूछा—इस बारे में आप की कसौटी क्या है?

गांधी जी ने जवाब में पूछा—क्या आप की शादी हो चुकी है?

"जी हां।" घबराकर सवाल पूछने वाले भाई ने जवाब दिया। तब गांधी जी ने उनसे पूछा: क्या आपकी कोई कुंआरी लड़की है? अगर हो, तो उसकी वासना (नफज) को तृप्त करने के लिये नहीं, बल्कि शुद्ध धर्म की भावना से ही किसी हरिजन लड़के से उसकी शादी तय कीजिये। मैं अपने खर्च से आपको बधाई का तार भेजूंगा।

आगे चल कर गांधी जी ने कहा: अब आप समझेंगे कि हरिजन सेवक सवर्ण हिन्दुओं के दिलों को क्यों नहीं हिला पाते। इसकी वजह यह है कि कार्यकर्ताओं के दिलों में न तो श्रद्धा की वह आग है और न सेवा की कभी न मिटने वाली वह भूख है, जो लोगों पर असर डालने वाली अपील की पहली शर्त है। मुट्ठी

भर सवर्ण हिन्दू भी सच्ची मिशनरी स्पिरिट से इस क्षेत्र में कूद पड़ें, तो वे सारे हिन्दू समाज को बदल सकते हैं। लेकिन नामधारी सेवकों की पूरी फौज भी उनपर कोई असर नहीं डाल सकती। इस तरह की सेवा के लिये मालवीय जी जैसे आदमी चाहिये। मैं तो अपनी बहन का कभी मन पलट न सका। जब मैं खुद इस काम में सफल न हो सका, तो दूसरों को क्या दोष दूं। यह इस बात का सबूत है कि यह रास्ता कितना मुश्किल और कटीला है। फिर भी अगर आप यह मानते हैं कि आप में जरूरी काबिलियत है, तो आप अपनी-अपनी जगहों में यह प्रयोग कर सकते हैं।

गांधी जी ने आगे समझाया कि किसी हद तक इस नाकामयाबी की यह वजह है कि हरिजन सेवक संघ के ज्यादातर मेम्बरों की सेवा या मिशन में राजनीतिक ध्येय (सियासी मकसद) भी मिला रहता है। अगर सचमुच ही उन्हें सवर्ण हिन्दुओं के दिल में जगह करनी हो, तो उन्हें शुद्ध धार्मिक भावना से ओतप्रोत (सराबोर) होना चाहिये। इस तरह के काम के लिये कोरी बहस से कुछ हासिल नहीं होगा। आज तो हममें काहिली, लापरवाही और मानसिक कठोरता बुरी तरह पैठ गई है।

बात को जारी रखते हुये गांधी जी ने कहा: दूसरा तरीका ज्यादा डरावना और जोखिम से भरा हुआ है। वह उपवास (फाके) का तरीका है। जब कभी वह मुझे गलत और नैतिक दृष्टि से गैरवाजिब मालूम हुआ, मैंने खुद उपवास की निन्दा की है। लेकिन जब उपवास के लिये नैतिकता का तकाजा हो उस वक्त उससे पीछे हटना अपने कर्तव्य या फर्ज से मुंह मोड़ना है। ऐसा उपवास खालिस सच्चाई और अहिंसा के आधार पर किया जाना चाहिये।

चलते-चलते गांधी जी ने अपने जीवन के एक और उपवास की ओर इशारा किया। लेकिन उन्होंने उन लोगों को चेतावनी देते हुये कहा कि अभी तो ऐसे किसी उपवास का विचार उनके मन में नहीं है। आज तो वह एक धुंधली आशंका मात्र है।

पंचगनी, २० जुलाई, १९४६ ई०

आश्रम का रहन-सहन

अछूतपन

हिन्दू धर्म में अस्छूतपन की रूढ़ि ने जड़ पकड़ ली है। उसमें धर्म नहीं बल्कि अधर्म है, ऐसा विश्वास होने के कारण अछूतपन मिटाने को आश्रम के नियमों में जगह दी गई है। अछूत माने जाने-वालों के लिये दूसरी जातियों के बराबर ही आश्रम में स्थान है।

आश्रम जात-पांत का फर्क नहीं मानता। ऐसा विश्वास है कि जात-पांत से हिन्दू धर्म का नुकसान हुआ है। उसमें जो ऊंच-नीच और छूत-छात की भावना है, वह अहिंसा धर्म के लिये जहर है। आश्रम वर्णाश्रम धर्म को मानता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि उसमें की वर्ण-व्यवस्था का सिर्फ धंधे पर दारमदार है। इसलिये वर्ण की नीति पर चलने वाला आदमी मां-बाप के धंधे से रोजी कमा कर बाकी का वक्त शुद्ध ज्ञान पाने में और बढ़ाने में लगाये। स्मृतियों में जो आश्रम व्यवस्था है, वह दुनिया का भला करने वाली है। मगर वर्ण और आश्रम का धर्म मानते हुये भी आश्रम का जीवन गीता के माने हुये व्यापक और भावना प्रधान सन्यास का आदर्श सामने रखकर बनाया हुआ है, और इसलिये उसमें वर्ण के भेद की गुंजाइश नहीं।

मेरे आश्रम में हरिजन का स्थान

रूढ़ि के अनुसार डोम, चमार, भंगी आदि अन्त्यज जातियां अस्पृश्य मानी गई हैं। उनसे छू जाने से अन्य जातियों के हिन्दू अपने को अपवित्र मानते हैं। आश्रम के व्यवस्थापकों की समझ से यह हिन्दू धर्म का कलंक है। व्यवस्थापक स्वयं कट्टर हिन्दू हैं, परन्तु वे समझते हैं जब तक हम किसी जाति को अछूत मानते हैं, तब तक हम पाप का ही संचय कर रहे हैं। इस तरह के व्यवहारों से अनेक महाभयंकर परिणाम उत्पन्न हुये हैं। इस पाप से मुक्त होने के लिये आश्रम में भंगी आदि को छूना पाप नहीं समझा जाता। और की तरह अस्पृश्य जातियों के लोग भी इस आश्रम में प्रविष्ट हो सकते हैं।

आश्रम में वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं किया जाता। जहां व्यवस्थापक ही सबके मां-बाप हैं, इसी तरह जहां ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि व्रत पालन किये जाते हैं वर्णाश्रम के पृथक्-पृथक् आचारों के पालन का अवकाश नहीं मिल सकता। यह एक प्रकार से सन्यास की अवस्था है। अतएव यहां वर्णाश्रम धर्म के पालन की आवश्यकता नहीं रहती। तथापि यह आश्रम वर्णाश्रम धर्म को पूर्णतया मनाने वाला है।

चमार का पेशा

हिन्दू समाज में धर्म के नाम पर जो वहम घुस गये हैं, उन्हें मिटाना चाहिये। चमार के पेशे को पवित्र मानने के बजाय गन्दा माना जाता है। आश्रम में बड़ी कोशिस से चमार का धंधा शुरू किया गया है। उसमें अभी तक कोई होशियार नहीं हो सके हैं। बाहर से कोई ऐसा चमार नहीं मिला, जो शिक्षा पाया हुआ हो और आश्रम के नियमों का पालन कर सके। एक था, जिसे हम रख न सके। मामूली चमारों को बसाने की कोशिश भी पार नहीं पड़ी। फिर भी चमार का काम आश्रम का अंग बना हुआ है। और चरखे की तरह इस कला पर भी काबू पाकर उसका प्रचार करने की आशा आश्रम रखता है।

अछूतपन मिटाना पुण्य का काम

सत्य का आग्रह रखने के लिये और उसके लिये मरना पड़ा तो मरने की कला सीखने के लिये जो आश्रम स्थापित हुआ, उसमें अछूतपन को कलंक मानते हुये भी उसे दूर करने की रचनात्मक प्रवृत्ति न की जाय, तो फिर वह सत्याग्रह आश्रम कैसे कहला सकता है? अछूतपन को पाप मानना मैं और मेरे साथी लोग दक्षिण अफ्रीका में ही सीख गये थे। इसलिये वहां आश्रम कायम होते ही अछूतपन को मिटाना आश्रम का एक बड़ा काम हो गया।

आश्रम स्थापित होने के बाद एक महीने के भीतर ही दूधाभाई ने कुटुम्ब सहित आश्रम में रहने की मांग की। मैं नहीं सोचता था कि इतनी जल्दी आश्रम की परीक्षा होगी। दूधाभाई को भर्ती करने की सिफारिश श्री अमृत लाल ठक्कर ने की थी। उनके सिफारिश वाले परिवार को मुझे अपना ही लेना चाहिये। इसलिये मैंने उसे आने को खत लिख दिया। इस कुटुम्ब के आते ही खलबली मच गई। पहले तो मैंने देखा कि आश्रम में जो परिवार रहते थे, उन्हीं में कहीं-कहीं अछूतों के साथ परहेज रहता था। मेरी ही पत्नी में, हालांकि इस बाबत दक्षिण अफ्रीका में बहुत कष्ट सहना पड़ा था, छुआछूत बाकी थी। मगनलाल जैसे बहादुर आदमी ने देखा कि उसमें भी गहराई में यह दोष रह गया है। उसकी पत्नी में तो और भी ज्यादा था। यहां तक नौबत आई कि मेरी पत्नी या तो आश्रम छोड़ दे या आश्रम के कड़े नियमों का पालन करे। छुआछूत रखने वाले सम्बन्धियों ने उसे समझाया कि पति के पीछे चलने वाली स्त्री को पाप लगता ही नहीं। पर न चलने से जरूर लगता है। इस खयाल ने असर किया और वह शान्त हो गई। मैं खुद यह नहीं मानता कि पत्नी का पति के पाप में साथ देना किसी भी तरह धर्म है। मगर यहां मैंने पत्नी के सहयोग का स्वागत किया, क्योंकि मैं अछूतपन मिटाना पुण्य का काम समझता था। अस्पृश्यता-निवारण आश्रम में रहने की एक लाजमी शर्त थी। इसलिये अगर इस शर्त का पालन न करें, तो मेरी पत्नी को आश्रम के बाहर रहना ही पड़े। यह मेरे लिये दुखदायक तो था ही। जिसने आज तक मेरे सुख-दुख में बड़ी तकलीफ उठा कर

साथ दिया था, उसका वियोग सहन करना भारी कष्ट था। मगर धर्म-पालन के लिये कैसे भी संकट आयें, उन्हें सहना ही था। इसलिये स्वतंत्र रूप में नहीं, पर पत्नी धर्म के नाते पत्नी ने जब छुआछूत को छोड़ दिया, तो मुझे उसे स्वीकार करने में संकोच नहीं हुआ।

मगनलाल की परीक्षा मुझसे कड़ी थी। उसने तो क्षण भर में आश्रम छोड़ने की हिम्मत करने का विचार कर लिया। सामान बांधकर वह मुझसे इजाजत लेने आया। मैं इजाजत कैसे देता? मैंने मगनलाल को सावधान किया। आश्रम खड़ा करने में जितना मेरा हाथ था, उतना ही उसका था। अपना रचा हुआ खुद ही कैसे छोड़े? छोड़ने का अर्थ आश्रम का नाश करना था। वह नाश नहीं चाहता था। अपनी बनाई चीज को छोड़ने की इजाजत मुझसे क्या लेनी थी? मगर उससे आश्रम छोड़ा ही नहीं जा सकता था। इतना कहना मगनलाल के लिये बहुत ही हो गया। यह लिखते वक्त मुझे ऐसा लगता है कि उसने तो मेरा रास्ता साफ करने के खयाल से ही यह कदम उठाना ठीक समझा होगा। और सबका वियोग बर्दाश्त हो सकता था, मगर मगनलाल का वियोग सहन करना मुश्किल बात थी। इसलिये मैंने मगनलाल के कुटुम्ब सहित मद्रास जाने की बात कही। वहां जाकर दोनों शान्त हों, और बुनाई की कला का ज्यादा ज्ञान प्राप्त करें। आश्रम में मददगार आये थे, जो उन्होंने एक मद से आगे सिखाने से इन्कार कर दिया। उन्हें यह निरर्थक डर लगा कि ऐसा करने से उनका धन्धा खतम हो जायगा। मद्रास में स्व० त्यागराज चेटी ने अपने हाथ की बुनाई के कारखाने में मणिलाल गांधी को सीखने के लिये रख लिया था। मगर मद्रास के कारीगर को भी अहमदाबाद में मिले कारीगर की तरह ही वहम था। इसलिये कारीगर दिल खोल कर अपनी कारीगरी नहीं सिखाते थे। मगनलाल में वशीकरण शक्ति ज्यादा थी, उसका ज्ञान भी अधिक था। मैं मानता था कि वह देख-देख कर भी बहुत सीख लेगा, इसके सिवा दक्षिण के साथ सीधा सम्बन्ध भी जोड़ना ही था। मगनलाल को मद्रास भेजने के लिये उसके धर्म संकट का बहाना भी मुझे मिल गया। और मैंने उसे पकड़ लिया। मगनलाल को और उसकी पत्नी को मेरी सूचना पसन्द आगई। वे मद्रास गये और वहां कोई छः महीने रहे। बुनने की कला अच्छी तरह सीख ली, और दोनों ने गहरा विचार करके अछूतपन का मैल पूरी तरह निकाल दिया। दोनों अपने में आई हुई कमजोरी को देख सके। वे मद्रास में ही अछूतों से आजादी के साथ मिलने लगे, उनसे दूसरे सम्बन्ध भी जोड़े। काम पूरा होने पर वे और मणिलाल आश्रम लौट आये।

इस तरह आश्रमवासियों में पैदा हुई खलबली शान्त हुई। बाहर भी कम खलबली न थी। जिन्होंने आश्रम को मदद देने की प्रतिज्ञा ली थी, उनमें से मुख्य सहायक ने तुरन्त मदद बन्द करदी। कुयें का पानी न मिलने तक की खबर आ पहुंची। मगर उसे बेखटके पार कर लिया और रुपये पैसे की मदद के बारे में नरसी मेहता की हुन्डी सिकारने जैसी घटनायें हुईं। न सोची हुई जगह

से अचानक तेरह हजार के नोट आ पड़े। इस तरह यह माना जा सकता है कि आश्रमवासियों ने दूधाभाई को सब संकट सहकर भी निभा लेने की जो प्रतिज्ञा की थी, वह भारी संकट उठाये बिना ही पूरी हुई, इस तरह अछूतपन मिटाने के विषय में आश्रम पास हुआ। अछूत परिवार आजादी से आते जाते हैं, और आश्रम में रहते हैं। दूधाभाई की लक्ष्मी तो ऐसी हो गई, जैसे परिवार की ही हो।

अछूतों के तीन धंधे आश्रम में चलते हैं और उनमें सुधार हो रहे हैं। आश्रम में रहने वाले सभी को भंगी का काम तो करना ही पड़ता है। दरअसल उसे धंधा नहीं माना जाता, बल्कि हर एक का फर्ज समझा जाता है। इसलिये पाखानों की सफाई हाथों से ही होती है। वह डाक्टर पुट के बताये हुये तरीके पर होती है। मैला आश्रम की जमीन में छिछला गाड़ा जाता है। इससे थोड़े ही दिन में उसकी खाद बन जाती है। डाक्टर पुट का कहना है कि बारह इंच तक की जमीन जिन्दा होती है। उसमें बेशुमार जीव रहते हैं। उनका काम मैली जमीन को साफ करना है। वहां तक हवा और सूर्य की किरणें पहुंचती हैं, इसलिये वहां तक मैला गाड़ने से वह मिट्टी में जल्दी मिल जाता है।

पाखाने भी इस ढंग से बनाये गये हैं कि उनमें बदबू न आये और सफाई करने में जरा भी मुश्किल न हो। उपयोग करने के बाद हर एक आदमी उसमें काफी सूखी मिट्टी डालता है, इतनी कि जब देखो तब ऊपर सूखा ही नजर आये।

दूसरा धंधा बुनाई का है। मोटी खादी गुजरात में तो अछूत जुलाहे ही बुनते थे। उनका धंधा लगभग नष्ट हो गया था और बहुतेरे भंगी का काम करने लग गये थे। अब उनके धंधे का जीर्णोद्धार हुआ है। तीसरा चमार का काम है। यह भी आश्रम में जारी हो गया है।

आश्रम में उपजातियां नहीं मानी जातीं। एक दूसरे के साथ खाने में छुआछूत नहीं रखी जाती, इसलिये आश्रम में सभी एक पंगत में खाने बैठते हैं। इस व्यवहार का प्रचार आश्रम के बाहर नहीं किया जाता। अछूतपन मिटाने के लिये इस व्यवहार की जरूरत नहीं मानी गई। अछूतपन मिटाने का अर्थ यह है कि अछूतों के सार्वजनिक संस्थाओं में जाने पर जो रुकावटें लगाई जाती हैं, उन्हें दूर किया जाय, और उन्हें छूने पर जो छुआछूत मानी जाती है, उसे मिटाया जाय। वे पाबन्दियां कानून से भी हटाई जा सकती हैं। रोटी-बेटी का व्यवहार अलग सुधार है। इसमें कानून या समाज दखल नहीं दे सकते। इस खयाल से आश्रम-वासी अपने लिये सबके साथ खाद्य पदार्थ खाने की स्वतंत्रता रखते हैं, मगर ऐसा करने का प्रचार नहीं करते।

आश्रम की तरफ से अछूतों के लिये पाठशालायें खोलने और कुयें खुदवाने की कोशिश भी हो रही है। इसमें आश्रम का खास काम रुपया जमा करना है। अछूतपन के बारे में आश्रम की सही प्रवृत्ति तो आश्रमवासी के अपने आचरण को सुधारने की है। आश्रम में ऊंच-नीचपन का कोई भी स्थान नहीं है।

जब वर्ण-व्यवस्था की खोज हुई थी, तब मेरे ख्याल में ऊंच-नीच की भावना नहीं थी। इस संसार में न कोई ऊंचा है, न नीचा। इसलिये जो अपने को ऊंचा समझता है, वह कभी ऊंचा नहीं हो सकता। जो अपने को नीचा मानता है, वह सिर्फ अज्ञान के कारण से। उसे उसके नीच होने का पाठ उससे ऊंचापन भोगने वालों ने सिखाया है।

इस कल्पना से वर्ण व्यवस्था हुई हो, या न हुई हो, आज तो कोई भी अपने को ऊंचा कहला कर जीवन निर्वाह नहीं कर सकता। उसका यह दावा समाज अपनी इच्छा से नहीं मानेगा। यह हो सकता है कि वह जबर्दस्ती से सिर झुका ले। दुनियां में जो जागृति हुई है, उसमें स्वेच्छाचार भले ही बहुत आ गया हो, मगर लोकमत ऊंच-नीच का भेद सहने को आज तैयार नहीं। दिन-दिन इस भेद का इन्कार बढ़ता जा रहा है। यह ज्ञान फैलता जाता है कि आत्मा के रूप में सभी बराबर हैं। यह भाव भी ऊंच-नीच का भाव मिटाता है कि हम सब एक ही ईश्वर के बनाये हुये हैं।

व्यवस्था के गर्भ में ही ऊंच नीचपन का भेद उठ जाता है। अगर मोची से बढ़ई बड़ा और बढ़ई से वकील, डाक्टर और भी बड़े माने जायं, तो अपनी मर्जी से कोई मोची या बढ़ई न रहे, बल्कि सब वकील डाक्टर बनने की कोशिश करें। और ऐसा करने का उनका अधिकार होना चाहिये और तारीफ की बात समझी जानी चाहिये। यानी वर्णव्यवस्था कोई बुरा मान कर उसके नाश की इच्छा और कोशिश करनी ठीक है।

आश्रम में वर्ण की गुंजाइश नहीं

हिन्दू धर्म में छूतछात ने जड़ पकड़ ली है। छूतछात में धर्म नहीं, बल्कि अधर्म है, यह समझकर उसे मिटाने के काम को नियमों में शुमार किया गया है। अछूत माने जाने वालों के लिये आश्रम में दूसरी जातियों के बराबर ही स्थान है।

आश्रम जातपांत नहीं मानता। उसका ख्याल है कि जात-पांत से हिन्दू धर्म को नुकसान हुआ है। उसमें रहने वाली छूआछूत और ऊंच-नीच की भावना अहिंसा धर्म को नुकसान पहुंचाने वाली है। आश्रम वर्णाश्रम धर्म को मानता है। लेकिन यह मालूम होता है कि वह वर्ण-व्यवस्था सिर्फ धन्धे के सम्बन्ध में है, यानी जो वर्ण नीति को पालता है, उसे अपने मां-बाप के धन्धों में से रोजी पैदा करके बाकी का समय ज्ञान प्राप्त करने और उसे बढ़ाने में खर्च करना चाहिये।

स्मृतियों में मानी हुई वर्ण-व्यवस्था जगत का भला करने वाली है। लेकिन वर्णाश्रम धर्म मान्य होने पर भी आश्रम का जीवन तो गीता के माने हुये व्यापक और भावना प्रधान सन्यास धर्म के आदर्शों पर रचा हुआ है। इसलिये उसमें वर्ण की गुंजाइश नहीं है।

हरिजन फंड

हरिजन फण्ड को चन्दा दो

यह बड़ी दुखद बात है कि आज हमारे लिये धर्म का अर्थ यह है कि हम
िसी को ऊंचा-नीचा समझें और उनके खाने-पीने पर रोक थाम करें। मैं कहना
ाहता हूं कि इससे बड़ी भूल कोई नहीं हो सकती। जन्म और कुछ रीति-रिवाज
ासी को ऊंचा या नीचा नहीं बनाते, बल्कि चरित्र ही के बल से कोई ऊंचा
। नीचा हो सकता है। ईश्वर ने किसी को ऊंच नीच के निशान के साथ नहीं पैदा
ाया है, और कोई भी धार्मिक ग्रंथ, जो जन्म से किसी मनुष्य की ऊंचाई निचाई
। निर्णय करता हो, उसमें हम विश्वास नहीं कर सकते। यह तो ईश्वर और सत्य का
विश्वास है। ईश्वर, जो सत्य न्याय का अवतार है, ऐसे किसी भी धर्म या नियम
। स्वीकार नहीं कर सकता जो हमारी पांचवीं आबादी को अछूत माने। अतएव
चाहता हूं कि इस पैशाचिक भावना को छोड़ दो। वैसे गन्दे काम करने की
ास्पृश्यता है और वह तो रहेगी ही। यह हम सभी के लिये लागू है। लेकिन
े ही हम गन्दगी से अपनी सफाई कर डालें, वैसे ही हम अस्पृश्य नहीं रह
ते। परन्तु कोई कर्म या व्यवहार किसी मनुष्य को सदा के लिये अस्पृश्य नहीं
र सकता।

हममें से सभी कुछ कम बेश पापी हैं। और सभी धार्मिक पुस्तकें कहती हैं
जो भी उस भगवान की शरण में जाता है, उसका नाम लेता है, पाप से
ात पा जाता है। यह नियम सभी के लिये है।

इस प्रश्न के लिये एक और परख मैं बता रहा हूं। हर मनुष्य या उसके
ी जाति में कुछ विभाजक चिन्ह हैं, जिनसे मनुष्य को कुत्ते से, कुत्ते को
। से, भिन्न माना जाता है। क्या अछूतों में भी कोई इस प्रकार का चिन्ह है
े अछूत समझे जायं? वे उतने ही मानवी हैं, जितने हममें से कोई। और
ष्यों से निम्न कोटि के सभी प्राणियों को हम अछूत नहीं मानते और फिर
पैशाचिक अन्याय कहां से और कैसे आता है? यह धर्म नहीं है, बल्कि घोर
र्म है। मैं चाहता हूं कि तुम यह पाप छोड़ दो।

सदियों के इस पाप को मिटाने का एक यही मार्ग है कि तुम हरिजनों की
ायों में जाओ, उनके बच्चों को अपने बच्चों की तरह अपनी छाती से लगाओ।
ी भलाई में दिलचस्पी लो। यह मालूम करो कि उन्हें खाने भर को भोजन, पीने
स्वच्छ पानी मिलता है या नहीं, रोशनी और हवा, जिन्हें तुम अपना अधिकार
। कर उपयोग करते हो, उन्हें भी मिलते हैं या नहीं। दूसरा तरीका है,
ने का काम शुरू करो और खादी की प्रतिज्ञा लो, जिससे इन लाखों दबाये
लोगों को सहायता मिलती है। कातने के काम से तुम में और उनमें
समता आयेगी। और जो तुम खादी का कपड़ा पहनोगे, उससे इन हरिजनों
गरीबों को कुछ पैसा मिलेगा। आखिरी बात यह है कि हरिजन फंड
चन्दा दो, जिसका उद्देश्य इन हरिजनों की भलाई का है।

स........

पंजाब के विद्यार्थियों से

हरिजन सेवा का कार्य एक धार्मिक कार्य है, इसलिये वह तप से ही सिद्ध हो सकता है। ऐसे काम केवल शान्ति से ही किये जा सकते हैं। मुमकिन है कि पंजाब में मेरा यह आखिरी दौरा हो, क्योंकि शायद मैं यहां दुबारा न आ सकूं। इसलिये इसी दौरे में मैं आप पर अधिक से अधिक प्रभाव डाल देना चाहता हूं। जो विद्यार्थी हरिजन सेवा के कार्य में रस ले रहे हैं, उनको मैं धन्यवाद देता हूं। जैसा कि आपने मानपत्र में कहा है , मुझे आशा है कि आप लोग हरिजनों को अपने से अलग नहीं समझते। अगर आप का यह निश्चय ठीक है, तो आपको गांवों में जा कर काम करना चाहिये। उन लोगों से आपको प्रेम करना चाहिये। यद्यपि उनमें कुछ लोग शराब पीते और अन्य बुरे काम करते हैं, तो भी आपको उनसे घृणा नहीं करनी चाहिये। आप उनके बच्चों को जा कर पढ़ावें। देहातों में इस काम की बड़ी आवश्यकता है। वहां काम करने के लिये आपको कालिज की शिक्षा भुला देनी होगी। इस कार्य के लिये सत्यशीलता, तपश्चर्या और ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। आप में यह सब बातें होंगी तभी आप कुछ कर सकेंगे। आपको वहां हरिजनों का सेवक बन कर रहना होगा और ऊपर कही गई सब शर्तों को पूरी तरह से पालना होगा। आपका जो समय खाली बचे उसमें आप यह काम करें तो मेरा भी बहुत सा काम बन जायगा।

अस्पृश्यता दूर न हुई तो हिन्दू जाति मिट जायगी। हम इस रोग को पहचान नहीं रहे हैं। पर यह हमें अन्दर से बराबर खा रहा है। इस भेद-भाव के रोग को मिटाना तपश्चर्या से ही सम्भव है। आपने स्वयं मान पत्र में कहा है कि हम बड़े विलासी हैं। आपको केवल परीक्षाएं पास करने की चिन्ता लगी रहती है। आप चाहें तो असम्भव बात भी कालिज की शिक्षा में पा सकते हैं। आप भोग को त्याग दें और संयम से ईश्वर को पहचानें और उसके अधिक निकट हो जायें।

गीता पर चलो, ब्रह्म-निर्वाण मिलेगा

है दुनिया कहती है कि अस्पृश्यता आन्दोलन ठीक नहीं, गीता माता कहती । कि ठीक है। आप लोग प्रतिदिन सुबह गीता का पाठ करें। यह सर्वोपरि १८ अध्याय कंठ करना बड़ी बात नहीं। जंगल में या कारागार में हैचले गए तो कंठ करने से गीता साथ जायगी। प्राणान्त के समय जब आखें काम नहीं देतीं, केवल थोड़ी बुद्धि रह जाती है, तो गीता से ही ब्रह्म निर्वाण मिल सकता है। आपने जो मान पत्र और रुपया दिया है और आप लोग हरिजनों के लिये जो कर रहे हैं, उसके लिये धन्यवाद देता हूं। इतने से मुझे सन्तोष नहीं। मैं सोचता हूं कि यहां इतने अध्यापक और लड़के-लड़कियां हैं, फिर इतना कम काम क्यों हो रहा है।

अंधेरे में उजाला

कस्तूरबा बालिका आश्रम की छात्राओं को सम्बोधित करते हुए गांधी जी ने कहा :—

मुझे यह जान कर खुशी हुई कि तुम पैदल चल कर भंगी बस्ती में मुझसे मिलने पहुंची थीं और वहां से लौटते वक्त भी यहां तक पैदल ही आई थीं। लेकिन अगर मुझे खुश करने के लिये ही तुमने ऐसा किया हो तो कहना होगा कि तुम्हारे उस पैदल चलने में कोई खूबी नहीं थी। उससे तुम्हें कोई फायदा न होगा। सवारी का इस्तेमाल करने के बदले तुम्हें तो चलने का नियम या कानून बना लेना चाहिये। हमारे देश के करोड़ों लोगों को मोटर की सवारी नहीं मिलती। इसलिये तुमको उस इस्तेमाल से बचना चाहिए। देश के करोड़ों लोगों के पास तो रेल में बैठ कर सफर करने की भी गुंजाइश नहीं होती। उनका गांव ही उनकी दुनिया होती है। यह एक बहुत मामूली चीज है। लेकिन अगर तुम इस कानून या नियम पर सच्चे दिल से डटी रहोगी, यानी इस पर सही-सही अमल करोगी तो यह तुम्हारी सारी जिन्दगी को बदल डालेगा और उसे कुदरती सादगी के मिठास में भर देगा।

यहां की तालीम तुम्हें मौज-शौकों और शान-शौकत की जिन्दगी के लायक नहीं बनायेगी। मैं यह चाहता हूं कि यहां की हरिजन बहनें अपने रोज के जीवन में ऊंचे दर्जे की ऐसी संस्कारिता दिखायें कि जिससे उनको अछूत समझने में सब कोई शरम महसूस करें। हरिजन सेवक संघ के कामों का यही मकसद है। लोग किस हद तक इधर उठ सकते हैं, और इसके खिलाफ एक नमूना इस आश्रम को सारी दुनिया के सामने पेश करना चाहिए। मैं उस दिन की राह देखता हूं जब यह आश्रम अपनी खुशबू सारे मुल्क में फैलायेगा और दूर-दूर की व पास-पड़ोस की जगहों से लड़कियों को अपनी तरफ खींचने वाला एक उम्दा केन्द्र (मरकज) बन जायगा।

नई दिल्ली, २२ अप्रैल, १९४६ ई०

भंगियों के लिये जूठन का प्रश्न

देहरादून के एक विद्यार्थी के पत्र के उत्तर में गांधी जी लिखते हैं :—

भंगी जूठन मांगने का हठ कर रहे हैं, तो इससे निराश होने का कोई कारण नहीं। भंगी भाई-बहनों के पतन के कारण भी हम ही हैं। जैसा हमने बोया है, वैसा काट रहे हैं। विद्यार्थी जिस तरह का काम कर रहे उसमें भी दोष है। भंगी अगर हमारे भाई-बहन, अर्थात् जैसे हम हैं वैसे ही वे हैं

तो यह ठीक नहीं कि उन्हें तो सूखी रोटी और दाल दें और हम दूध, घी और मिठाइयां उड़ावें। ऐसा नहीं होना चाहिये। जो भी भोजन विद्यार्थियों के लिए तैयार हुआ करे उसमें से प्रथम भाग भंगी के लिये रख दिया जाय। फिर भंगी को शिकायत करने का कोई मौका ही न रह जायगा।

विद्यार्थी कहते हैं, ऐसा करने से खर्च बढ़ जायगा और हम उसे बर्दाश्त न कर सकेंगे। मैं पूछता हूं कि जूठन बचती क्यों है। थाली में जूठन छोड़ने में सभ्यता है, शायद ऐसा कुछ ख्याल जम गया है। उस ख्याल को दूर करना होगा। थाली में उतना ही भोजन परोसवाया जाय जितना हम आसानी से खा सकें, इसी में सभ्यता है। थाली में जूठन छोड़ देना तो असभ्यता है। और भी एक बात है। भारतीय विद्यार्थियों का मैं कुछ परिचय रखता हूं। वे प्रायः शौकीनी और चटोरपने में अधिक पैसे खर्च कर डालते हैं। भंगी का भाग का जितना रखा जायगा उसके मूल्य से भी अधिक पैसे वे सादगी ग्रहण करने से बचा सकते हैं।

विद्यार्थी जीवन त्याग और संयम सीखने के लिये है। इस महामंत्र को छोड़कर जो विद्यार्थी भोग-विलास में पड़ जाते हैं, वे अपना जीवन बरबाद कर देते हैं और अपने को तथा समाज को बहुत हानि पहुंचाते हैं। इस दरिद्र देश में तो संयत जीवन और भी अधिक आवश्यक है। यदि समस्त विद्यार्थी इस शक्ति को हृदयंगम कर लें तो भंगियों का भाग उदारतापूर्वक निकाल देने पर भी वे अपने लिये अधिक पैसे बचा सकेंगे।

इस विषय में यह कहना भी आवश्यक है कि भंगी भाइयों के लिये शुद्ध भोजन रख कर ही विद्यार्थीगण अपने को कृतकृत्य न मान लें। उनसे प्रेम करें, उन्हें अपनावें, उनके जीवन में अपने को ओतप्रोत कर दें। पाखाने इत्यादि की सफ़ाई का उत्तम प्रबन्ध और उनकी बुरी आदतें छुड़ाने का भरसक प्रयत्न करें।

दूसरा प्रश्न यह है कि विद्यार्थी अपनी गर्मियों की छुट्टियों में क्या-क्या हरिजन सेवाएं करें। करने के लिये तो बहुत काम हैं, परन्तु नमूने के तौर पर मैं यहां कुछ लिखता हूं :—

१—रात्रि पाठशालाएं और दिवस पाठशालाएं चला कर हरिजन बालकों को पढ़ाना,

२—हरिजनों की बस्तियों में जाकर उनकी सफाई करना, हरिजन चाहें तो इसमें उनकी भी मदद लेना,

३—हरिजन बालकों को देहात के इर्द-गिर्द ले जाना और उन्हें प्रकृति निरीक्षण कराना तथा स्थानीय इतिहास और भूगोल का साधारण ज्ञान कराना तथा उनके साथ खेलना,

४—रामायण और महाभारत की सरल कथाएं उन्हें सुनाना,

५—हरिजन बालकों के शरीर का मैल साफ करना, स्नान कराना और स्वच्छता से रहने का सबक सिखाना,

६—उन्हें सरल भजनों का अभ्यास कराना,

७—हरिजनों को कहां क्या कष्ट है और उनका निवारण कैसे हो सकता है, इसका विवरण-पत्र तैयार करना और

८—बीमार हरिजनों को दवा दारु देना।

करने के लिये तो और भी ऐसे बहुत से काम हैं, जिन्हें विचारशील विद्यार्थी स्वयं सोच सकते हैं।

जैसे हरिजनों में काम करने की आवश्यकता है, वैसे ही सवर्णों में भी है। उनका अज्ञान दूर करना, उनमें अस्पृश्यता दूर करने विषयक साहित्य का प्रचार करना इत्यादि काम वे छुट्टियों में कर सकते हैं। हरिजनों के लिये कहां कितने कुएं, धर्मशालाएं, तालाब, मन्दिर आदि खुले हैं और कहां नहीं, इसका भी पूरा ब्यौरा तैयार करना।

यह सब काम एक पद्धति से संगठित रूप में और नियमपूर्वक किया जाय तो छुट्टी समाप्त होने तक हरिजनों की भारी सेवा हो सकती है। काम छोटा हो या बड़ा, नियम पालन तो सभी में आवश्यक है। आज प्रारम्भ किया, कल छोड़ दिया, तो इससे कोई लाभ होने का नहीं। निश्चयपूर्वक नियमानुसार चाहे थोड़ा ही काम क्यों न किया जाय, उससे महान् परिणाम पैदा हो सकता है। प्रत्येक विद्यार्थी अपने कार्य का हिसाब रखे और अन्त में सारे कार्य की रिपोर्ट तैयार करके प्रान्तीय हरिजन सेवक संघ को भेज दे। दूसरे विद्यार्थी कुछ करें या न करें, परन्तु जिन विद्यार्थियों ने मुझे लिखा है, उनसे तो मैं अवश्य ही ऐसी आशा रखूंगा।

विद्यार्थी और हरिजन सेवा

मैं हिन्दुस्तान का सेवक हूं और उसी की सेवा करने का प्रयत्न कर रहा हूं। मैं समस्त मानव जाति की सेवा करता हूं। मैंने अपने प्रारम्भिक जीवन में सोचा था कि हिन्दुस्तान की सेवा मानव की सेवा के विरुद्ध नहीं है। ज्यों-ज्यों मेरी उम्र बढ़ती गई और आशा है मेरी बुद्धि भी विकसित हुई है, मैंने अनुभव किया कि मेरी धारणा ठीक थी।

सकते हो ? तुम्हें अवकाश का जितना समय मिले, उसमें हरिजनों की सेवा बड़ी अच्छी तरह से कर सकते हो। लाहौर और आगरे के कुछ विद्यार्थी इस प्रकार बराबर हरिजन सेवा कर रहे हैं। गर्मी की छुट्टियों को भी तुम इस काम में लगा सकते हो।

हरिजनों को हमने इतना नीचा गिरा दिया है कि अगर उन्हें जूठन देना बन्द कर दिया जाता है, तो वे इसकी शिकायत करते हैं। ऐसे दयनीय मनुष्यों की सेवा तभी हो सकती है, जब सेवकों का हृदय शुद्ध हो और अपने कार्य में उनकी पूरी आस्था हो। सिर्फ आर्थिक स्थिति में सुधार कर देना ही काफी नहीं।

जरा डाक्टर अम्बेदकर जैसे मनुष्यों की हालत पर तो सोचो। डाक्टर अम्बेदकर के समान मेरी जानकारी में सुयोग्य, प्रतिभा-सम्पन्न और निःस्वार्थ मनुष्य इने गिने ही हैं। तो भी जब वे पूना गये तो उन्हें एक होटल की शरण लेनी पड़ी, किसी ने उन्हें मेहमान की तरह अपने यहां न टिकाया। यह हमारे लिये शर्म की बात है। एक तरफ से तो हमें डाक्टर अम्बेदकर जैसे मनुष्यों का हृदय स्पर्श करना है और दूसरी तरफ शंकराचार्यों को अपने पक्ष में लाना है। हरिजनों को तो हमने, उनके लाख योग्य होते हुए भी, बुरी तरह पददलित कर दिया है और शंकराचार्यों को नकली प्रतिष्ठा दे रखी है। काम हमें दोनों ही से लेना है, जो कि एक दूसरे से बिल्कुल प्रतिकूल दिशा में जा रहे हैं। नम्रता, सहनशीलता और धैर्य के बिना यह कैसे हो सकता है ?

भेद-भाव मिटा दो तो हिन्दुत्व पवित्र हो जाय

बहनो, मैं चाहता हूं कि तुम हरिजनों के लिये जितना धन दे सको, दो। तुमने अपने मान-पत्र में पूछा है कि तुम हरिजनों की सेवा किस प्रकार कर सकती हो ? सबसे पहले मैं चाहता हूं कि तुम अपने दिल से अस्पृश्यता को जड़ से मिटा डालो और हरिजन लड़कों तथा लड़कियों की वैसी ही सेवा करो जैसी अपनी की। तुम्हें चाहिए कि अपने सम्बन्धियों, भाई बहनों को एक ही भारत मां की सन्तानों की भांति स्नेह करो। मैंने त्याग और सेवा की सजीव मूर्ति की भांति स्त्री की उपासना की है। प्रकृति ने तुम्हें जो निःस्वार्थ त्याग की भावना दी है उसमें पुरुष कभी तुम्हारी समता नहीं कर सकता। स्त्री का हृदय बहुत नम्र होता है, जो दुःख को देख कर पिघल जाता है। यदि तुम्हारा हृदय हरिजनों का दुःख देख कर द्रवित हो जाता है और तुम उसे, छोटे-बड़े के भेद-भाव के साथ मिटा दो तो हिन्दुत्व पवित्र हो जाय और आत्मिक विकास का जोर काफी बढ़ जाय। अन्त में इसका अर्थ सारे भारत, यानी ३५ करोड़ जनता का भला होगा। और सारी मनुष्य जा त के पांचवें हिस्से के पवित्र होने से सारी मानवता पर बहुत उत्तम प्रतिक्रिया होगी। इस आन्दोलन में ऐसे दूर ले जाने वाले

परिणाम हैं। यह एक बड़ा आन्दोलन है, आत्म-पवित्रता का। मैं आशा करता हूं कि तुम इसमें पूर्ण रूप से भाग लोगी।

बिलासपुर, सी० पी०।

भेद-भाव की क्रूरता

यहां मैं तुमसे एक मांग करने आया हूं। यह बिल्कुल भूल जाओ कि कुछ लोग छोटे और कुछ बड़े हैं। यह भी भूल जाओ कि कुछ स्पृश्य और कुछ अस्पृश्य हैं। मैं जानता हूं कि मेरी ही भांति तुम सब ईश्वर में विश्वास करते हो और पुरुष पुरुष और स्त्री स्त्री के बीच में भेदभाव करने तक की क्रूरता भागवान में नहीं हो सकती। यह अछूत हिन्दुत्व पर सबसे बड़ा धब्बा है और मैं यह कहने से नहीं हिचकता कि यदि यह रह गया तो हिन्दुत्व समाप्त हो जायगा। यदि कोई ईश्वर के लिये मनुष्य की भाषा का प्रयोग करे, तो ईश्वर हमारे साथ बहुत शान्त रहा है। परन्तु मुझे यह मानने में हिचक नहीं कि हिन्दू भारत में लोग जो यह अत्याचार करते रहे हैं, उसे देख कर उसका धैर्य भी टूट जायगा।

मद्रास

मृत्यु की चेतावनी

एक बहन के पत्र के उत्तर में गांधी जी लिखते हैं :—

उन अस्पृश्यों से यह कहने की किसी में हिम्मत है कि यदि तुम स्वाधीनता चाहते हो तो ले लो, तुम्हें कौन रोकता है? परमात्मा बड़ा शान्तशील और चिर सहिष्णु है। जालिम को वह उसकी कब्र खोदने देता है। हां, समय-समय पर वह मृत्यु की चेतावनी बराबर दे दिया करता है।

हम कह सकते हैं और न्यायपूर्वक कह सकते हैं कि यद्यपि अंग्रेज का ताना सैद्धान्तिक दृष्टि से ठीक है, परन्तु अंग्रेजों के मुंह से यह प्रश्न शोभा नहीं दे सकता जब कि हम में से हरेक अपनी अपनी लाचारी को महसूस करते हुए भी स्वाधीनता को प्राप्त करने की अपनी स्वाभाविक इच्छा को प्रकट कर रहा है।

अन्याय की हद

ईश्वर जो सभी प्राणियों का कर्ता है, सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखता है। यदि उसे नीच ऊंच में कोई भेद-भाव होता तो उनमें कोई बाह्य अन्तर होता। उदाहरण के लिये जैसे हाथी और चींटी में होता है। परन्तु उसने सभी मनुष्यों को एक सा रूप और एकसी ही स्वाभाविक आवश्यकताएं दी हैं। यदि तुम हरिजनों को स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवा के कारण अछूत समझते हो तो कौन मां अपने बच्चे के लिये ऐसा नहीं करती? हरिजनों

को, जो समाज के सबसे उपयोगी सेवक हैं, अछूत और जाति से बहिष्कृत समझना अन्याय की हद है। मैं हिन्दू बहनों के भीतर इस पाप के विषय में चेतना जागृत करने के लिये भ्रमण कर रहा हूं। हम किसी भी मनुष्य को अपने से छोटा समझें, यह तो कभी अच्छा काम नहीं हो सकता। हम सब उस ईश्वर के उपासक हैं जिसे विभिन्न नामों से हम पूजते हैं। अतएव हम अपनी एकता का अनुभव करें और अछूत के साथ-साथ मनुष्यों के बीच ऊंच-नीच का भेदभाव भी छोड़ दें।

दिल्ली

कौमुदी का अपूर्ण त्याग

अपने व्यस्त जीवन में मुझे कई हृदयद्रावक दृश्य देखने का अवसर प्राप्त हुआ। परन्तु यह लिखते समय मुझे हरिजनों के प्रश्न से अधिक कोई दृश्य नहीं याद आ रहा है। मैं हरिजन फंड के लिये स्त्रियों से जेवरात भेंट करने के लिये अपील कर चुका था। व्याख्यान के बाद उन भेंटों को मैं बेच रहा था कि कौमुदी, जो एक १६ साल की लड़की थी, धीरे से प्लेटफार्म तक आई। उसने अपना एक कंकण उतारा और मेरा हस्ताक्षर मांगा। मैं उसके लिये तैयारी ही कर रहा था कि दूसरा कंकण भी निकल आया। दोनों हाथों में एक-एक कंकण ही था। मैंने कहा, तुम्हें दोनों देने की आवश्यकता नहीं। मैं एक ही के लिये हस्ताक्षर दे दूंगा।

उसने अपने सोने के हार से मेरी बात का उत्तर दिया। यह कोई साधारण कार्य न था। इसे लम्बे बालों के प्लेट से अलग करना था। किन्तु मालदार लड़की जैसी होती है, कौमुदी को हजारों आदमियों और औरतों की आश्चर्य-भरी सभा में ऐसा करने में कोई झूठी लज्जा नहीं आई। परन्तु तुमने अपने मां-बाप की आज्ञा ले ली है? मैंने पूछा। कोई उत्तर नहीं मिला। उसने अभी तक अपना यह त्याग कार्य पूर्ण नहीं किया था। उसके हाथ स्वतः कानों पर पहुंचे और जनता की गूंजती हुई आवाज के बीच में उसने अपने बेशकीमती इयरिंग कानों से निकाल लिये। मैंने पूछा कि क्या उसे ऐसे त्याग के लिये मां-बाप की सम्मति मिल गई थी। इसके पहले कि उस शर्मीली लड़की से मुझे कोई उत्तर मिले, मुझे किसी ने बताया कि उसके पिता उस सभा में थे और नीलाम की चीजों के बेचने में सहायता कर रहे थे और वे अच्छे कामों के लिये वैसे ही उदार थे, जैसे उनकी लड़की। मैंने कौमुदी को याद दिलाया कि इनकी जगह नये जेवर न लिये जायं तो उसने दृढ़तापूर्वक यह बात मान ली। उसे अपने हस्ताक्षर देते समय मैं उस पर यह नोट देने से अपने को न रोक सका—तुमने जो जेवरात उतार कर अलग कर दिये हैं, तुम्हारा त्याग उनसे कहीं अधिक सुन्दर आभूषण है। ईश्वर करे उसका यह अपूर्व त्याग सच्ची हरिजन सेविका होने का उद्गार हो।

रमादेवी की हरिजन सेवा

रमादेवी की हरिजन सेवा पर तो मैं मुग्ध हो गया हूं। मैंने इस बहन के किसी भी काम में कृत्रिमता नहीं देखी। कष्ट सहन की महिमा यह अच्छी तरह जानती है। इसकी सादगी तो एक अनुकरण करने की वस्तु है। भारत की हजारों बहनों से मिलने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, मैंने उनका सेवा कार्य भी देखा है। पर रमादेवी जिस सहज सवा भावना से काम करती हैं, वह अपूर्व है।

उत्कल, १९३४ ई० (दौरे के दिनों में भाषण)।

सफ़ाई का प्रमाण-पत्र

शारीरिक स्वच्छता के विषय में शायद सवर्णों को प्रमाण-पत्र दिया जा सके. पर घर, आंगन, गली वगैरह की सफाई के बारे में नहीं दिया जा सकता। हां, दलित जातियां अलबत्ता इस बारे में छोटी मोटी सनद पा सकती हैं। पर सभी को इस विषय में अपने जीवन में बहुत सुधार करने की आवश्यकता है।

इस आदत की जड़ में अस्पृश्यता समाई हुई है। आदमी जहां रहेगा वहां गन्दगी के निमित्त तो पैदा होंगे ही। पर हिन्दुस्तान के स्पृश्य वर्गों ने खुद गन्दगी साफ करने के काम को हलका समझ कर और उस परोपकारी काम के करने वालों को अस्पृश्य मान कर, जहां वे नहीं जा सकते वहां से गंदगी को नियमित रीति से दूर करने के बदले इकट्ठी करने का रिवाज डाल रखा है और अस्पृश्यों से सहयोग न करके उनके मत्थे इतना ज्यादा काम मढ़ दिया है, जो उनके किये हो नहीं सकता। परिणामस्वरूप देश में अनेक प्रकार के उपद्रवों को बसा रखा है और आम इस्तेमाल के स्थानों को ऐसा बना दिया है कि देख कर रोएं खड़े हो जायं।

स्वराज्य कहां है ?

हिन्दू लोग जब तक भंगी चमारों को अपने सगे भाई की तरह न मानेंगे तब तक, मैं यह कहने की धृष्टता करता हूं कि वे हिन्दू ही नहीं हैं। और यह बात में अपने को एक कट्टर हिन्दू समझकर कहता हूं। जिस दिन हिन्दू भंगी चमारों से प्रेम के साथ गले मिलेंगे उस दिन आकाश से सुमन वृष्टि होगी और उसी दिन सच्ची गो-रक्षा होगी। मनुष्य का तिरस्कार और दया दो बातें एक साथ रहती ही नहीं। भंगी, चमारों के दूषणों को हम प्रेम के बल पर जीत सकते हैं। अध्यापक ध्रुव के शब्द मेरे कानों में हमेशा गूंजते रहते हैं, हमारे हृदय में जो भंगी. चमार भरे हुए हैं वे हमारे शत्रु हैं और वे अस्पृश्य हैं। जिन देहधारियों को अस्पृश्य मानने का पाप हम कमा रहे हैं वे तो हमारे प्रियजन हैं। उनके स्पर्श से उनकी सेवा से तो हमें पुण्य प्राप्त होगा। जब कोई वैष्णव किसी भंगी चमार के सांप के

काटे जहर को चूस कर बिना स्नान किये अपनी कोठी में जायगा वह तब कोठी पवित्र मानी जायगी। यह तो मानो कृष्ण के घर सुदामा या विदुर पहुंच गए। जब तक छुआछूत रूपी अश्वाथ को हम जड़-मूल से न उखाड़ लेंगे या अध्यापक ध्रुव की तरह अस्पृश्यता का सच्चा अर्थ न करेंगे तब तक सुलह का ख्याल तक न करना चाहिए।

ऐसे महान कार्य, ऐसी आत्म-शुद्धि तो हम कष्ट सहन के द्वारा ही कर सकेंगे। जो अपने मोक्ष के लिए मरना जानता है वही मोक्ष प्राप्त करता है। बिना इच्छा के मरने वालों को अवगति प्राप्त होती है। इच्छापूर्वक मरने वाला आज मोक्ष के योग्य हो गया है। इसी प्रकार जब हम पूर्वोक्त साधनों पर दृढ़ रहते हुए मरने तक का भय छोड़ देंगे तो हम स्वराज्य प्राप्त करेंगे। देशबन्धु दास, लालाजी, मोतीलाल जी और मौलाना अबुल कलाम आजाद इत्यादि हमें मरने का मंत्र सिखा रहे हैं। ऐसा मालूम होता है कि हम उसे सीख भी गए हैं। इसी से कोई यह नहीं पूछता कि स्वराज्य कहां है। सब यही कहते हैं कि जहां हममें स्वेच्छापूर्वक मरने का बल आया कि बस स्वराज्य हुआ, और सब तो मृगजाल की तरह है।

२२ जनवरी, १६२२ ई०

उपवास

गांधी जी के उपवास

नीचे उन उपवासों का संक्षिप्त ब्यौरा दिया जा रहा है जो गांधी जी ने समय-समय पर हरिजनों के लिए किए।

क्रम-संख्या	दिनांक	स्थान	टिप्पणी
१	२० सितम्बर, १९३२	यरवदा सेंट्रल जेल, पूना	साम्प्रदायिक निश्चय में प्रधान-मंत्री द्वारा हरिजनों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दिये जाने के विरोध में आमरण अनशन, जो ८ दिन चला।
२	२ अक्तूबर, १९३२	यरवदा सेंट्रल जेल, पूना	श्री अप्पा साहब पटवर्धन को जेल में मेहतर का काम न दिये जाने पर उनके द्वारा आमरण अनशन शुरू किये जाने पर गांधी जी ने उपवास किया, जो २ दिन चला।
३	अगस्त, १९३३	यरवदा सेंट्रल जेल, पूना	अगस्त १९३३ में जेल में हरिजन कार्य करने की गांधी जी ने सरकार से इजाजत मांगी, जिसके न मिलने पर उन्होंने अनशन शुरू किया। आठवें दिन तबीयत ज्यादा खराब हो जाने पर छोड़ दिये गए।
४	७ अगस्त, १९३४	सत्याग्रह आश्रम, वर्धा	हरिजन यात्रा के सिलसिले में अजमेर की सभा में स्वामी लालनाथ को स्वयंसेवक द्वारा पीट दिये जाने पर प्रायश्चित्त रूप ७ दिन का।

साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध में अनशनसंबंधी पत्र-व्यवहार

भारत मन्त्री सर सेमुएल होर के नाम गांधी जी का पत्र

यरवदा सेंट्रल जेल,
११ मार्च, १६३२

प्रिय श्री सेमुएल होर,

आपको शायद याद होगा कि गोलमेज परिषद् में अल्प-संख्यकों का दावा उपस्थित होने पर मैंने अपने भाषण के अन्त में कहा था कि मैं दलित जातियों को पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिये जाने का प्राण देकर विरोध करूंगा। यह बात उस वक्त जोश में आकर या भाषण को प्रभावोत्पादक बनाने के लिये नहीं कही गयी थी। वह एक गंभीर वक्तव्य था।

उस वक्तव्य के अनुसार मैंने भारत लौटने पर कम से कम दलित वर्गों के लिये पृथक् निर्वाचन के विरुद्ध लोकमत तैयार करने की आशा की थी। पर यह होनहार न था।

मुझे जो समाचार-पत्र पढ़ने की अनुमति है उनसे मालूम होता है कि किसी भी क्षण सम्राट सरकार अपने निर्णय की घोषणा कर सकती है। पहले मैंने सोचा था कि यदि निर्णय में दलित वर्गों के लिये पृथक् निर्वाचनाधिकार हुआ, तो मैं ऐसी कार्रवाई करूंगा, जो मुझे प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये उस समय आवश्यक जान पड़ेगी। पर मैं अनुभव करता हूं कि पूर्व सूचना दिये बिना कार्य करना ब्रिटिश सरकार के साथ अन्याय करना होगा। स्वभावतः वे मेरे उक्त वक्तव्य को वह महत्व न दे सकते थे, जो मैं देता हूं।

दलित वर्गों को पृथक् निर्वाचनाधिकार देने के संबंध में मुझे जो आपत्तियां हैं उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं। मैं अनुभव करता हूं कि मैं उन्हीं में से एक हूं। उनका मामला दूसरों से बिलकुल भिन्न है। व्यवस्थापिका सभाओं में उन्हें प्रतिनिधित्व मिलने के विरुद्ध मैं नहीं हूं। मैं तो इसे पसंद करूंगा कि उनमें से प्रत्येक बालिग स्त्री पुरुष दोनों को शिक्षा या सम्पत्ति किसी का भी विचार न कर मतदाता बनाया जाय, यद्यपि दूसरों के लिये मताधिकार की योग्यता इससे अधिक हो। पर मेरा मत है कि पृथक् निर्वाचन उनके लिये और हिन्दू धर्म के लिये हानिकर है, फिर केवल राजनैतिक दृष्टि से वह कैसा ही क्यों न हो। पृथक् निर्वाचन से उन्हें जो हानि होगी उसे समझने के लिये यह जानने की जरूरत है कि वे किस प्रकार उच्च वर्ग के हिन्दुओं के बीच बसे हुये हैं और उनके आश्रित हैं। जहां तक हिन्दू धर्म का संबंध है वह तो पृथक् निर्वाचन से छिन्न-भिन्न हो जायगा।

मेरे लिये इन वर्गों का प्रश्न मुख्यतः नैतिक और धार्मिक है। राजनैतिक रूप, यद्यपि वह महत्वपूर्ण है, नैतिक और धार्मिक रूप के सामने नगण्य हो जाता है। इस संबंध में मेरे भाव आपको यह स्मरण करके समझने होंगे कि इन वर्गों की स्थिति के संबंध में मुझे बचपन से दिलचस्पी है, और उनके लिये मैं अनेक बार अपना सब कुछ खोने के लिये तैयार हो चुका हूं। मैं यह अपने कार्य पर घमंड प्रकट करने के लिये नहीं कह रहा हूं, बल्कि मैं अनुभव करता हूं कि उच्च श्रेणी के हिन्दू चाहे कोई भी प्रायश्चित करें वह उस क्षति की किसी भी अंश में पूर्ति नहीं कर सकता जो उन्होंने दलितवर्गों को सदियों से अपमानजनक अवस्था में रख कर की है। पर मैं जानता हूं कि पृथक निर्वाचन उस कुचल देने वाली पतितावस्था का, जिसमें दलित वर्ग ने कष्ट भोगे हैं, न तो प्रायश्चित है और न औषधि ही।

इसलिये मैं साम्राट सरकार को सविनय सूचित करता हूं कि यदि उसके निर्णय से दलित वर्गों को पृथक् निर्वाचनाधिकार मिलेगा तो मुझे आमरण अनशन करना होगा।

मैं जानता हूं..और मुझे दुख है..कि कैदी की दशा में मेरे ऐसा करने से सम्राट सरकार को बड़ी परेशानी होगी और बहुत से लोग इसे बहुत अनुचित समझेंगे कि मेरे पद का मनुष्य राजनैतिक क्षेत्र में ऐसी कार्य-प्रणाली प्रचलित करे जिसे वे ज्यादा बुरा नहीं तो पागलपन जरूर कहेंगे। अपने पक्ष समर्थन के लिये मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि मेरे लिये वह कार्य, जिसे करने का मैंने विचार किया है, उद्देश्य साधन की कोई प्रणाली नहीं, वरन् मेरे अस्तित्व का एक अंग है। यह मेरे अंतःकरण की आवाज है, जिसकी मैं अवज्ञा नहीं कर सकता, चाहे इससे मेरे समझदार होने की ख्याति नष्ट ही क्यों न हो जाय। जहां तक मैं देखता हूं इस समय मेरा जेल से छूट जाना भी मेरे अनशन के कर्त्तव्य को किसी प्रकार कम आवश्यक न बना सकेगा। लेकिन मैं आशा कर रहा हूं कि मेरा सारा भय बिलकुल व्यर्थ है और ब्रिटिश सरकार का दलित वर्गों के लिये पृथक्-निर्वाचन की व्यवस्था करने का कोई इरादा नहीं है।

आपका

मो० क० गांधी

(२)

सर सेमुएल होर का जवाब

लंदन,

१३ अप्रैल, १९३२

प्रिय मि० गांधी,

मैं आपके ११ मार्च के पत्र के उत्तर में यह चिट्ठी लिख रहा हूं और मैं पहले ही कह देता हूं कि दलित वर्गों के लिये पृथक निर्वाचन के प्रश्न पर

आपके भावों को मैं पूरी तरह समझता हूं। मैं यही कह सकता हूं कि इस प्रश्न के केवल गुणावगुणों पर जो भी निर्णय आवश्यक हो उसे हम करना चाहते हैं। आप जानते ही हैं कि लार्ड लोथियन की कमेटी ने अपना दौरा समाप्त नहीं किया है और वह जिस किसी निश्चय पर पहुंचेगी उसे प्राप्त होने में कुछ हफ्ते अवश्य लग जायेंगे। जब हमें यह रिपोर्ट प्राप्त हो जायगी तब हमें उसकी सिफारिशों पर बहुत ही ध्यानपूर्वक विचार करना होगा और हम तब तक कोई निर्णय न करेंगे जब तक हम कमेटी के विचारों के सिवाय उन विचारों पर भी विचार न कर लेंगे, जिन्हें आपने और आपके समान विचार रखने वालों ने इतनी शक्ति के साथ रखा है। मुझे विश्वास है कि यदि आप हमारे स्थान में होते, तो आप भी ठीक वैसी ही कार्यवाही करते जैसी हम करना चाहते हैं।

आपका

सेमुएल होर

(३)

गांधी जी का ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मि० रेम्जे मेक्डानल्ड को लिखा पत्र

यरवदा सेंट्रल जेल,

१८ अगस्त, १९३२

प्रिय मित्र,

दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर ११ मार्च को मैंने सर सेमुएल होर को जो चिठ्ठी लिखी थी वह उन्होंने आपको तथा मंत्रिमंडल को दिखा दी होगी। वह चिट्ठी इस चिट्ठी का अंश समझी जाय और इसके साथ मिला कर पढ़ी जाय।

मैंने अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व पर ब्रिटिश सरकार का निश्चय पढ़ा है और पढ़ कर उदासीन भाव से अलग रख दिया है। मैंने सर सेमुएल को जो चिट्ठी लिखी और सेंट जेम्स महल में १३ नवम्बर, १९३१ को गोलमेज परिषद् की अल्पसंख्यकों की कमेटी में जो घोषणा की थी उसके अनुसार आपके निर्णय का विरोध मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर करूंगा।

ऐसा करने का उपाय यही है कि प्राण त्यागने तक लगातार अनशन करने की घोषणा करदूं, और नमक और सोडा के साथ या उनके बिना पानी के सिवा किसी प्रकार का भोजन ग्रहण न करूं।

यह अनशन तभी समाप्त होगा जब इस व्रत के रहते ब्रिटिश सरकार अपनी इच्छा से या सार्वजनिक मत के दबाव से अपने निश्चय को बदल दे और दलित वर्गों के संबंध में साम्प्रदायिक निर्वाचन की अपनी योजना वापस ले ले, जिनके प्रतिनिधियों का चुनाव साधारण निर्वाचन क्षेत्रों से और सम्मिलित मताधिकार के अनुसार हो, चाहे यह मताधिकार कितना ही व्यापक क्यों न हो।

यदि बीच में इस रीति से उक्त निर्णय में परिवर्तन न हुआ तो यह अनशन साधारण अवस्था में अगले २० सितम्बर के दोपहर से आरम्भ होगा।

मैंने यहां के अधिकारियों से कह दिया है कि इस चिट्ठी का मजमून आपके पास तार से भेज दिया जाय जिसमें आपको सोचने के लिये काफी समय मिले। पर प्रत्येक अवस्था में, मैं आपको इतना काफी समय दे रहा हूं कि धीमे से धीमे मार्ग से जाने पर भी यह चिट्ठी आपको समय पर मिल जाय।

मेरी यह भी इच्छा है कि मेरी यह चिट्ठी और सर सेमुएल होर को लिखी हुई चिट्ठी शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित की जाय। मैंने अपनी ओर से पूरी ईमानदारी के साथ जेल के नियमों का पालन किया है और अपनी इच्छा या इन दो चिट्ठियों का मजमून सरदार बल्लभ भाई पटेल और श्री महादेव देसाई इन दो साथियों को छोड़ कर और किसी को नहीं बताया है। पर यदि आप इसे सम्भव बना दें तो मैं चाहता हूं कि मेरे पत्रों का प्रभाव जनता पर पड़े। इसीलिये इन्हें शीघ्र प्रकाशित करने का मैं अनुरोध करता हूं।

खेद है कि मुझे यह निश्चय करना पड़ा। पर मैं अपने को धार्मिक पुरुष समझता हूं और इस नाते मेरे सामने कोई दूसरा मार्ग नहीं रह गया है। सर सेमुएल होर को मैंने जो पत्र लिखा उसमें मैं कह चुका हूं कि परेशानी से बचने के लिये ब्रिटिश सरकार मुझे छोड़ देने का निश्चय भले ही करे, पर मेरा अनशन बराबर जारी ही रहेगा, क्योंकि अब मैं अन्य किसी उपाय से इस निर्णय का विरोध करने की आशा नहीं कर सकता और सम्मानयुक्त उपाय को छोड़ कर किसी दूसरे उपाय से अपनी रिहाई करा लेने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है।

सम्भव है मेरा निर्णय गलत दिशा में हो और मेरा यह विचार बिलकुल गलत हो कि दलित वर्गों के लिये पृथक्-निर्वाचन, उनके लिये या हिन्दुत्व के लिये हानिकर है। यदि ऐसा हो तो यह सम्भव है कि जीवन सबंधी तत्वज्ञान के अन्य अंगों के संबंध में भी मेरे विचार ठीक न हों। उस दिशा में अनशन करके मर जाना मेरी भूल का प्रायश्चित होगा और इससे उन असंख्य स्त्री-पुरुषों का एक बोझ दूर हो जायगा जो मेरी बुद्धिमत्ता पर बालक जैसा विश्वास रखते हैं। पर यदि मेरा निर्णय ठीक हो, जिसमें मुझे संदेह नहीं है, तो इस निश्चय से मेरे जीवन का कार्यक्रम उचित रूप से पूर्ण होगा, जिसके लिये मैंने २५ साल से भी अधिक समय से यत्न किया है और जिसमें यह स्पष्ट है कि कम सफलता नहीं मिली है।

आपका विश्वसनीय मित्र
मो० क० गांधी

गांधी जी के नाम मि० रेम्ज़े मेक्डानल्ड का पत्र

लंदन,

८ सितम्बर, १९३२

प्रिय मित्र गांधी,

मुझे आपका पत्र मिला। इसे पढ़कर आश्चर्य हुआ और कहना चाहता हूं कि बहुत ही हार्दिक दुख भी हुआ। इसके सिवा मैं यह ख्याल किये बिना नहीं रह सकता कि दलित वर्गों के संबंध में सम्राट की सरकार के निर्णय के बारे में गलतफहमी होने के कारण आपने यह पत्र लिखा है। हम इस बात को सदा समझते रहे हैं कि आप दलित वर्ग के सदा के लिये हिन्दू जाति से अलग कर दिये जाने के पूरे विरोधी हैं। गोलमेज परिषद् की अल्पसंख्यक समिति में आपने अपनी स्थिति बिलकुल साफ तौर से बताई थी और अपने ११ मार्च वाले पत्र में सर सेमुएल होर को दूसरी बार भी आपने अपना मत बता दिया था। हम भी जानते हैं कि हिन्दू जनता के एक बहुत बड़े भाग का भी इस विषय में वही मत है जो आपका है। अतः दलित वर्ग के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विचार करते समय हमने उसका बहुत ही सावधानी से ध्यान रखा।

अछूतों की संस्थाओं से मिली हुई बहुसंख्यक अपीलों तथा उनकी सामाजिक बाधाओं के विचार से, जिन्हें आम तौर से सभी स्वीकार करते हैं और खुद आप भी अनेक बार स्वीकार कर चुके हैं, व्यवस्थापिका सभाओं के प्रतिनिधित्व के संबंध में उनके न्याययुक्त अधिकार को सुरक्षित करना। हमने कोई ऐसी बात न करने का भी उतना ही ध्यान रखा जिससे अछूत सदा के लिये हिन्दू जाति से अलग न हो जायं। अपने ११ मार्च के पत्र में आपने खुद ही कहा है कि आप अछूतों को व्यवस्थापिका सभाओं में प्रतिनिधित्व दिये जाने के खिलाफ नहीं हैं।

सरकारी योजना के अनुसार अछूत हिन्दू जाति के अंग बने रहेंगे और उनके साथ बराबरी की हैसियत से शामिल होकर वोट दे सकेंगे। पर पहले बीस साल तक निर्वाचन में, हिन्दुओं के साथ शामिल करते हुये भी उनको थोड़े से खास हलकों के रूप में अपने अधिकारों और स्वार्थों की रक्षा का साधन प्राप्त रहेगा, जो हमारा विश्वास है कि वर्तमान स्थिति में आवश्यक है। जहां-जहां ऐसे हलके बनाये जायेंगे, अछूत वर्ग साधारण हिन्दू निर्वाचन-क्षेत्र के वोट से वंचित न होंगे, बल्कि उन्हें दो-दो वोट देने का अधिकार दे दिया जायगा, जिसमें हिन्दू जाति के साथ उनका संबंध अविकल बना रहे।

आप जिसे साम्प्रदायिक निर्वाचन कहते हैं, अछूतों के लिये हमने जान बूझकर उसके विरुद्ध निर्णय दिया है और सम्पूर्ण अछूत वोटरों को साधारण अर्थात् हिन्दू निर्वाचन-क्षेत्रों में शामिल कर दिया है, जिससे चुनावों में उच्च जाति के हिन्दू उम्मीदवारों को अछूत वोटरों के पास जाकर वोट मांगना पड़े।

इस प्रकार हिन्दू जाति की एकता की रक्षा सब प्रकार से की गई है। तथापि हमने सोचा कि उत्तरदायी शासन के आरम्भ काल में, जब प्रांतों का शासनाधिकार उसी वर्ग के हाथ में रहेगा जिसका व्यवस्थापिका सभाओं में बहुमत होगा, यह आवश्यक होगा कि दलित वर्ग, जिनके विषय में आप खुद भी स्वीकार करते हैं कि उच्च जाति के हिन्दुओं ने शताब्दियों से उन्हें पतित अवस्था में डाल रखा है, ९ में से ७ प्रान्तों की व्यवस्थापिका सभाओं में अपने कुछ ऐसे प्रतिनिधि भी चुन कर भेज सकें जो उनके अभाव अभियोगों और आदर्शों को प्रकट कर सकें, और व्यवस्थापिका सभाओं और सरकार के सामने उनका केस रखे बिना उनके विरुद्ध निर्णय होने से रोक सकें, अर्थात् जिनके द्वारा दलित वर्ग अपना मत खुद प्रकट कर सकें। प्रत्येक न्यायशील व्यक्त सहमत होगा कि यह व्यवस्था आवश्यक है। हमने स्थान सुरक्षित करके किसी भी व्यावहारिक मताधिकार प्रणाली से दलित वर्गों के विशेष प्रतिनिधि सदस्य, जो उनका सच्चा प्रतिनिधित्व कर सके और उसके प्रति उत्तरदायी हो, चुनने के तरीके पर विचार नहीं किया, क्योंकि व्यावहारिक दृष्टि से प्राय: ऐसे सभी सदस्य मतदाताओं द्वारा चुने जाते, जिनमें ऊंची जाति के हिन्दुओं का बहुमत होता।

हमारी योजना में अछूतों को साधारण निर्वाचन-क्षेत्रों में मताधिकार देते हुये उनके लिये थोड़े से अलग हलके भी बना दिये गये हैं। मुसलमान आदि अल्पसंख्यकों के लिये की गई साम्प्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था से यह रूप और भाव में सर्वथा भिन्न है। एक मुसलमान साधारण हलके में न वोट दे सकता है और न उम्मीदवार हो सकता है। लेकिन दलित वर्गों का कोई भी कानूनी मतदाता साधारण हलके में वोट दे सकता है और उम्मीदवार खड़ा हो सकता है।

मुसलमानों को जिस स्थान में जितनी जगहें दी गई हैं उससे वे एक भी अधिक नहीं प्राप्त कर सकते। अधिकतर प्रान्तों में उन्हें अपनी जनसंख्या के पड़ते से अधिक जगहें दी गई हैं। पर दलित वर्गों को खास हलकों के द्वारा जो जगहें दी गई हैं वे बहुत अल्प हैं, और उनकी जनसंख्या के पड़ते के विचार से नहीं नियत की गई हैं। इस व्यवस्था का एक मात्र उद्देश्य यही है कि वे व्यवस्थापिका सभाओं में अपने कुछ ऐसे प्रतिनिधि अवश्य भेज सकें जो केवल उन्हीं के चुने हों। हर जगह उनके इन विशेष स्थानों की संख्या उनकी आबादी के पड़ते से बहुत कम है।

मैं समझता हूं कि आप जो अनशन के द्वारा प्राण त्याग का विचार कर रहे हैं, उसका उद्देश्य न तो यह है कि दलित वर्ग दूसरे हिन्दुओं के साथ संयुक्त निर्वाचन-क्षेत्र में शामिल हों, क्योंकि यह अधिकार तो उन्हें मिला ही हुआ है और न इसका उद्देश्य यही है कि हिन्दुओं की एकता बनी रहे, क्योंकि यह योजना में है, बल्कि केवल यह कि अछूत लोग, जिनके लिये आज भयानक बाधायें उपस्थित होने की बात भी स्वीकार करते हैं, अपने थोड़े से प्रतिनिधि भी ऐसे न भेज

सकें, जो उनके अपने चुने हुये हों और जो उनके भविष्य पर भारी प्रभाव डालने वाली व्यवस्थापिका सभाओं में उनके प्रतिनिधि की हैसियत से बोल सकें। सरकारी योजना की इन बहुत ही न्माययुक्त तथा बहुत सोच विचार कर की गई तजवीजों को देखते हुये मेरे लिये आपके निश्चय का कोई समुचित कारण समझ सकना सर्वथा असंभव हो गया है और मैं केवल यही सोच सकता हूं कि वस्तुस्थिति के समझने में भ्रम हो जाने के कारण आपने ऐसा निश्चय किया।

जब आपस में समझौता न कर सकने पर भारतीयों ने मिलकर सरकार से अपील की तब कहीं उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर अपना फैसला देना स्वीकार किया। अब वह उसे दे चुकी है और बताई गई शर्तों के सिवा और किसी तरह वह बदला नहीं जा सकता। अतः मुझे खेद के साथ आपसे यही कहना पड़ रहा है कि सरकार का निश्चय कायम है और केवल विभिन्न सम्प्रदायों का आपस का समझौता ही उस निर्वाचन व्यवस्था के बदले स्वीकार किया जा सकता है जिसे सरकार ने परस्पर विरोधी दावों में सामंजस्य करने की सच्ची नियत से तजवीज किया है।

आपका अनुरोध है कि यह पत्र-व्यवहार आपके उस पत्र के सहित, जो ११ मार्च को आपने सर सेमुएल होर को लिखा था, प्रकाशित कर दिया जाय। चूंकि मुझे यह उचित नहीं जान पड़ता कि नजरबंद होने के कारण आप जनता के सामने अपने अनशन के निश्चय के कारणों को रखने से वंचित रहें, इसलिये यदि आपने अपने अनुरोध को दुहराया तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर लूंगा। फिर भी मैं एक बार आपसे और आग्रह अनुरोध करना चाहता हूं कि आप सरकारी निर्णय की तफसीलों पर विचार करें ... और अपने विवेक से गम्भीर भाव से प्रश्न करें कि आपने जो करने का विचार किया, क्या वह सचमुच उचित है ?

आपका,

जे० रेम्जे मेक्डानल्ड

(५)

गांधी जी का प्रधान मंत्री को उत्तर

यरवदा सेंट्रल जेल
९ सितम्बर, १९३२

प्रिय मित्र,

आज तार द्वारा भेजे गये और प्राप्त हुये आपके स्पष्ट और पूर्ण उत्तर के लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। तथापि मुझे खेद है कि आपने मेरे निश्चय का ऐसा अर्थ किया जिसका मुझे कभी ध्यान ह. न हुआ था। मैं उसी वर्ग की ओर से बोलने का दावा करता हूं, जिनके स्वार्थों की हत्या करने के लिये आप मुझ पर

दोष लगाते हैं, कि मैं अनशन करके मर जाना चाहता हूं। मुझे आशा थी कि इस आखिरी उपाय के कारण कोई ऐसा स्वार्थपूर्ण अर्थ न करेगा। कुछ अनर्घ किये बिना ही मैं फिर कहता हूं कि मेरे लिये यह विषय शुद्ध धार्मिक विषय है। केवल यही बात कि दलित वर्गों को द्विविध मत मिले हैं, उन्हें या सामान्य हिन्दू समाज को विच्छिन्न होने से नहीं रोकती। दलित वर्ग के लिये पृथक निर्वाचन की स्थापन-मात्र में मुझे उस विष के इंजेक्शन की गंध मिलती है जिससे हिन्दुत्व नष्ट हो सकता है और दलित वर्गों को कुछ लाभ नहीं मिल सकता। कृपा कर मुझे यह कहने दीजिये कि आप कितनी ही सहानुभूति क्यों न रखते हों, आप ऐसे विषय में ठीक-ठीक निश्चय पर नहीं पहुंच सकते, जो हिन्दू और अछूत दोनों के लिये जीवन-मरण का प्रश्न है और धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्व रखता है। मैं दलित वर्गों को आवश्यकता से भी अधिक प्रतिनिधित्व देने का विरोध न करूंगा। मैं इसी बात के विरुद्ध हूं कि वे, जब तक अन्दर रहना चाहते हैं, कानून बनाकर हिन्दू समाज से पृथक कर दिये जायं फिर यह पार्थक्य कितना ही सीमित क्यों न हो। क्या आप जानते हैं कि यदि आपका निर्णय बना रहा और शासन विधान पर अमल हुआ तो आप हिन्दू सुधारकों के, जिन्होंने अपने आपको जीवन की हर दिशा में अपने दलित भाइयों का उद्धार करने के लिये समर्पण कर दिया है, कार्य की आश्चर्यजनक उन्नति को रोक देंगे।

इसलिये मुझे खेदपूर्वक अपने पूर्व निश्चय पर कायम रहने को लाचार होना पड़ता है।

आपकी चिटठी से भ्रम उत्पन्न हो सकता है, इसलिये मैं कह देना चहता हूं कि आपके निर्णय के अन्य अंशों से मैंने दलित वर्गों के प्रश्न को खास तौर से विचार करने के लिये अलग कर लिया है। उसका यह अर्थ नहीं होता कि मैं आपके निर्णय के अन्य अंशों से सहमत हूं। मेरी राय में उसके अन्य कई अंश बहुत ही आपत्तिजनक हैं। पर मैं उन्हें ऐसा नहीं समझता, जो मुझे आत्माहुति देने की इतनी प्रेरणा करें जितनी मेरे विवेक ने दलित वर्गों के सम्बन्ध में मुझे की है।

आपका विश्वसनीय मित्र

मो० क० गांधी

(६)

बम्बई सरकार को गांधी जी का पत्र

यरवदा सेंट्रल जेल,

१५ सितम्बर, १९३३

मैं जिस अनशन को आरम्भ करने जा रहा हूं उसका निश्चय ईश्वर के नाम पर, उसके कार्य को पूरा करने के लिये और जैसा कि मैं नम्रता के साथ

विश्वास करता हूं, उसके आदेश पर किया गया है। मित्रों का आग्रह है कि मैं उसे इस तारीख को आरम्भ न करूं जिसे जनता को अपना संगठन कर लेने का समय मिल जाय। मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि अब उसके निश्चित समय को बदलना भी मेरे बस की बात नहीं है। प्रधान मंत्री के पत्र में जो शर्त मैं लिख चुका हूं उसके पूरी होने पर ही उपवास टल सकता है।

मेरा भावी अनशन उन लोगों के विरुद्ध है, जो मुझ में विश्वास रखते हैं, चाहे वे भारतीय हों या यूरोपियन। वह उन लोगों के विरुद्ध नहीं है जिनका मुझे विश्वास नहीं है, इसलिये वे अंग्रेज अधिकारी वर्ग के विरुद्ध नहीं है, पर उन अंग्रेज स्त्री पुरुषों के विरुद्ध है जो अधिकारी वर्ग के विरोधी उपदेशों को अनसुना करके भी मुझ में विश्वास रखते हैं और मेरे पक्ष को न्यायसंगत मानते हैं। वह मेरे उन देशवासियों के भी विरुद्ध नहीं है, जो मुझमें विश्वास नहीं रखते, चाहे वे हिन्दू हों या और कोई, किन्तु वह उन अगणित देशवासियों के विरुद्ध है, चाहे वे किसी भी दल और विचार के क्यों न हों, जिनका विश्वास है कि मेरा पक्ष न्याय का पक्ष है। सर्वोपरि हिन्दू समाज की अन्तरात्मा को सच्चे धर्म के पालन के लिये प्रेरित करना उसका उद्देश्य है।

केवल लोगों की भावुकता को जगाना मेरे संकल्पित उपवास का उद्देश्य नहीं है। मैं अपना सारा ...जन'' जो कुछ भी वह है'' 'न्याय, शुद्ध न्याय के पलरे पर धर देना चाहता हूं, अतः मेरी प्राण रक्षा के लिये अनुचित उतावली और परेशानी न होनी चाहिये। इस वचन में मेरा अटल विश्वास है कि भगवान की मरजी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। उसे इस देह से कुछ काम लेना होगा तो वह उसे बचावेगा। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई भी उसे बचा नहीं सकेगा। मनुष्य की दृष्टि से मैं कह सकता हूं कि मेरा विश्वास है कि कुछ दिन तक वह बिना अन्न के जी सकता है।

पृथक निर्वाचन मेरे निश्चय के लिये एक निमित्त मात्र था। वर्णाश्रमी हिन्दू नेताओं और दलित नेताओं के काम चलाऊ समझौते से काम न चलेगा। वास्तविक समझौता ही जायज होगा। यदि हिन्दू जन-साधारण सामूहिक रूप से अपने मस्तिष्कों से अस्पृश्यता को जड़मूल से उखाड़ फेंकने को अभी तैयार नहीं हुये हैं, तो मेरा बलिदान कर देने में तनिक भी आगापीछा न करना चाहिये।

जो लोग संयुक्त निर्वाचन के विरोधी हैं, उन पर तनिक भी दबाव न डालना चाहिये। उनके तीव्र विरोध को मैं सहज ही समझ सकता हूं ... मेरा अविश्वास करने का उन्हें पूरा अधिकार है। क्या मैं उसी हिन्दू वर्ग का नहीं हूं जो गलती से उच्च वर्ग अथवा सवर्ण कहा जाता है और जिसने कथित दलितों को कुचलते कुचलते धूल बना दिया है? आश्चर्य तो यह है कि ये दलित इतना सब हो जाने पर हिन्दू समाज में ही बने हुये हैं।

पर उनके विरोध को ठीक मानते हुये भी मेरा विश्वास है कि वे भूल कर रहे हैं। यदि उनका वश चले तो वे दलित जातियों को हिन्दू समाज से काट

कर सर्वथा अलग कर लें और उनका पृथक वर्ग बना दें, जो हिन्दू धर्म के लिये एक स्थायी और जीवित अपयश का टीका होगा। यदि इससे अछूतों का सच्चा हित होता तो मुझे इसकी परवा न होगी। पर मैंने अछूतों के सभी वर्गों का बहुत निकट से परिचय प्राप्त किया है और इस जानकारी के कारण मुझे निश्चय हो गया है कि उनका जीवन सवर्ण हिन्दुओं के, जिनके बीच और जिनके लिये वे रहते हैं, जीवन से इस प्रकार मिलाजुला है कि उन्हें अलग करना असंभव है। दोनों वर्ग एक ही अविभाज्य कुटुम्ब के व्यक्ति हैं। यदि अछूत जिन हिन्दुओं के साथ रहते हैं उनके विरुद्ध विद्रोह करने और हिन्दू धर्म को सदा के लिये नमस्कार कर देने को तैयार हो जायं तो मुझे इस पर आश्चर्य न होगा। पर जहां तक मैं समझ सकता हूं, वे ऐसा न करेंगे। हिन्दू धर्म में कोई ऐसा अनिर्वचनीय सूक्ष्म तत्व है जो उनकी इच्छा के विरुद्ध भी उन्हें उससे अलग नहीं होने देता। और इस कारण मेरे जैसे व्यक्ति के लिये, जिसे उनका वास्तविक अनुभव है, यह अनिवार्य हो जाता है कि वह अपने प्राण देकर भी अछूतों के प्रस्तावित पृथक्करण का विरोध करे।

इस विरोध में जो बातें शामिल हैं वे बहुत बड़ी बातें हैं। जिस समझौते से दलित वर्ग को हिन्दू समाज के घेरे के अन्दर पूर्ण स्वतंत्रता नहीं मिलती वह कदापि इस योग्य न होगा कि प्रस्तावित पृथक्करण के बदले स्वीकार किया जा सके। अपने ऊपर लिये हुये कर्त्तव्य के संबंध में तनिक भी चालाकी या झुठाई से काम लिया गया तो इसका नतीजा केवल यही होगा कि मेरा प्राण त्याग कुछ दिनों के लिये टल भर जायगा। और इसके बाद उन लोगों के संबंध में भी यही बात होगी, जो इस विषय में मेरे ही जैसा विचार रखते हैं। जिम्मेदार हिन्दुओं को इस समस्या पर विचार करना है कि यदि सामाजिक, नागरिक और राजनैतिक क्षेत्रों में दलित वर्ग पर आज के से अत्याचार होते रहे तो क्या वे मेरे जैसे एक सुधारक का नहीं, बल्कि सुधारकों की एक वर्द्धमान सेना के चिर अनशनरूपी सत्याग्रह का सामना करने को तैयार होंगे। मेरा विश्वास है कि आज भारत में ऐसे सुधारक काफी संख्या में मौजूद हैं, जो दलित जातियों का उद्धार करने और उसके द्वारा हिन्दू धर्म को उसके युगयुगांतर के एक अंध-विश्वास से मुक्त करने के प्रयत्न में अपने प्राणों को तुच्छ समझें।

मेरे साथ काम करने वाले सुधारक भाइयों को भी इस उपवास का अर्थ भलीभांति समझ लेना चाहिये। यह या तो मुझे भ्रांत हुई है या दिव्य ज्ञान मिला है। मुझे भ्रांत हुई है, तो मुझे अवश्य चुपचाप उसका प्रायश्चित करने देना चाहिये। इससे हिन्दू धर्म की छाती पर से एक भारी बोझ हट जायगा। यदि यह दिव्य ज्ञान मिला है तो संभव है मेरा कष्ट सहन हिन्दुत्व को शुद्ध कर दे और हिन्दुओं के हृदय द्रवित भी कर दे, जो इस समय मेरे ऊपर अविश्वास कर रहे हैं।

मेरे उपवास के मुख्य हेतु के विषय में कुछ भ्रम मालूम होता है, इसलिये मैं फिर यह बता देना चाहता हूं कि उसका उद्देश्य दलित वर्ग के लिये पृथक

निर्वाचन की व्यवस्था का.... चाहे वह किसी भी प्रकार की क्यों न हो.. विरोध करना है। यह व्यवस्था वापस लेते ही मेरा अनशन समाप्त हो जायगा। स्थान सुरक्षित करने के संबंध में और इस समस्या को हल करने के सर्वोत्तम तरीके के संबंध में मेरे मजबूत विचार हैं, पर एक कैदी की हैसियत से मैं अपने आपको अपने प्रस्ताव उपस्थित करने का अधिकारी नहीं समझता। लेकिन संयुक्त निर्वाचन के आधार पर सवर्ण हिन्दुओं और दलित वर्ग के जिम्मेदार नेताओं के बीच कोई समझौता हो, और वह सब प्रकार के हिन्दुओं की बड़ी-बड़ी सार्वजनिक सभाओं में स्वीकृत हो जाय, तो मैं उसे मान लूंगा।

ज्ञान प्राप्ति और तपस्या के लिये उपवास एक बहुत पुरानी प्रथा है। मैंने ईसाई धर्म तथा इस्लाम में भी इसका उल्लेख देखा है। हिन्दू धर्म में तो आत्म-शुद्धि एवं तपस्या के उद्देश्य के लिये किये गये उपवास के उदाहरण भरे पड़े हैं। किंतु यदि उपवास करना कर्तव्य हो जाय तो यह विशेष अधिकार बन जाता है। फिर मैंने तो अपने लिये यथाशक्ति इसे वैज्ञानिक रूप दे डाला है। अतः इस विषय का विशेषज्ञ होने के नाते मैं अपने मित्रों और सहानभति प्रदर्शित करने वालों को सचेत कर देना चाहता हूं कि वे लोग बिना सोचे समझे अथवा झूठी और उन्मादजनित सहानुभूति के कारण मेरा अनुकरण न करें। जो लोग ऐसा करने के इच्छुक हों, उन्हें कठिन परिश्रम और अछूतों की निस्वार्थ सेवा द्वारा अपने को उसके योग्य बना लेना चाहिये। तब यदि उपवास करने का उनका उचित समय आगया होगा तो उनके हृदय में भी स्वतंत्र रूप से प्रकाश का आविर्भाव हो सकता है।

अन्त में मैं यह भी कह देना चहता हूं कि यह उपवास में पवित्र से पवित्र उद्देश्यों से प्रेरित होकर ही कर रहा हूं, कसी भी व्यक्ति के प्रति क्रोध या द्वेष की भावना से प्रेरित होकर नहीं। मेरे लिये तो यह अहिंसा का ही एक रूप है और उसका अंतिम प्रयोग है। अतः यह स्पष्ट है कि जो लोग उन लोगों के प्रति वाद-विवाद में किसी तरह का द्वेषभाव या हिंसा प्रदर्शित करेंगे, जिन्हें वे मेरे प्रतिकूल या मैं जिस उद्देश्य की सिद्धि के लिये यत्न करता हूं उसके विरुद्ध समझते हों, तो इस कार्य द्वारा वे मेरी मृत्यु का आवाहन और भी शीघ्रतापूर्वक करेंगे। सब उद्देश्यों की नहीं तो कम से कम इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये तो यह परमावश्यक है कि अपने विरोधियों के साथ पूर्ण सौजन्य का व्यवहार किया जाय और उनके भावों के प्रति आदर दिखाया जाय।

मो० क० गांधी

अनशन के विषय में

अनशन के बारे में बहुधा यह प्रश्न उपस्थित किया गया है कि ईश्वर की प्रेरणा क्या चीज है? यह प्रेरणा मुझे कैसे हुई, मैंने कैसे जाना कि यह ईश्वर की प्रेरणा थी? मैंने कैसे ईश्वर के दर्शन किये? क्या मुझे साक्षात्कार हो गया? इस प्रकार के प्रश्न किये गए हैं।

मेरे लिये ईश्वरीय प्रेरणा, अन्तर्नाद, अन्तःप्रेरणा, सत्य का संदेश आदि एक ही अर्थ के सूचक हैं। मुझे किसी आकृति के दर्शन नहीं हुये, ईश्वर का साक्षात्कार नहीं हुआ। मैं नहीं मानता कि मुझे किसी आकृति के दर्शन होंगे। ईश्वर निराकार है, इसलिये ईश्वर का दर्शन आकृतिरूप से नहीं हो सकता।

जिसे ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है, वह सर्वथा निष्कलंक हो जाता है। वह कामना-रहित हो जाता है। उसके विचार मे दोष, कलुष और अपूर्णता कुछ नहीं रहता। उसका कार्यमात्र सम्पूर्ण होता है, कारण कि वह स्वयं कुछ नहीं करता, उसके अन्तर में रहने वाला अन्तर्यामी ही सब कुछ करता है। वह तो उसी में लीन हो जाता है। ऐसा साक्षात्कार हो सकता है, इस बारे में मुझे तिल मात्र भी शंका नहीं है। ऐसा साक्षात्कार करने की मेरी अभिलाषा है, पर अभी तक वह हुआ नहीं है। मैं जानता हूं कि अभी मैं उससे बहुत दूर हूं। मुझे जो प्रेरणा हुई, वह एक अनोखी चीज है और ऐसी प्रेरणा समय-समय पर बहुतों को होती है। ऐसी प्रेरणा के लिये विशेष साधना की आवश्यकता होती है। साधारण से साधारण कार्य करने की शक्ति प्राप्त करने के लिये जब कुछ प्रयत्न और साधना की आवश्यकता रहती है, तब ईश्वरीय प्रेरणा होने की योग्यता प्राप्त करने के लये प्रयत्न और साधना की जरूरत हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? मुझे यह प्रेरणा हुई थी। जिस रात को यह प्रेरणा हुई, उस रात को हृदय में खूब हलचल मची हुई थी, चित्त व्याकुल था, मार्ग सूझता नहीं था। उत्तरदायित्व के भार से मैं दबा जा रहा था। इसी समय सहसा आवाज आई। बहुत दूर से आई हुई भी निकट ही मालूम पड़ती थी। यह अनुभव असाधारण था मानो कोई मनुष्य ही कुछ कह रहा हो, ऐसी आवाज थी। उस समय मेरी स्वप्नावस्था नहीं थी, मैं जाग्रत था। रात की पहली नींद लेने बाद मैं एक क्षण में उठ बैठा। मैं नहीं समझ सका कि कैसे उठ गया। अन्तर्नाद सुनने के बाद हृदय की वेदना शांत हो गई। मैंने निश्चय कर लिया। अनशन की तारीख और घड़ी भी निश्चत कर ली। मेरा भार एक दम हलका हो गया। हृदय उल्लसित हो उठा। यह समय ११ और १२ के बीच का था। तबियत में एक ताजगी आ गई। शैय्या पर से उठ कर मैंने कमरे मे बत्ती जलाई और मुझे जो लिखना था वह लिखने बैठ गया।

मुझे जो ईश्वरीय प्रेरणा हुई थी वह मेरे गरम दिमाग से निकली हुई तरंग नहीं थी, यह सिद्ध करने के लिये मुझको कहा गया है। जो उपर्युक्त वर्णन पर विश्वास न कर सकें उनके लिये मेरे पास कोई अन्य प्रमाण नहीं है। वह कह सकते हैं कि यह वर्णन केवल आत्म-प्रवंचना है। यही बात दूसरों के बारे में भी हुई है। मेरे लिये आत्म-प्रवंचना का होना असम्भव है, यह तो मैं नहीं कह सकता। यदि कहूं भी तो सिद्ध नहीं कर सकता। किन्तु इतना कह सकता

हूं कि यदि सारा जगत ही मेरा कहना न माने और विरुद्ध बात कहे, तो भी मैं इस बात पर अन्त तक डटा रहूंगा कि मुझको अन्तर्ध्वनि सुनाई दी और ईश्वरीय प्रेरणा हुई।

किन्तु कितने ही तो ईश्वर के अस्तित्व को ही नहीं मानते। वे तो यहां तक कहते हैं कि ईश्वर जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। वह केवल मनुष्य की ही कल्पना की एक कृति है। जहां ऐसे विचार बस रहे हों वहां किसी का कुछ बस नहीं चलता, क्योंकि उनके मन तो कल्पना के घोड़े रूप हो जाते हैं। ऐसे लोग मेरे कथन को भले ही कल्पना का एक नवीन घोड़ा समझें, फिर भी उनको समझ लेना चाहिये कि जहां तक इस कल्पना का मेरे ऊपर अधिकार है वहां तक मैं उसके वश में रह कर ही चल सकता हूं। सत्य से सत्य वस्तु भी सापेक्ष्य अर्थात् दूसरे के प्रमाण से ही सत्य होती है। सम्पूर्ण और शुद्ध सत्य तो केवल ईश्वर के विषय में ही हो सकता है। जो आवाज मैंने सुनी वह मुझे अपने अस्तित्व से अधिक सत्य मालूम होती है। मैंने इसके अधीन होकर कुछ खोया नहीं, बल्कि प्राप्त ही किया है। जिन दूसरे लोगों ने इस अंतर्ध्वनि के सुनने का दावा किया है उनको भी यही अनुभव हुआ है।

एक दूसरा प्रश्न भी विचारणीय है। जिस अनशन में अनेक कुशल डाक्टर उपस्थित रहकर सहायता करते हों और अत्यन्त प्रेमपूर्वक व्रती की सार-संभाल रखते हों तथा उसके लिये दौड़-धूप करते हों, जहां उपवासी की अनेक तरह से सेवा-शुश्रुषा की जाती हो''यह सब मेरे लिये किया गया था''ऐसा अनशन, ईश्वर-प्रेरित कैसे हो सकता है? इस आलोचना में कुछ वास्तविकता नहीं है.. यह सहसा नहीं कहा जा सकता। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि मेरे लिये जो सुविधायें प्राप्त की गयी थीं अगर वे प्राप्त न की जातीं और मैंने किसी एकान्त स्थल में किसी की सहायता के लिये बिना अनशन किया होता, तो मैंने जिस प्रेरणा का दावा किया है वह और भी अधिक प्रदीप्त हो जाती। इस आलोचना का विशेष अंश स्वीकार करते हुये भी मुझे यह कहना चाहिये कि मैंने प्रेमी मित्रों की उदारता का जो उपयोग किया उसके लिये मुझे न तो पश्चात्ताप ही है और न लज्जा ही। मैं मृत्यु के साथ युद्ध कर रहा था, अतः मेरी प्रतिज्ञा की अविरोधी जितनी भी सहायता मुझे मिली उसको मैंने ईश्वर प्रेरित समझकर नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लिया। यदि कोई मुझसे पूछे कि अनशन के औचित्य के संबंध में मुझे कोई शंका है या नहीं, तो मैं कह सकता हूं कि मुझे कोई शंका नहीं। इतना ही नहीं, बल्कि इस अनुभव के अत्यन्त मधुर स्मरण मेरे पास हैं। यद्यपि शरीर को कष्ट तो बहुत था, किन्तु उस समय की अनिर्वचनीय शांति से मुझे शरीर के कष्ट का पूरा-पूरा बदला मिल गया। शांति तो मुझे अपने प्रत्येक उपवास में हुई है, किन्तु इस हाल के उपवास की शांति तो कुछ और ही थी। कदाचित इसका कारण यह था कि इस समय मेरी दृष्टि अनशन के किसी परिणाम पर नहीं थी। पहले अनशनों में मेरे मन में कुछ न कुछ स्पष्ट दिखाई पड़ सकने

वाले परिणामों के उपर मेरी आशा रहती थी। किन्तु इस बार ऐसा कुछ नहीं था। इतनी श्रद्धा अवश्य थी कि उपवास के फलस्वरूप आत्म-शुद्धि और थोड़ी बहुत अन्य साथियों की शुद्धि तो होगी ही। मेरे सहयोगी इतना तो समझ ही जायेंगे कि अन्तर की शुद्धि के बिना सच्ची हरिजन सेवा असम्भव है, किन्तु इस परिणाम को मापने के लिये मेरे पास कोई माप-दंड नहीं है। अतः कहा जा सकता है कि मैं परिणाम के ऊपर बाह्य-दृष्टि रखने के बजाय इन २१ दिनों में मुख्यतः अंतर्मुख हो कर ही रहा।

इस अनशन के स्वरूप पर कुछ विस्तृत विचार करना उचित होगा। क्या यह केवल देह-दमन ही था? मेरा दृढ़ विश्वास है कि केवल देह-दमन के लिये किये गये अनशन से वैज्ञानिक दृष्टि से शरीर को तो कुछ लाभ नहीं होता। मैं जानता हूं कि मेरा उपवास देहदमन के लिये जरा भी नहीं था। देह-दमन के लिये मेरी तैयारी भी नहीं थी। जिस समय मैंने प्रतिज्ञा की थी उस समय यह अनशन कल्पना के बाहर था। इस बीच में मित्रों को लिखे गये पत्रों से स्पष्ट है कि केवल तात्कालिक अनशन मेरी दृष्टि के बाहर था। मेरे लिये यह अनशन हृदय में से निकली हुई ईश्वर के प्रति याचना अथवा प्रार्थना के समान था। जितना प्रार्थना का अनुभव मुझे होता जाता है उतना ही मुझे यह स्पष्ट प्रकट होता जाता है कि न्यूनाधिक अनशन के बिना शुद्ध प्रार्थना असम्भव है। इस स्थान पर अनशन का विस्तृत अर्थ करना ठीक होगा। अनशन में थोड़े बहुत अंश में अपनी समस्त इंद्रियों का पोषण करने वाली क्रिया बन्द करनी पड़ती है। प्रार्थना अंतस्तल की वस्तु है। उसे करते समय मनुष्य न तो आंख से कुछ दूसरी चीज देखता है और न कान से कोई दूसरा शब्द सुनता है और न अन्य इंद्रियों से वह कुछ काम लेता है। विचार सहित वह केवल प्रार्थना ही में लीन रहता है। तो फिर ऐसी दशा में खाने की क्रिया मन्द पड़ जाय अथवा बिलकुल बन्द हो जाय तो इसमें विचित्रता ही क्या है, अतः जो मनुष्य प्रार्थना में ही लीन है उसको अन्य किसी की बात सूझ ही नहीं सकती। ऐसा भी समय आ सकता है जब मनुष्य केवल प्रार्थनामय हो जाय। इसका अर्थ साक्षात्कार है। इस समय वह और चाहे जो काम करता हुआ प्रार्थना ही किया करता है। इसका कारण यह है कि उसकी प्रवृत्ति मात्र ही एक महायज्ञ के समान हो जाती है। वह स्वयं शून्यवत् होकर विचरण करता है। इस अवस्था को संतों ने सहज कहा है। असंख्य मनुष्य अनशनमय प्रार्थना करते हैं। उनमें से कोई बिरला ही सहज समाधि प्राप्त कर सकता है। अतः मुझे जैसे सामान्य मनुष्य की सब इंद्रियों के दमन से ही प्रार्थना का आरम्भ हो सकता है। इस रीति से अनशन का विचार करते हुये आध्यात्मिक दृष्टि से किया गया अनशन हृदय का नाद होता है। इसमें आत्मा की परमात्मा में लीन हो जाने की तीक्ष्ण वृत्ति रहती है। मेरा अनशन कितने अंश में इस प्रकार का था यह मैं नहीं जानता। मैं तो इतना ही जानता हूं कि अनशन इस दृष्टि से ही

किया गया था । ईश्वरीय प्रेरणा की मेरी भूख बहुत वर्षों की है । इस भूख की तृप्ति अभी नहीं हुई है। मेरा छोटे से छोटा कार्य भी ईश्वर प्रेरित होता है और इसी के लिये मैं सारा पुरुषार्थ करता हूं। मैं इतना ही कह सकता हूं। मुझे फल प्राप्ति को परवाह न करने पर भी इस अनशन के कितने ही परिणाम दिखाई पड़े हैं। इस अनशन से प्रेरित होकर कितने ही साथियों ने आत्म-शुद्धि की है। जिन सहयोगियों को मैं जानता हूं उनके दोषों के लिये अनशन नहीं किया गया था। किन्तु हरिजन सेवा करने वाले समस्त साथियों के और अपनी शुद्धि के लिये ही अनशन किया गया था। अनशन समाप्त हुये अभी थोड़े ही दिन हुये हैं। इस बीच में मेरे पास जो पत्र आये हैं उनसे पता चलता है कि मेरे अनशन से साथियों की शुद्धि हुई है और हो रही है। हरिजन सेवा का कार्य विशुद्ध धार्मिक है और उसको धार्मिक दृष्टि से ही चलाना चाहिये। उसके लिये धार्मिक वृत्तिवाले शुद्ध हृदय के ही सेवक और सेविकायें होने चाहिए, यह बात अनशन से खूब स्पष्ट हो गई है ।

अस्पृश्यता-निवारण का केवल यही अभिप्राय नहीं कि हरिजनों की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति का सुधार किया जाय। इस आन्दोलन का ध्येय तो इससे कहीं आगे है। अस्पृश्यता अनादि काल से चली आ रही है और वह ईश्वर निमित्त व्यवस्था है'' इसको मानने वाले असंख्य हिन्दुओं के हृदयों में परिवर्तन करना है। यह तो स्पष्ट ही है कि इस ध्येय तक पहुंचते ही हरिजनों की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति बिल्कुल सुधर जायगी । अस्पृश्यता का भूत उनकी हीनता का एक बड़ा भारी कारण बन रहा है। हमें इस समय धर्म के नाम पर चलने वाले अधर्म को दूर करना, ऊंच-नीच की भावना को अंदर से निकाल बाहर कर देना, हिन्दुओं की मनोवृत्ति में एक महान परिवर्तन करना और हिन्दू धर्म को धीरे-धीरे निष्प्राण कर डालने वाले विष को अलग कर देना है । मनुष्य मात्र में अंतर्हित दया की भावना जाग्रत कर देने से ही यह परिवर्तन हो सकता है। मेरा दृढ़ विश्वास है और इस बात की पूर्वजों की साक्षी भी है कि ऐसी जागृति अनशनमय प्रार्थना से ही हो सकती है।

इसी से प्रति दिन मेरा यह निश्चय दृढ़ होता जाता है कि अनशनकारियों की एक शृंखला निर्मित की जाय। उसमें सुयोग्य स्त्रियां और पुरुष अपना योग दें और वे सब एक शृंखला की कड़ियां बन जायं। यह शृंखला कैसे निर्मित होगी, इसमें कड़ियों का रूप कौन लेगा, यह सब मैं अभी स्पष्ट रूप से नहीं जानता । यदि यह शृंखला बन सकी तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि इससे सुधारक, सनातनी और हरिजन तीनों को ही लाभ होगा। जगत भी इस लाभ से वंचित न होगा । हरिजन भाई-बहिनों के पत्रों से मालूम होता है कि उनमें भी मेरे अनशन से जागृति हुई है। भारत से बाहर के पत्र भी सूचित करते हैं कि वहां के लोगों के हृदयों में भी जागृति हुई है। मेरे जैसे एक अपूर्ण मनुष्य के अनशन से जब इतनी जागृति हुई है तब यदि अनशनों की एक अविच्छिन्न शृंखला ही बन

जाय और उसमें अनेक निर्दोष भाई-बहिन आडम्बर बिना, डाक्टरों आदि की सहायता की आशा बिना अपनी-अपनी बलि दें, तो उसका परिणाम कितना व्यापक होगा और उसका असर कहां तक पहुंचेगा..इस बात का हिसाब आज कौन लगा सकता है?

ह० से, १४ जुलाई, १९३३ ई०

मेरा जीवन-प्राण

भगवान की लीला अपरम्पार है। ऐसी अनहोनी घटना मेरे जीवन में होकर रहेगी इसकी मुझे कल्पना भी न थी। मेरे लम्बे सार्वजनिक जीवन में अनेक अनहोनी मालूम होने वाली घटनायें हो चुकी हैं। पर यह तो सबसे अप्रत्याशित, सबसे अधिक अनहोनी मालूम होने वाली घटना है।

अब मेरे लिये मेरे सिरजनहार ने औरक्या रच रखा है? जेल के बाहर इस जीवन का मैं किस तरह उपयोग करूंगा? यह मैं कुछ नहीं जानता। पर इतना तो मैं जरूर कहूंगा, चाहे जेल के भीतर रहूं, चाहे जेल के बाहर, हरिजन सेवा ही मेरी प्रिय वस्तु रहेगी। मेरे लिये तो वह प्राणस्वरूप है। हरिजन सेवा मुझे भोजन से अधिक आवश्यक है। बिना भोजन के मैं कुछ दिन जीवित रह सकता हूं, पर हरिजन सेवा के बिना तो मैं एक क्षण भी नहीं जी सकता।

भगवान से मेरी निरन्तर यही प्रार्थना है कि हिन्दू धर्म में से यह अस्पृश्यता का कलंक पूरी तरह से दूर हो जाय और करोड़ों सवर्ण हिन्दू सत्यरूपी सूर्य का दर्शन करें। मैं एक बार नहीं, अनेक बार कह चुका हूं कि वह सत्य का सूर्य तो सदैव प्रकाशित हो ही रहा है। जिस समय हम अपनी आंखों पर से पर्दा हटा लेंगे, उसी क्षण उसका दर्शन हो जायगा। मैं अपना जीवन इस कार्य के लिये अर्पित कर चुका हूं। इस सत्य की सिद्धि के लिये मुझे चाहे जैसी कठिन तपस्या करनी पड़े, मैं उसे अधिक न समझूंगा।

पर्णकुटी, २३ अगस्त, १९३३ ई०

शांति से उपवास करने दें

हरिजन यात्रा के सिलसिले में महात्मा जी के अजमेर आने पर सभा में काशी के सनातनी स्वामी लालनाथ जी को किसी स्वयंसेवक के पीट देने पर, वर्धा में गांधी जी ने ७ अगस्त से १४ अगस्त तक, सात दिन का उपवास किया था। उपवास से पहले गांधी जी ने निम्न संदेश दिया था:--

मैं आशा करता हूं कि मेरे आगामी अनशन-सप्ताह में कोई वर्धा दौड़ने का कष्ट न करेगा। मैं उन दिनों में पूर्ण विश्राम और शांति चाहता हूं। मेरे

साथ सहानुभूति दिखाने और मेरे शरीर में बल पहुंचाने का सबसे अच्छा तरीका तो यह होगा कि मेरे तमाम मित्र हरिजनों को हर तरह से अपनाने और विरोधियों को अपने शुद्ध और विनम्र व्यवहार से जीतने की भरसक चेष्टा करें। जिन लोगों ने साहसपूर्वक अपनी भूल स्वीकार कर ली है उसका प्रायश्चित्त वे मेरे साथ उपवास करके नहीं, बल्कि यह दृढ़ निश्चय करके करें कि उनकी जिस भूल के कारण मुझे यह उपवास करना पड़ा है वैसी कोई भूल वे आगे न करेंगे।

ह० से, ३ अगस्त, १६३४ ई०

मानवता के लिये युद्ध

२० सितम्बर, १६३३ को पत्र-प्रतिनिधियों को महात्मा गांधी से जेल में मुलाकात करने की इजाज़त दी गई। २१ सितम्बर के टाइम्स आफ इंडिया में पत्र-प्रतिनिधियों और गांधी जी की बातचीत का यह हाल प्रकाशित हुआ:

यरवदा जेल में आने के ६ मास बाद २० सितम्बर की शाम को पत्र-प्रतिनिधियों को महात्मा गांधी से मुलाकात करने की इजाजत दी गई। इस मुलाकात में गांधी जी ने जो कुछ कहा वह बड़ी सरलता से और अत्यन्त गंभीरता के साथ विचारपूर्ण ढ़ंग से कहा। महात्मा जी का आमरण अनशन आरम्भ होने के ५ घंटे बाद जिन पत्र-प्रतिनिधियों ने उनसे इस संबंध में बातें की, वे निश्चय ही अत्यधिक प्रभावित हुये।

"हमको एक अलमारियों से, जिनमें जेल की बनी दरियां वगैरह चीजें भरी हुई थीं, घिरे हुये तंग और लंबे कमरे में बिठाया गया था। ये चीजें हजारों कैदियों ने अपने परिश्रम से बनाई थी और उनका एक-एक तार स्वदेशी था। इस कमरे में एक कुर्सी पर बैठा हुआ वह व्यक्ति मुस्करा कर हमारा स्वागत कर रहा था, जिसके ऊपर कई दिन से सारे भारतवर्ष का और सारी पश्चिमी दुनिया का और पूर्व के भी एक बड़े भाग का ध्यान जमा हुआ था।"

"जब उनसे यह पूछा गया कि क्या आपको इस अनशन का अन्त सुखद होने की आशा है, तो उन्होंने कहा, मैं एकायक कभी निराश न होने वाला आशावादी हूं। यदि ईश्वर ने मुझे छोड़ नहीं दिया है, तो मैं आशा करता हूं कि यह अनशन आमरण अनशन नहीं होगा।"

"उन्होंने आगे कहा—मुझे ऐसे लोगों ने तार दिये हैं जिन्होंने मेरे साथ सहानुभूति में अनशन करने का निश्चय किया है, या जो मेरे साथ अनशन करना चाहते हैं। मैं प्रार्थना करता हूं कि कोई भी व्यक्ति सहानुभूति में अनशन न करे। मैंने यह अनशन ईश्वरीय आदेश से स्वीकार किया है। इसलिये जब तक उनको भी इसी प्रकार का आदेश न मिल जाय तब तक अनशन उनका कर्त्तव्य नहीं है। शुद्धि की दृष्टि से या इस उद्देश्य के साथ सहानुभूति प्रकट करने के लिये एक

दिन का उपवास अच्छा है, बस इतना काफी है। ऐसा अनशन स्वत्व भी होता है और कर्त्तव्य भी। वह विशेष स्वत्व उन लोगों को प्राप्त होता है जिन्होंने इसके लिये अपने-आपको अनुशासित किया है।"

"इसके बाद तत्कालीन प्रश्न दलितों के प्रतिनिधित्व के संबंध में बातचीत होने लगी। सबसे पहले उन्होंने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि उन्होंने बम्बई सरकार को जो वक्तव्य भेजा था वह प्रकाशित नहीं किया गया है। उसको दिये हुये ५ दिन हो गये थे। यदि उसको उन्हें फिर लिखना पड़ता तो उसके बाद जो घटनायें हुई हैं उनके आधार पर उन्हें उसमें परिवर्तन करना पड़ता। मुलाकात के अन्त में उन्होंने कहा—मेरा यह नया वक्तव्य पहले वक्तव्य की कमी पूरा करता है, लेकिन वह उससे अलग है।"

मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि पृथक निर्वाचन उठा लेने से मेरी प्रतिज्ञा का शब्दश: पालन तो हो जायगा पर उससे उसके भाव का पालन न होगा और स्वेच्छा से बने हुये एक अस्पृश्य के नाते मैं स्पृश्य और अस्पृश्य में किसी तरह किये गये समझौते से सन्तुष्ट न हो जाऊंगा। अस्पृश्यता का जड़-मूल से नाश हो यही मैं चाहता हूं, इसी के लिये मैं जीवित हूं और इसी के लिये मरने में मुझे आनन्द होगा। इसलिये मैं सच्चा समझौता चाहता हूं, जिसकी जीवन-दायिनी शक्ति सुदूर भविष्य में नहीं, आज दिखाई दे और इसलिये इस समझौते पर स्पृश्यों के भारत-व्यापी प्रदर्शन की मुहर लगनी चाहिये, जिसमें दिखाऊ अभिनय करके एक दूसरे से न मिलें, बल्कि सच्चे बंधु भाव से आलिगन करें। अपने विगत ५० साल के जीवन के इस स्वप्न को सत्य सृष्टि में देखने के लिये ही मैंने अग्नि द्वार में प्रवेश किया है। ब्रिटिश सरकार का निश्चय तो निमित मात्र था, एक निश्चित निदान पर पहुंचा देने वाला लक्षण। और चूंकि मेरा दावा है कि इन मामलों में मेरा निदान एक कुशल वैद्य की भांति अचूक होता है, मैंने रोग के लक्षण को पहिचान लिया और इसलिये पृथक निर्वाचन उठा लेना मेरे लिये मेरे कार्य का आरम्भ मात्र होगा और मैं उन सब नेताओं को सावधान किये देता हूं, जो बम्बई में एकत्र हुए हैं कि वे जल्दी में कोई निश्चय न करें। मुझे अपने प्राणों की कुछ परवाह नहीं। इस महान कार्य के लिये ऐसे सैकड़ों आदमियों का प्राण-त्याग, मेरी राय में, उन पाशविक अत्याचारों का एक तुच्छ प्रायश्चित होगा, जो हिन्दुओं ने अपने ही धर्म के निरीह स्त्री-पुरुषों पर किये हैं। इसलिये मैं उनसे अनुरोध करता हूं कि वे पूर्ण न्याय के मार्ग से एक इंच भी न हटें।

मैं अपने अनशन को न्याय की तराजू पर तब तक तौलना चाहता हूं जब तक वर्णाश्रमी हिन्दू जाग नहीं पड़ते और अपना कर्तव्य नही जान जाते।

किन्तु इसके विपरीत यदि मेरे प्रति मोहान्ध होकर वे पृथक चुनाव रद्द कराने के लिये जैसे-तैसे कोई मोटा-झोटा समझौता कर लेंगे और इसी नींद में सो जायेंगे, तो वे भारी भूल करेंगे। और मेरे जीवन को दुखी बना देंगे,

क्योंकि पृथक चुनाव रद्द होने से मेरा अनशन तो टूट जायगा, किन्तु जिस महत्वपूर्ण समझौते का प्रयत्न मैं कर रहा हूं यदि वह न हुआ तो वह जिन्दा रहते हुये भी मेरी मौत होगी। इस प्रतिज्ञा को पूरी तरह पालन कराने के लिये तब मुझे एक दूसरे अनशन का नोटिस देना पड़ेगा।

एक दर्शक को यह बात बच्चों की जैसी मालूम दे सकती है, लेकिन यह मुझे ऐसी नहीं मालूम देती। यदि मेरे पास मेरे प्राणों से अधिक मूल्यवान कोई वस्तु होती तो मैं उसकी भी बलि दे देता।

मेरा विश्वास है कि यदि अस्पृश्यता का अन्त वास्तव में हो जायगा, तो इससे हिन्दू धर्म का भयंकर दाग ही धुल नहीं जायगा, बल्कि इसका प्रभाव सारी दुनिया पर पड़ेगा। अस्पृश्यता के विरुद्ध मेरी लड़ाई मानवता की अपवित्रता के विरुद्ध लड़ाई है। इसीलिये मैंने सर सैमुएल होर को इस विश्वास के साथ वह पत्र लिखा था कि यदि मैं इस कार्य को जहां तक संभव है वहां तक अपने हृदय से मलिनता, द्वेष और रोष को दूर करके आरंभ करूंगा, तो मानव समाज के भले लोग मेरा साथ देंगे। इसलिये आप देखेंगे कि मैंने यह अनशन हिन्दू जाति में, मानव स्वभाव में और सरकारी अफसरों में भी विश्वास रख कर आरंभ किया है।

उन्होंने आगे फिर कहा---अस्पृश्यता पर आघात करके मैं इस मामले की जड़ तक ही जा पहुंचा हूं। इसी कारण मेरे लिये यह प्रश्न सबसे अधिक महत्व का, राजनैतिक विधान की दृष्टि से, स्वराज्य से भी ज्यादा महत्व का है। करोड़ों दलित वर्गों को यह आशा हो गई है कि यह अस्पृश्यता का बोझ अब उनके कंधों पर से उठा लिया जायगा। यदि राजनैतिक विधान इस नैतिक आधार पर न बनाया जा सके तो वह अस्पृश्यों के लिये एक भारी बोझ बन जायगा। अंग्रेज अफसरों को चित्र का यह मुख्य पक्ष दिखाई नहीं देता, इसी कारण वे अज्ञानवश आत्मतुष्टि के लिये करोड़ों लोगों के मूल अस्तित्व पर प्रभाव डालने वाले प्रश्नों का निर्णय करने बैठ जाते हैं। यहां करोड़ों लोगों से मेरा मतलब सवर्ण हिन्दुओं और अस्पृश्यों, दलनकारी और दलित दोनों से है। अगर यह कहना जुर्म न हो तो मैं कहूंगा कि इन अफसरों को, उनके इस गहरे अज्ञान से जगाने के लिये ही मैं अपने अन्तःकरण की आवाज पर अपनी तमाम शक्ति से इसका विरोध करने के लिये बाध्य हुआ हूं।

"फोटो लेने के प्रश्न पर उन्होंने अपने दाह संस्कार के संबंध में विनोद में एक बात कही। इस पर मैंने पूछा, अगर बुरी से बुरी बात संयोग से घटित हो जाय तो क्या आपने इस सम्बन्ध में अपने पुत्र देवदास को, जो कल आपसे मिले थे, कुछ कह कर तैयारी कर ली है। गांधी जी ने तुरन्त कहा---मैंने अपने पुत्र को बम्बई परिषद् में मेरी ओर से यह कहने का आदेश दे दिया है कि जल्दी में दलित जातियों को कोई हानि पहुंचती हुई देखने के बजाय वह अपने पिता के पुत्र की हैसियत से उनकी मृत्यु को अधिक पसन्द करता है।

"उनसे पूछा गया, आपके ख्याल में आपका अनशन कितने दिन चलेगा? उन्होंने उत्तर दिया—मैं भी दूसरों की ही भांति जीवित रहने के लिये उत्सुक हूं। जल जीवन को दीर्घ बनाने की शक्ति रखता है और जब कभी मुझे जल की जरूरत होगी तो जल पीऊंगा ही।"

आप विश्वास कीजिये कि मैं दृढ़ रहने का यथाशक्ति प्रयत्न करूंगा, जिससे हिन्दुओं और अंग्रेजों के अन्त:करणों में गति आ जाय और मेरा यह कष्ट भी मिट जाय। मेरी पुकार सर्वशक्तिमान ईश्वर के सिंहासन तक पहुंचेगी।

भगवान् का आदेश

जनरल स्मट्स ने निजी तौर पर मुझसे अनशन न करने के लिये बड़ी मर्म-स्पर्शी अपील की है। सर कुंवर महाराज सिंह ने उस दर्दभरी अपील का समर्थन किया है। डाक्टर अन्सारी ने मुझे प्रेम के ऐसे मजबूत धागे से बांध रखा है, जो कड़े से कड़े झटके से टूटने का नहीं। वे मेरे पुराने दोस्त, सहयोगी और चिकित्सक के नाते हृदयद्रावक शब्दों में मुझसे व्रत की प्रतिज्ञा कुछ बदल देने पर जोर दे रहे हैं। उधर मेरे अन्तर की बात जानने वाले चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने एक लंबा तार भेजकर मेरे अनशन के आधार पर ही आक्रमण कर डाला। इसके साथ ही मेरे सबसे छोटे पुत्र और योग्य साथी देवदास की अविरल अश्रुधारा और आग्रह-अनुरोधों को भी ले लीजिए। जब ये बड़ी से बड़ी अपीलें भी मुझे मेरे निश्चय से न डिगा सकीं, तब पाठकों को यह आसानी से समझ लेना चाहिये कि अवश्य कोई ऐसी शक्ति मौजूद है, जिसने मेरे ऊपर बेतरह कब्जा जमा रखा है और जो मुझे इन अपीलों और अनुरोधों को सुनने नहीं देती।

निस्संदेह इन अपीलों का मतलब यह है कि मेरे मित्र मेरे इस दावे पर विश्वास नहीं करते कि मेरा यह अनशन ईश्वर-प्रेरित है। मेरा यह आशय नहीं है कि उनका मेरे शब्दों पर विश्वास नहीं। वे समझते हैं कि मैं इस समय भ्रम में हूं, जेल की चहारदीवारी के अंदर बंद रहते-रहते शायद मेरी कल्पना गर्मी से भड़क उठी है और उत्तेजित कल्पना के कारण ही मैं अपने अनशन को ईश्वर-प्रेरित मान बैठा हूं। मेरा यह दावा नहीं है कि मेरे विषय में ऐसी बात हो नहीं सकती। पर जब तक मुझे अपनी भ्रांति, भ्रांति के रूप में मालूम न हो जाय तब तक मुझ पर इस संभावना का कोई असर होने का नहीं। जेल में रहने का तो मैं आदी हो गया हूं। जेल की चहार-दीवारी ने कभी मेरी विवेचना-शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं डाला और न वह किसी बात को लेकर उधेड़बुन करने की लत ही मुझे लगा सकी है। निस्संदेह हरिजनों के प्रति होने वाले जुल्मों के बारे में मैंने बहुत सोचा है, पर उस निरंतर चिंतन का परिणाम मेरा कोई न कोई निश्चित कार्य ही हुआ है। उस निर्णय वाली रात्रि के पहले वाले दिन में, मैं जिस कार्य के सम्बन्ध में विचार कर रहा था, निश्चय ही वह यह अनशन न था।

मेरा यह दावा कि मैं अन्तर्यामी का अन्तर्नाद सुन सकता हूं, कोई नया दावा नहीं है। पर दुर्भाग्य से, परिणाम को छोड़ कर और किसी तरह उसकी सचाई साबित करने का कोई मार्ग मेरे सामने नहीं है। यदि ईश्वर अपने रचे हुए प्राणियों को यह शक्ति दे दे कि वे उसके अस्तित्व को प्रमाण का विषय बना लें, तो वह ईश्वर, ईश्वर ही न रहेगा। हां, उसकी शरण में अपने-आपको सर्वतोभावेन अर्पित कर देने वाले, आत्म-निवेदक दास को वह अवश्य यह शक्ति दे देता है कि वह कठिन से कठिन अग्नि परीक्षा से उत्तीर्ण हो जाय। मैं प्रायः कई वर्षों से भी अधिक समय से इससे बड़े न्यायप्रिय स्वामी का दास बन जाने का प्रयत्न करता आ रहा हूं। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, उस हृदय-विहारी का अन्तर्नाद मेरे लिये अधिकाधिक स्पष्ट होता गया। मेरे जीवन की अंधेरी से अंधेरी घड़ियों में भी उसने मेरा हाथ नहीं छोड़ा। कितने ही बार तो उसने मेरे ही संकल्पों के विरुद्ध मेरी रक्षा की और स्वतंत्रता का एक कण भी मुझ में शेष नहीं छोड़ा। जितना ही मैं उसकी शरण में अपने को अर्पित करता गया, उतना ही अधिक आनन्द मैंने पाया।

इसलिये मुझे पूरा भरोसा है कि मेरे अतिशय कृपालु मित्र मेरे अनशन के औचित्य को मान लेंगे, मैं उसमें जीवित रहूं या मर जाऊं, हर हालत में वे मेरे अनशन को उचित ही मानेंगे। प्रभु की मर्जी जानी नहीं जा सकती। उसकी लीला अपरम्पार है। कौन जाने, अनशन-काल में कहीं वह लीला-बिहारी मेरी मृत्यु ही चाह रहा हो, जिससे वह इस जीवन की अपेक्षा अधिक शुभ परिणामकारी हो सके? अवश्य ही यह सोचने में हमारा दिल बैठ जाता है कि इस क्षणभंगुर पंचभौतिक शरीर से आत्मा के अलग होते ही हमारी सेवा करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। रामकृष्ण और दयानन्द, विवेकानन्द और रामतीर्थ की आत्माएं हम लोगों के बीच में क्या आज भी अपना-अपना काम नहीं कर रही हैं। हो तो यह भी सकता है कि वे आत्माएं जब पार्थिव-शरीर में आबद्ध थीं, तब से आज वे कहीं अधिक शक्तिशालिनी हों। यह कहना ग़लत है कि मनुष्य के सत्कर्म उसकी मृत्यु के साथ ही विलीन हो जाते हैं। हम उसकी बुराइयों को उसके नश्वर-शरीर के साथ ही जला देते हैं। पर उसके सत्कर्मों की याद को हम सुरक्षित रखते हैं। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, उस स्मृति का मूल्य बढ़ता जाता है।

और फिर किसी खास व्यक्ति की सेवाओं को इतना अतिशयोक्तिपूर्ण महत्व क्यों दिया जाय, फिर चाहे वह कितना ही नेक और योग्य क्यों न हो? हरिजनों का यह कार्य, हरिजन का अपना कार्य है। जब भगवान् को जरूरत होगी, तब अपनी इच्छा पूरी करने के लिये अनेक ऐसे नर-नारियों को उत्पन्न कर देगा।

इसलिये जनरल स्मट्स और अपने दूसरे मित्रों से मैं इस बात पर विश्वास कर लेने के लिये अनुरोध करता हूं कि मैं किसी भ्रम में पड़ कर यह कार्य नहीं कर रहा हूं। उनसे मेरी विनय है कि वे परमात्मा से प्रार्थना करें कि वह मुझे अग्नि-परीक्षा से सकुशल पार हो जाने की शक्ति प्रदान करे। मुझे विश्वास है कि चाहे जिस सेवा के लिये हो अभी इस पृथ्वी पर थोड़े दिनों तक मेरे जीवित रहने की आवश्यकता है। इसलिये इन डाक्टरों के डर को असत्य ठहराकर भगवान मुझे बचा लेगा।

ह० से, १२ मई, १९३३ ई०

डा०अन्सारी को पत्र

आप श्रद्धालु पुरुष हैं। मैं चाहता हूं कि आप विश्वास कर लें कि यह उपवास मेरी अपनी इच्छा का परिणाम नहीं है। उस अन्तर्यामी के आदेश से ही यह उपवास किया गया है, इसलिये वही मेरा अदृष्ट सहायक है। अगर उसकी उपस्थिति भी मुझको न बचा सकी, तो एक उत्तम डाक्टर और पैगंबर मुहम्मद साहब के विपद् काल में उनकी सहायता करने वालों का वंशज भी क्या कर सकता है? जो नहीं जानते वह जान लें कि डाक्टर अन्सारी उस वंश के हैं, जिसने मक्का से हिजरत करते हुए पैगंबर को मदीने में सहायता दी थी। सलाम।

ह० से, १९ मई, १९३३ ई०

मीराबेन को पत्र

मैं चाहता हूं कि तुम भी मेरी तरह अनुभव करो कि यह उपवास ईश्वर की मुझ पर अभूतपूर्व कृपा है। आज तक उसने ऐसी अनुकम्पा पहले कभी न की थी। मैं उसे भयभीत और कम्पायमान हृदय से प्रारम्भ कर रहा हूं, यह इस बात का द्योतक है कि मेरा विश्वास दुर्बल है। लेकिन मैं इस बार जिस आनंद का अनुभव कर रहा हूं, वह मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ था। मैं चाहता हूं कि तुम भी मेरे इस आनन्द का अनुभव करो।

ह० से, १९ मई, १९३३ ई०

ईश्वर का बल भरोसा

[८ मई १९३३ ई० को गांधी जी ने यरवदा जेल में आत्मशुद्धि के निमित्त २१ दिन का उपवास शुरू किया था। उसी दिन वह जेल से छोड़ दिये गये और लेडी ठाकरसी की पर्णकुटी में उपवास के शेष दिन बीते। इस अनशन-यज्ञ के दो घंटे पहले पत्र- प्रतिनिधियों को गांधी जी ने निम्न वक्तव्य दिया।]

मेरा प्रभु मुझे जिस अग्नि-परीक्षा में प्रवेश करा रहा है, उसकी आवश्यकता प्रतिदिन मुझे और भी स्पष्ट होती जा रही है। अगर मैं उपवास न करूं, तो जो नई बातें मुझे मालूम हो रही हैं, वे मुझे निष्प्राण करके ही छोड़ें। हरिजन आन्दोलन के लिये इस उपवास का चाहे जो मूल्य हो, पर यह निश्चय है कि वह मेरी रक्षा करेगा। इस उपवास के बाद मैं जिन्दा रहता हूं या नहीं, यह कोई महत्व की बात नहीं है। पर अगर मैं यह उपवास न करता तो, बहुत संभव है, मैं हरिजन सेवा या अन्य किसी सेवा के लिये काम का न रह जाता।

मेरे जिन मित्रों ने मुझे अनशन से विरत करने के लिये जरूरी तार दिये हैं, मुझे उम्मीद है कि वे अब इस बात को समझ लेंगे कि मेरे जैसे मनुष्य के लिये यह अनशन अनिवार्य था। अपने इस दावे के अलावा मैं यह कह रहा हूं कि ईश्वरीय अन्तर्नाद से प्रेरित होकर यह व्रत ठाना गया है।

अब दो घंटे बाद मेरा अनशन आरम्भ हो जायगा। इस समय मैं अपने तमाम मित्रों और हितचिन्तकों से अनुरोध करता हूं कि वे मुझ निर्बल के लिये प्रार्थना करके परमात्मा से वह शक्ति मांगें, जिससे मैं साहसपूर्वक यह अग्नि-परीक्षा पार कर जाऊं। मेरे जिस अन्तर्यामी ने मुझे आज तक सहायता देने में उपेक्षा नहीं की, मुझे विश्वास है, वही निर्बल का बल राम अब भी मेरी नाव पार लगायेगा।

हरिजन-संघ का एक तार मुझे इस आशय का मिला है कि यह अनशन अनावश्यक है, क्योंकि हरिजनों को सवर्ण हिन्दुओं की सहायता की कोई जरूरत नहीं है। अपनी विचार दृष्टि से संघ को ऐसा कहने का अधिकार है। पर यह साफ हो जाना चाहिये कि यह उपवास हरिजनों पर कोई एहसान लादने की नियत से नहीं किया जा रहा है, यह तो मैंने अपनी और अपने सहयोगियों की आत्मशुद्धि के लिये ही किया है।

हरिजन-सेवा एक ऐसा कर्तव्य है, जो सवर्ण हिन्दुओं पर कर्ज की तरह चढ़ा हुआ है। अपने ही सगों के प्रति सदियों से किये गए अत्याचारों के लिये उन्हें अब प्रायश्चित करना ही होगा। कुछ हरिजन भाइयों ने गुस्से में आकर विरोध किया है, उसे मैं अच्छी तरह समझ सकता हूं। फिर भी मुझे आशा है कि अब भी सवर्ण हिन्दुओं के उदारतापूर्वक प्रायश्चित्त करने का समय निकल नहीं गया। वह प्रायश्चित्त अब भी किया जा सकता है। उनकी ओर से जो अगणित संदेश आये हैं, निस्संदेह उससे मालूम होता है कि प्रायश्चित्त करना उन्हें स्वीकार है।

सनातनियों को तो मेरे इस उपवास में भी बलात्कार की गंध आई है, जब कि वे यह जानते हैं कि हर एक मंदिर हरिजनों के लिये खोल दिया जाय और अस्पृश्यता जड़ से उखाड़ कर फेंक दी जाय, तो भी यह अनशन अपनी अवधि

के पहले भग नहीं किया जा सकता। दिल से तो शायद वे भी अनुभव करते होंगे कि इस अनशन में कोई भी बलात्कार जैसी बात नहीं है। यह अनशन तो कटुता हटाने, हृदय शुद्ध करने और यह स्पष्ट कर देने के लिये किया गया है कि हरिजन आन्दोलन एक बिल्कुल धार्मिक आन्दोलन है और उसका संचालन सर्वथा धार्मिकता के द्वारा ही किया जाना चाहिये।

ह० से, १२ मई, १९३३ ई०

उपवास की समाप्ति

ईश्वर का नाम लेकर अनशन व्रत शुरू किया था और उसी का नाम लेकर गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर और परचुरे शास्त्री नाम के एक कोढ़ी, किन्तु विद्वान् और पंडित कैदी की उपस्थिति में, जो एक दूसरे के सामने बैठे थे तथा मेरे चारों तरफ एकत्र प्रियजनों के समक्ष खतम किया गया। पहले कविवर ने अपना एक बंगला गीत गाया। फिर परचुरे शास्त्री ने उपनिषद् से मंत्र पढ़ा। इसके बाद मेरा प्रिय गीत 'वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीड़ पराई जाणे रे' गाया गया।

पिछले सात दिनों के अन्दर भारत भर में जो भव्य प्रदर्शन हुए उनमें ईश्वर की कामना करते हुये दुनिया के कितने ही स्थानों से मुझे जो तार मिले उन्होंने मुझे तब शक्ति दी जब मेरा शरीर, मन और आत्मा कष्ट पा रहा था, जिसका मुझे इन दिनों में अनुभव हुआ। पर यह कार्य यह कष्ट उठाने योग्य ही था। एक बार यज्ञ की अग्नि प्रज्जवलित होने पर तब तक उसे न बुझने देना चाहिये जब तक हिन्दुस्तान में अस्पृश्यता का थोड़ा भी अंश बचा हुआ हो और यदि ईश्वर की यही इच्छा हो कि मेरे जीवन के साथ इसका अंत न होगा तो मुझे विश्वास है कि ऐसे हजारों सच्चे सुधारक हैं जो हिन्दू धर्म से यह भयानक अभिशाप दूर करने के लिये अपने प्राण न्यौछावर कर देंगे।

चारों तरफ दृष्टिपात करने पर जहां तक मैं देख सकता हूं, इस समझौते से परस्पर हृदयों का मेल हुआ है और एक हिन्दू की हैसियत से मैं एक ओर डाक्टर अम्बेडकर, श्री श्रीनिवासन और उनके दल के प्रति तथा दूसरी ओर श्री एम० सी० राजा के प्रति कृतज्ञ हूं। सदियों के पाप के लिये तथोक्त वर्णाश्रमी हिन्दुओं को दंड देने के बहाने वे हठ और दुराग्रह का भाव दिखा सकते थे। यदि वे ऐसा करते तो कम से कम मैं उनके इस भाव पर रोष न प्रकट कर सकता और ऐसी हालत में मेरी मृत्यु उन यंत्रणाओं के बदले में लिया गया तुच्छ मूल्य होता जो सदियों से अछूतों को उठानी पड़ रही हैं। पर उन्होंने उदार मार्ग ग्रहण किया और दिखा दिया कि उन्होंने सब धर्मों में निहित क्षमा के सिद्धान्त का पालन किया है।

समझौते पर शीघ्र निश्चय करने के लिये मैं ब्रिटिश मंत्रिमंडल को भी धन्यवाद देता हूं। इस निश्चय की शर्तें मेरे पास भेजी गई हैं। मैंने उसे निःशंक होकर हाथ में नहीं उठाया। मैं समझता हूं कि उसमें स्वभावतः ही समझौते का वही अंश स्वीकार किया गया है, जिसका संबंध ब्रिटिश मंत्रि-मंडल के साम्प्रदायिक निर्णय से है। मुझे आशा है कि इस समय संपूर्ण समझौता स्वीकार करने में उन्हें शासन सम्बन्धी कठिनाइयां मालूम पड़ी होंगी। पर मैं अपने हरिजन मित्रों को, अब मैं उनको इसी नाम से पुकारना चाहता हूं, विश्वास दिलाना चाहता हूं कि जहां तक मेरा संबंध है मैं सम्पूर्ण समझौते से बंध गया हूं और उसकी उचित पूर्ति के लिये वे मेरे प्राणों को तब तक जमानत के तौर पर रख सकते हैं जब तक हम अपनी ही इच्छा से कोई दूसरा और अधिक अच्छा समझौता नहीं कर लेते।

मैं ईश्वर की योजना का निर्णायक नहीं बन सकता

मुझे लगता है कि मेरे दुर्भाग्य से ईश्वर अथवा सत्यनारायण ने मुझको इस व्रत की ओर बहुत विलम्ब से प्रेरित किया है। यह अवसर तो बहुत पहले आ जाना चाहिये था, लेकिन चूंकि मैं स्वयं ईश्वर की योजना का निर्णायक नहीं बन सकता, इसलिये मैंने उसकी अटल आज्ञा के आगे सिर झुका दिया है। मेरा ख्याल तो यह है कि यरवदा के समझौते (पैक्ट) पर हस्ताक्षर करने के उपरान्त ही इस प्रकार का उपवास करना चाहिये था और उसके बाद हरिजन आन्दोलन में हाथ डालना चाहिए था। परन्तु वह अवसर तब हाथ न आया। वह आज मिला है। यह निस्संदेह यज्ञ का प्रारंभ मात्र है और शुद्धि यज्ञ भी है। इसका होना अनिवार्य था, क्योंकि इसकी आवश्यकता बहुत दिन पहले से प्रतीत हो रही थी, लेकिन यह तर्क तो मुझको अब सूझ पड़ रहा है। जब मुझको यह मालूम हुआ कि ईश्वरीय आज्ञा मिली है तब मेरे सन्मुख ऐसी कोई युक्ति मौजूद न थी। उस अन्तर्यामी का संदेश आया और उसने मुझको विवश कर दिया। आप पूछते हैं कि क्या यह वेदना का उद्वेग नहीं है? इस पर मेरा उत्तर बिल्कुल सीधा और सुगम है, अर्थात् कदापि नहीं। यह वेदना का उद्वेग तो है ही नहीं, हां, मलिनता को धो डालने के लिये यह प्रायश्चित्त निस्संदेह है। मैं जिसको मलिनता के नाम से पुकारता हूं, आप उसको अनौचित्य कहते हैं, किन्तु उसका समावेश उक्त शुद्धि यज्ञ में हो जाता है और चूंकि प्रारंभिक यज्ञ नहीं किया जा सका था, इसलिये अब यह अनिवार्य ही हो गया है। अब आप पूछते हैं कि आपने जिन कंपित कर देने वाली अनीतिपूर्ण घटनाओं का जिक्र अपने पत्र में किया है, क्या उनके फलस्वरूप आपने यह व्रत नहीं लिया है? मेरा उत्तर यह है कि आपका यह अनुमान क़तई गलत है। मैं यह बात पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूं,

क्योंकि मैं आपको उन भयंकर दुर्घटनाओं के मुझ तक पहुंचने की ठीक-ठीक तारीखें तक बता सकता हूं और यह स्पष्ट है कि उनके आधार पर उपवास करने की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। इस बात के कई निश्चयात्मक कारण थे कि मुझे बंदी के रूप में इन फुटकर घटनाओं को सुनकर पहले की भांति उपवास आरंभ कर देना उचित न था, किन्तु असल बात तो यह है कि हरिजन आन्दोलन जैसी महान् प्रवृत्ति में व्यक्तिगत घटनाओं की रोक-थाम उपवासों से करना किसी भी मनुष्य के पुरुषार्थ से बाहर की बात है।

इसलिये मेरे मन में इस बात के संबंध में जरा भी शंका नहीं है। यद्यपि इन फुटकर घटनाओं ने इस उपवास का मार्ग अज्ञात रूप से भले ही तैयार किया हो, तो भी मैं इन घटनाओं में से किसी एक की ओर भी संकेत करके यह नहीं कह सकता कि अमुक घटना ही इस बलिदान की मुख्यतः प्रेरक है। यह व्रत तो मुख्यतः ऐसा व्रत है जो किसी महान् कार्य के अनुष्ठान के समय लिया जाता है और जो मुझे आज से बहुत समय पूर्व आरंभ कर देना चाहिये था। दूसरी दृष्टि से, जो गौण है, विचार करते हुए मैं यह कहूंगा कि अपनी तथा अपने साथियों की कमजोरियों के निमित्त भी इसको कर लेना उचित था।

ह० से, १६ मई, १६३३ ई०

सहायक ग्रंथ तथा पत्र-पत्रिकायें

(१) महात्मा गांधी—आत्मकथा (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

(२) महात्मा गांधी—प्रार्थना प्रवचन १ (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

(३) महात्मा गांधी—प्रार्थना प्रवचन २ (सस्ता मंडल, नई दिल्ली)

(४) महात्मा गांधी—धर्म पालन १ (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

(५) महात्मा गांधी—धर्म पालन २ (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

(६) महात्मा गांधी—स्वदेशी और ग्रामोद्योग (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

(७) महात्मा गांधी—हिन्द स्वराज्य (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

(८) महात्मा गांधी—हमारा कलंक (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

(९) महात्मा गांधी—दिल्ली की डायरी (नव जीवन प्रकाशन, भंडार-अहमदाबाद)

(१०) महात्मा गांधी—वर्ण व्यवस्था (नव जीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद)

(११) महात्मा गांधी—आरोग्य की कुंजी (नव जीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद)

(१२) महात्मा गांधी—रचनात्मक कार्य क्रम (नव जीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद)

(१३) घनश्याम दास बिड़ला—बापू (सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली)

(१४) घनश्याम दास बिड़ला—डायरी के कुछ पन्ने (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

(१५) किशोरीलाल मशरूवाला—गांधी विचार दोहन (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

(१६) बृज कृष्ण चांदीवाला—बापू के चरणों में (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

(१७) वियोगी हरि—मेरा जीवन प्रवाह (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

(१८) हरिभाऊ उपाध्याय—साधना के पथ पर (नवयुग साहित्य-सदन इंदौर)

(१९) काका कालेलकर—बापू की झांकियां (नव जीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद)

(२०) बनमाला पारीख, सुशीला नैयर—हमारी बात (नव जीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद)

(४०) महात्मा गाधा——भाइया [illegible] डिवीजन, दिल्ली)

(४१) महात्मा गांधी——भाइयों और बहनों भाग–३ (पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली)

(४२) महात्मा गांधी—भाइयों और बहनों भाग–४ (पब्लिकेशन्स, डिवीजन, दिल्ली)